खण्ड -1

Block- 1

इकाई 1-जन्म, शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था : सार्वभौम
Birth, Infancy and Childhood -The Universals

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 जन्म, शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था
    1.3.1 शैशवावस्था
    1.3.2 बाल्यावस्था
1.4 बाल्यावस्था का प्रत्यय
    1.4.1 विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित विभिन्न बाल्यावस्था के प्रत्यय
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वास्तव में विकास एक सतत प्रक्रिया है, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवनपर्यंत चलती रहती है। हम विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को कुछ अवस्थाओं में विभाजित कर सकते हैं। विकास की अवस्था शब्द यह प्रदर्शित करता है कि विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने पर विकास की प्रक्रिया में कुछ निश्चित परिवर्तन आ जाते हैं। विकास की इस प्रक्रिया में बालक विकास की कुछ अवस्थाओं से होकर गुजरता है। इस इकाई में हम विकास की पूर्व अवस्थाओं: गर्भावस्था, शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में होने वाले विभिन्न विकासों,बाल्यावस्था के प्रत्यय : विभिन्न सामाजिक राजनैतिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित विभिन्न बाल्यावस्थाओं के प्रत्यय के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. विकास की पूर्व अवस्थाओं को समझ सकेंगे।
2. शैशवावस्था में होने वाले विभिन्न विकासों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
3. प्रारंभिक बाल्यावस्था व उत्तर बाल्यावस्था में होने वाले विभिन्न विकासों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
4. बाल्यावस्था के प्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. विभिन्न सामाजिक राजनैतिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित विभिन्न बाल्यावस्थाओं के प्रत्यय को स्पष्ट करसकेंगे।

1. 3 जन्म, शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था

सामान्य रूप से मानव विकास को निम्न पांच अवस्थाओं में बांटा जा सकता है –

1. गर्भावस्था (गर्भाधान से जन्म तक)
2. शैशवावस्था (जन्म से 2 वर्ष तक)
3. बाल्यावस्था (2 वर्ष से 11 वर्ष तक)
4. किशोरावस्था (12 से 19 वर्ष तक)
5. प्रौढावस्था (19 वर्ष से अधिक)

माता के गर्भ धारण करने से लेकर शिशु के जन्म तक का काल गर्भावस्था कहलाता है। शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम दो वर्ष का काल शैशवावस्था कहलाता है। दो वर्ष की आयु से लेकर 11 वर्ष की आयु तक का काल बाल्यावस्था कहलाता है । 12 वर्ष की आयु से लेकर 19 वर्ष तक का काल किशोरावस्था कहलाता है। 19 वर्ष की आयु के बाद का काल प्रौढावस्था कहलाता है।

1.3.1 शैशवावस्था

बालक के जन्म लेने के उपरान्त की अवस्था को शैशवावस्था कहा जाता है। शिशु को अंग्रेजी में इन्फैंट (Infant) कहते हैं। इन्फैंट लैटिन भाषा का शब्द है, जो दो शब्दों In व Fari से मिलकर बना है । 'In' का अर्थ है – नहीं और 'Fari' का अर्थ है बोलना, अतः Infant का शाब्दिक अर्थ है बोलने के अयोग्य। Infant शब्द का प्रयोग बालक की उस अवस्था के लिए किया जाता है, जब वह सार्थक शब्द का प्रयोग प्रारंभ करता है। यह अवस्था जन्म से लेकर 2 वर्ष तक मानी जाती है। यह अवस्था बालक के निर्माण का काल कहलाती है, क्योंकि यह अवस्था ही वह आधार है जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है। इस अवस्था में बालक का जितना अधिक निरीक्षण एवं निर्देशन किया जाता है, बालक का विकास और उसके जीवन का विकास उतना ही उत्तम होता है।

1. **शारीरिक विकास** : शैशवावस्था में बालक का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। जन्म के समय नवजात शिशु के सिर की लम्बाई कुल शरीर की लगभग एक चौथाई होती है। लेकिन प्रथम दो वर्षों में सिर की लम्बाई तथा आकार में तीव्र गति से वृद्धि होती है। नवजात शिशु की हड्डियाँ छोटी,

कोमल तथा लचीली होती हैं। शैशवावस्था के दौरान शिशु की हड्डियाँ कैल्शियम, फोस्फोरस एवं अन्य खनिज पदार्थ पाकर कठोर और मजबूत हो जाती हैं। जन्म के समय शिशु के दांत नही होते हैं। छटे या सातवें माह में दूध के दांत निकलने लगते हैं तथा एक वर्ष की आयु तक दूध के सभी दांत निकल जाते हैं। शिशु की टांग तथा भुजाओं का विकास भी तीव्र गति से होता है। जन्म के कुछ समय के बाद ही शिशु अपने स्नायुओं पर नियंत्रण करने का प्रयास शुरू कर देता है। प्रारंभ में शिशु का अपनी गामिक गतिविधियों पर नियंत्रण कम होता है, लेकिन धीरे धीरे वह अपनी गामिक गतिविधियों पर सफलतापूर्वक नियंत्रण करने लगता है।

2. **भाषा विकास :** शैशवावस्था में बालक अपनी कुछ इच्छाओं और आवश्यकताओं को अपने हाव-भाव के द्वारा प्रदर्शित करने लगता है। इन सभी हाव-भावों का अर्थ केवल शिशु के माता पिता या वही व्यक्ति समझ पाते हैं, जो शिशु के संपर्क में रहते हैं। सुखद संवेग को शिशु हंसकर, अपनी बाँहों को फैलाकर प्रदर्शित करता है, जबकि दुखद संवेग को शिशु रोकर अभिव्यक्त करता है। सामन्यतया शिशु भी अपने परिवार के सदस्यों के हाव-भाव तथा मौखिक अभिव्यक्ति को देखकर उनकी भाषा को समझने की कोशिश करता है। शैशवावस्था में ही शब्दावली का निर्माण होना प्रारम्भ हो जाता है तथा दो वर्ष की आयु तक के बालक का शब्दकोश लगभग 200-300 शब्द तक होता है।
3. **सावेंगिक विकास** : शिशु जन्म के समय ही संवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है ,जैसे: रोना, चिल्लाना, हाथ पैर पटकना आदि। इस अवस्था में बालक में मुख्य रूप से चार संवेग होते हैं : भय, क्रोध, प्रेम और पीड़ा। प्रारंभ में शिशु के संवेग अस्पष्ट होते हैं तथा उन्हें पहचानना काफी कठिन होता है। लेकिन धीरे-धीरे आयु के बढ़ने पर शिशु के संवेगों में स्पष्टता आने लगती है तथा लगभग 2 वर्ष की आयु तक बालक में लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है।
4. **सामाजिक विकास** : जन्म के समय शिशु सामाजिक नहीं होता है, लेकिन दूसरे व्यक्तियों के साथ पहली बार संपर्क में आते ही उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। पहले माह में शिशु किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता है,परन्तु आयु बढ़ने के साथ साथ वह अपने परिवार के सदस्यों की आवाज़ पहचानने लगता है। परिवार के सदस्यों को देखकर हँसता है और अकेला रह जाने पर रोता है। शिशु परिचित एवं अपरिचित में विभेद करने लगता है। किसी गलत काम को करने से रोके जाने पर मान जाता है। शिशु अपिरिचित व्यक्तियों के प्रति अपनी नापसंदगी दर्शाता है। इस अवस्था के अंत तक शिशु में सामाजिक भावना का भी विकास हो जाता है, जैसे: पहले शिशु बालक अकेले खेलना पसंद करता है फिर दूसरे बालकों के साथ खेलना शरू करता है और फिर धीरे-धीरे उसे अपनी आयु के बालकों के साथ खेलने में आनंद आने लगता है।
5. **मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास :** शैशवावस्था में बालक में मानसिक क्रियाओं जैसे ध्यान, स्मृति , कल्पना, संवेदना आदि का विकास तीव्र गति से होता है। इस अवस्था में शिशु में भार का संप्रत्यय एवं समय का संप्रत्यय स्पष्ट नही होता है। जैसे-जैसे शिशु की उम्र बढती जाती है,शिशु का मानसिक विकास होता जाता है और उसमें समझने की शक्ति बढती जाती है। शिशु

अपने माता पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों को पहचानने लगता है। एक वर्ष की आयु में शिशु परिचित एवं अपरिचित व्यक्तियों में विभेद करने लगता है। शिशु परिचित व्यक्ति के प्रति हंसकर और अपरिचित व्यक्ति के प्रति रोकर अनुक्रिया व्यक्त करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सामान्य रूप से मानव विकास को ________अवस्थाओं में बांटा जा सकता है।
2. शैशवावस्था बालक के________कहलाती है।
3. 12 वर्ष की आयु से लेकर 19 वर्ष तक का काल ________कहलाता है।
4. इन्फैंट ________भाषा का शब्द है, जो दो शब्दों________व ________से मिलकर बना है।
5. दो वर्ष की आयु तक के बालक का शब्दकोश लगभग________ शब्द तक होता है।

1.3.2 बाल्यावस्था

शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था प्रारंभ होती है ,जोकि 2 वर्ष की आयु से लेकर 11 वर्ष की आयु तक मानी जाती है। इस आयु काल में बालक में स्फूर्ति अधिक होती है अतः इस अवस्था को स्फूर्ति अवस्था कहा जाता है। इसी अवस्था में बालक अपनी प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा प्रारंभ करता है इसलिये इसे प्रारंभिक विद्यालय अवस्था भी कहा जाता है।

बाल्यावस्था को पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

i. प्रारंभिक बाल्यावस्था (2 वर्ष से 6 वर्ष तक)
ii. उत्तर बाल्यावस्था (6 वर्ष से 11 वर्ष तक)

प्रारंभिक बाल्यावस्था

यह बाल्यावस्था 2 वर्ष से प्रारम्भ होकर 6 वर्ष तक की आयु तक होती है। शिक्षकों द्वारा इस अवस्था को प्राकस्कूल अवस्था तथा मनोवैज्ञानिकों के द्वारा इसे प्राकटोली अवस्था के नाम से भी पुकारा जाता है। इस अवस्था मेंहोने वाले प्रमुख विकास हैं:

1. **शारीरिक विकास** : प्रारंभिक बाल्यावस्था में बालक एवं बालिकाओं के शरीर के अंगों में परिवर्तन आना प्रारंभ हो जाता है, जैसे: शरीर के आकार में परिवर्तन आना, वजन में परिवर्तन आना , शरीर की मांसपेशियाँ अधिक गठीली और मजबूत हो जाना आदि। प्रारंभिक बाल्यावस्था की समाप्ति तक बालकों में कुछ स्थायी दांत उग आते हैं।
2. **भाषा विकास :** इस अवस्था में बालक बोलना सीखने के लिए काफी प्रेरितरहते हैं। इस अवस्था में बालक अभ्यास द्वारा शब्दों का उच्चारण करना , शब्दावली बनाना तथा वाक्य बनाकर बोलना सीख जाते हैं।

3. **सावेंगिक विकास** : प्रारंभिक बाल्यावस्था में बालकों में सामान्य तौर पर वही संवेग देखने को मिलते हैं जोकि एक सामान्य व्यस्क में देखने को मिलते हैं । वयस्कों में और बालकों में दिखने वाले संवेगों की केवल अभिव्यक्ति में अंतर होता है। इन संवेगों में क्रोध, डर , ईर्ष्या, उत्सुकता , ख़ुशी , दुःख, प्रेम आदि मुख्य होते हैं। इस अवस्था में बालक अपना क्रोध रोकर, किसी सामान को फेंककर, चीख मारकर व्यक्त करते हैं। डर के संवेग में बालक कुछ विशेष अनुक्रिया करते हैं, जैसे: भाग जाना, अपने आप को छिपा लेना आदि। अपनी उत्सुकता को शांत करने के लिए वे तरह तरह के प्रश्न करते हैं , ईर्ष्या हो जाने पर अगर कोई सामान दूसरे बालक के पास है तो वैसा ही सामान पाने के लिए अपनी चीजों की बुराई करने लगते हैं , जैसे मेरी पेंसिल ख़राब है, ड्रेस पुरानी हो गयी है आदि, हर्ष होने पर अपने संवेगों को ताली बजाकर, उछल कूद करके प्रदर्शित करते हैं। दुःख की स्थिति में खाना ना खाना , खेल में रूचि ना दिखाना आदि व्यवहार करते हैं।
4. **सामाजिक विकास** : इस अवस्था में बालक सामाजिक संपर्क स्थापित करना सीखते हैं। वे अपनी उम्र के बालकों से मित्रता करना सीखते हैं। हमउम्र बालकों के साथ खेलने में तथा बातचीत करने में बालकों को प्रसन्नता होती है । इस अवस्था में जहाँ एक ओर बालकों में कुछ ख़ास सामाजिक व्यवहार देखने को मिलते हैं, जैसे : सहयोगिता, सहानुभूति, मित्रता, अनुकरण करना, निर्भरता आदि वहीं दूसरी ओर बालको में कुछ असामाजिक व्यवहार भी देखने को मिलते हैं जैसे : आक्रामकता, लड़ाई झगडा करना, दूसरों को चिढ़ाना, दूसरों को डराना आदि।
5. **मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास :** प्रारंभिक बाल्यावस्था में बालकों में मानसिक विकास काफी तेज गति से होता है तथा बालकों में बौद्धिक क्षमता बढ़ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप बालकों में अपने आस पास की चीज़ों एवं घटनाओं को समझने की शक्ति भी बढ़ जाती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पियाजे के अनुसार संप्रत्यय विकास की यह अवस्था चिंतन की प्राकपरिचालन अवस्था है। इस अवस्था में बालकों का चिंतन तर्कसंगत नहीं होता है। बालकों में इस अवस्था में जीवन, मृत्यु, भार, संख्या, दूरी, समय आदि के बारे में एक संप्रत्यय विकसित करने की क्षमता विकसित हो जाती है। इस अवस्था में बालक क्या, क्यों , कैसे,कहाँ वाले प्रश्नों को लगातार पूछता रहता है। बालक में जीवन मृत्यु के प्रत्यय का विकास तो हो जाता है किन्तु यह प्रत्यय अस्पष्ट होता है।अतः बालक इस अवस्था में निर्जीव वस्तुओं को जैसे खिलौना, चलता हुआ पंखा , चलती हुई कार को जीवित समझ लेता है।

उत्तर बाल्यावस्था

यह अवस्था6 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 12 वर्ष तक की आयु तक होती है। शिक्षकों द्वारा इस अवस्था को प्रारंभिक स्कूल अवस्था तथा मनोवैज्ञानिकों के द्वारा टोली अवस्था के नाम से भी पुकारा जाता है, क्योंकि इस अवस्था में बालक स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए जाना शुरू कर देते हैं तथा अब उनका अपने समूह के अन्य सदस्यों के द्वारा स्वीकृत किया जाना, उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस अवस्था मेंहोने वाले प्रमुख विकास हैं:

1. **शारीरिक विकास** : इस अवस्था में शारीरिक विकास में और अधिक स्पष्टता आ जाती है। इस अवस्था में बालकों की ऊंचाई में औसतन 2 से 3 इंच की वार्षिक वृद्धि होती है तथा शरीर का वजन भी 3 से 5 पौण्ड तक औसतन प्रतिवर्ष बढ़ता है। इस अवस्था की समाप्ति तक बालकों में 32 स्थायी दांत में से 28 स्थायी दांत निकल आते हैं तथा शेष चार स्थायी दांत किशोरावस्था में निकलते हैं।
2. **भाषा विकास** : इस अवस्था में बालकों में भाषा विकास और अधिक तीव्र गति से होता है। इस अवस्था में बालकों में शब्दावली निर्माण में वृद्धि होती है।बालक शिक्षकों से बात करके, अन्य लोगों से बात करके, पुस्तकें पढ़कर, अखबार पढ़कर, टेलीविजन देखकर अपनी शब्दावली पर्याप्त मात्रा में बढ़ा लेते हैं। उनके उच्चारण में भी शुद्धता आती है तथा बालक प्राय: जटिल वाक्यों का प्रयोग करना शुरू कर देते हैं।
3. **सांवेगिक विकास** : इस अवस्था के बालकों में भी वही सभी संवेग पाए जाते हैं जो प्रारंभिक बाल्यावस्था के बालकों में पाए जाते हैं, परन्तु अभिव्यक्ति का तरीका प्रारंभिक बाल्यावस्था के बालकों से भिन्न होता है। इस अवस्था में बालक यह जान जाता है की सामाजिक रूप से बहिष्कृत संवेगों की अभिव्यक्ति से उसे सामाजिक अनुमोदन नहीं मिलेगा। अतः बालक ऐसे संवेगों की अभिव्यक्ति नही करता जो सामाजिक रूप से बहिष्कृत हों, जैसे: बात बात पर क्रोध करना, रो देना , किसी से डरकर भाग जाना आदि। इस अवस्था में बालक में क्रोध किसी ख़ास अवस्था में ही उत्पन्न होता है, जैसे: यदि बालक पर कोई झूठा आरोप लगाया जाए या बेवजह कोई टिका -टिप्पणी की जाए। इसी प्रकार जहाँ प्रारंभिक बाल्यावस्था के बालकों में किसी भी नयी चीज़ को देखकर उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है, वहीं इस अवस्था के बालकों में केवल उन्ही चीज़ों के प्रति उत्सुकता उत्पन्न होती है जो उनके लिए महत्वपूर्ण होती हैं।
4. **सामाजिक विकास** : जैसे की हम पहले भी अध्ययन कर चुके हैं की इस अवस्था को टोली अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था की विशेष बात यह है कि इस अवस्था में बालक हमउम्र बालकों के साथ टोली बनाकर रहना पसंद करता है। टोली में रहते हुए बालक का समाजीकरण होता है। बालक टोली में रहते हुए अनेक बातें सीखता है, जैसे : किसी कार्य का उत्तरदायित्व लेना , प्रतियोगिता में भाग लेना , किसी कार्य में सहयोग करना , बालक में सामाजिक समझ का विकसित होना आदि।कभी कभी बालकों पर टोली का नकारात्मक प्रभाव भी पड़ जाता है और ऐसी स्थिति में बालक टोली द्वारा निर्धारित मूल्यों एवं मानकों को सर्वोपरि मानते हुए अपने माता पिता के द्वारा निर्धारित मूल्यों एवं मानकों को ही अस्वीकृत कर देता है।
5. **मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास** : इस अवस्था में बालक मानसिक रूप से प्रारंभिक बाल्यावस्था की तुलना में अधिक विकसित हो जाते हैं। इस अवस्था के बालकों में लगभग 90% तक मानसिक विकास पूरा हो जाता है।

पियाजे के अनुसार इस अवस्था में बालक चिंतन के मूर्त परिचालन की अवस्था में होता है। इस अवस्था में बालक पहले सीखे गए संप्रत्यय को और अधिक स्पष्ट मजबूत और मूर्त बनाता है। अब बालकों का चिंतन पहले से अधिक तर्कसंगत हो जाता है जैसे बालक यह समझने लगता है की 1 फीट में 12 इंच होते हैं तथा 12 इंच का 1 फीट होता। जीवन मृत्यु का प्रत्यय भी अधिक स्पष्ट हो जाता है अतः बालक जीवित एवं अजीवित वस्तुओं में सार्थक अंतर करने लगता है। उनमें मुद्रा सम्बन्धी प्रत्यय भी विकसित हो जाता है। बालक में दिन , तारीख व माह ठीक ठीक बता सकने की क्षमता भी विकसित हो जाती है। इस अवस्था में बालक जो भी स्कूल में सीखते हैं ,जो भी अनुभव रेडियो सुनने से , टेलिविज़न देखने से ,अख़बार पढने से ,चलचित्र देखने से प्राप्त करते हैं , उससे वे नए ढंग से अर्थ निकालना शुरू कर देते हैं।

अभ्यास प्रश्न

6. प्रारंभिक बाल्यावस्था______की आयु से प्रारंभ होकर________तक की आयु तक होती है।
7. मनोवैज्ञानिकों के द्वारा_________ को प्राकटोली अवस्था के नाम से भी पुकारा जाता है।
8. बाल्यावस्था को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (सत्य / असत्य)
9. उत्तर बाल्यावस्था 2 वर्ष से प्रारम्भ होकर 6 वर्ष तक की आयु तक होती है। (सत्य /असत्य)
10. बाल्यावस्था बालक के निर्माण का काल कहलाता है। (सत्य / असत्य)

1.4 बाल्यावस्था का प्रत्यय

सामान्यतः विकास की शैशवावस्था और प्रौढावस्था के बीच की जो अवस्था होती है, बाल्यावस्था कहलाती है। अगर हम भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा को देखें तो पाते हैं कि बाल्यावस्था 6 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक मानी जाती थी। जिसमे बालकों में आधारभूत मूल्यों एवं कौशलों की आधारशिला रखी जाती थी। ये मूल्य बालक को उसके परिवार से संस्कार के रूप में प्राप्त होते थे।बालक को अनौपचारिक शिक्षा परिवार के द्वारा ही दी जाती थी।

ब्लेयर , जोन्स तथा सिम्पसन ने बाल्यावस्था को परिभाषित करते हुए लिखा है कि- बाल्यावस्था वह समय है , जब व्यक्ति के आधारभूत द्रष्टिकोण , मूल्यों और आदर्शों का बहुत सीमा तक निर्माण होता है। निर्माण का यह उत्तरदायित्व माता- पिता, शिक्षक और समाज पर होता है।

जैविक परिभाषा के अनुसार जन्म से लेकर किशोरावस्था के बीच की जो अवस्था होती है बाल्यावस्था कहलाती है।

कानूनी परिभाषा के अनुसार वह व्यक्ति जिसकी आयु प्रौढावस्था की आयु से कम होती है बालक कहलाता है।

United Nations Convention on the Right of the Child के अनुसार – Child is a human being below the age of 18 years unless under the law applicable to the child, majority is attended earlier.

एक समानपरिभाषा ना होने के कारणभारत वर्ष मेंबाल्यावस्था का प्रत्ययअत्यंत अस्पष्ट हो गया है।

अभ्यास प्रश्न

11. विकास की ______और_____के बीच की जो अवस्था होती है, बाल्यावस्था कहलाती है।
12. भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार बाल्यावस्था______की आयु से प्रारंभहोकर _______की आयु तक मानी जाती थी ।

1.4.1 विभिन्न सामाजिक राजनैतिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित विभिन्न बाल्यावस्था के प्रत्यय

विभिन्न सामाजिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित बाल्यावस्था के प्रत्यय

प्रत्येकबालक किसी ना किसी समाज में जन्म लेता है। अतः उस समाज एवं समाज की संस्कृति का बालक के व्यवहार एवं व्यक्तित्व परगहरा प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था का प्रत्यय विभिन्न समाजों में विभिन्न है यहाँ पर हम विभिन्न सामाजिक राजनैतिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित विभिन्न बाल्यावस्था के प्रत्यय के विषय में चर्चा करेंगे।

i. **उपेक्षित वर्ग** : इस वर्ग में वे बालक आते हैं , जो सामाजिक- आर्थिक तथा संस्कृतिक रूप से पिछड़े होते हैं, जैसे : अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के बालक आदि। ऐसे समाज में बाल्यावस्था का प्रत्यय वास्तविक तौर पर उपस्थित नही होता है ऐसे बालक प्रायः गरीब एवं वंचित परिवार से आते हैं। अतः इन बालकों को अपने परिवार की आर्थिक मदद करने हेतु बालश्रमिक के रूप में किसी दुकान या फैक्ट्री में काम करना पड़ता है इन बालकों की स्कूल एवं शिक्षक के प्रति मनोवृत्ति नकारात्मक होती है, इनकी संवेगात्मक समस्यायें गंभीर होती हैं।स्कूल में इनका नामांकन दर कम तथा उच्च ड्राप आउट रेट होता है । इन बालकों में साधारण आकांक्षा होती है व हीनभावना पायी जाती है। इनमें अभिप्रेरणा का नितांत अभाव होता है तथा दूरदर्शिता की कमी पायी जाती है।ऐसे बालक अनौपचारिक भाषा का प्रयोग करते हैं व इनकी भाषा अस्पष्ट होती है।

ii. **लिंग द्रष्टिकोण :** हमारे समाज में बालक और बालिका में भेद करना एक पीड़ी से दूसरी पीड़ी तक निरंतर चला आ रहा है। यद्धपि भारतीय संविधान में पुरुष व स्त्री को समान अधिकार दिए गए हैं फिर भी भारतीय समाज में लिंग भेद विद्दमान है। हमारे समाज में एक बालिका की

बाल्यावस्था का प्रत्यय एक बालक की बाल्यावस्था के प्रत्यय से भिन्न होता है भारतीय समाज में बालकों को बालिकाओं की तुलना में हर क्षेत्र में प्राथमिकता दी जाती है। परिवार में बालक का जन्म होने पर जहाँ खुशियाँ मनाई जाती हैं वहीं बालिका के जन्म होने पर उसको बोझ समझा जाता है। भारत सरकार द्वारा लिंग निर्धारण को प्रतिबंधित कर दिया गया है तथा ऐसा करना कानूनी तौर पर अपराध है, फिर भी कुछ चिकत्सकों की मदद से माता पिता जन्म से पूर्व ही लिंग निर्धारण कराकर बालिका को जन्म लेने से पहले गर्भ में ही समाप्त करा देते हैं। यही कारण है की वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार लिंग अनुपात 1000 पुरुषों पर 914 महिला है, जोकि वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 1000 पुरुषों पर 927 महिला था। इसी प्रकार वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जहाँ पर पुरुषों की साक्षरता दर 82.14 % है वहीं महिला साक्षरता दर मात्र 65.46 % है, क्योंकि अधिकांश माता पिता आज भी बालिका को पराया धन समझते है और उन्हें कोई लाभ नही होगा, ऐसा सोचकर बालिका की शिक्षा पर व्यय करना व्यर्थ समझते हैं। हमारे समाज में जहाँ बालक पढने के लिए स्कूल भेजा जाता है वहीं बाल्यावस्था से ही बालिकाओं से यह अपेक्षा की जाती है की वे घर के काम जैसे खाना बनाना , कपडे धोना , अपने छोटे भाई बहिन की देखभाल करना आदि कार्यों में अपने माता पिता की मदद करें । अतः इसी भेदभाव के कारण बालिकाओं के व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता व उनमे आत्मविश्वास की भी कमी रह जाती है। परिवार द्वारा किए जाने वाले इस लिंग भेद के कारण ही बालिकाओं का नामांकन दर कम व ड्राप आउट रेट बालकों की तुलना में बहुत ज्यादा होता है तथा बालिकाएं ना केवल शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाती हैं, बल्कि अनेक स्वस्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से भी ग्रसित हो जाती हैं जैसे- एनीमिया, कुपोषण आदि।

iii. **विकलांग बालक** : इस श्रेणी में प्रायः मानसिक रूप से मंद बालक, द्रष्टि दोष से ग्रसित बालक, भाषा दोष से ग्रसित बालक , श्रवणसम्बन्धी दोष से ग्रसित बालक आते हैं। इन बालकों के लिए बाल्यावस्था का प्रत्यय सामान्य बालकों की तुलना में भिन्न होता है ऐसे बालकों में एक अनुपयुक्त आत्मसम्प्रत्यय विकसित होजाता है। जिसके कारण उनके व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध हो जाता है। साथियों के द्वारा मजाक उडाये जाने के कारण ऐसे बालक हीन भावना से ग्रसित हो जाते हैं। ऐसे बालकों को सामान्य कक्षा से अलग रखा जाता है जिससे उनमे अवांछित सामाजिक शीलगुण विकसित होने की संभावना ज्यादा रहती है ।

iv. **मानसिक रूप से मंद बालकों** में शारीरिक कद सामान्य बालकों की तुलना में भिन्न होता है। सामान्य बालकों की तुलना में बौद्धिक क्षमता कम होती है, ऐसे बालक समाज एवं परिवार के लोगों के साथ समायोजन नहीं कर पाते हैं । ऐसे बालकों का संवेगात्मक विकास अनुपयुक्त होता है तथा भाषा विकास भी बहुत ही कम हो पाता है। इन बालकों को उचित अनुचित का ज्ञान नहीं होता है। इनमें आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता की भी कमी होती है।

v. **दृष्टिदोष से ग्रसित बालकों** को दो वर्गों में रखा जा सकता है- अंधे बालक, निम्न द्रष्टि वाले बालक। अंधे बालक या तो जन्म से ही अंधे होते हैं या जन्म के बाद किसी बीमारी या दुर्घटना के कारण, वे अंधेपन का शिकार हो जाते हैं। द्रष्टिदोष से ग्रसित बालकों की सीखने की क्षमता प्रभावित होती है। अंधे बालकों को विशेष पद्धति द्वारा ही पढना लिखना सिखाया जाता है। लेकिन निम्न द्रष्टि वाले बालकों की समस्या अंधे बालकों की तुलना में अधिक गंभीर होती है, क्योंकि जहाँ एक ओर ऐसे बालकों को विशेष पद्धति से पढना लिखना नही सिखाया जाता वहीं दूसरी ओर ऐसे बालक द्रष्टि कम होने से सामान्य पुस्तकों के उन अक्षरों को नहीं पढ़ पाते , जिनके आकर छोटे होते हैं।

vi. **भाषा दोष से ग्रसित बालकों** को कई वर्गों में रखा जा सकता है जैसे : गूंगे बालक, उच्चारण सम्बन्धी दोष वाले बालक, आवाज़ सम्बन्धी दोष वाले बालक , प्रवाहिता सम्बन्धी दोष वाले बालक व व्याख्यान सम्बन्धी दोष वाले बालक। भाषा सम्बन्धी रोग से ग्रसितदोष बालकों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक विकास प्रभावित होता है। ऐसे बालकों में स्कूल में समायोजन सम्बन्धी कठिनाईयां होती हैं। गूंगे बालक चाहकर भी अपनी इच्छा को अर्थपूर्ण भाषा के रूप में अभीव्यक्त नही कर पाते हैं। उच्चारण सम्बन्धी दोष वाले बालक शब्दों का गलत ढंग से उच्चारण करते हैं जैसे चोटी को रोटी कहना , चाल को छाल कहना आदि। आवाज़ सम्बन्धी दोष वाले बालक नाक में बोलते हैं या उनकी आवाज़ कर्कश होती है। प्रवाहिता सम्बन्धी दोष वाले बालक बोलने में हकलाते हैं, जबकि व्याख्यान सम्बन्धी दोष वाले बालक कुछ ख़ास शब्दों को बोलने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

vii. **श्रवण सम्बन्धी दोष से ग्रसित बालकों** को दो वर्गों में रखा जा सकता है : पूर्ण बहरापन से ग्रसित बालक एवं आंशिक बहरापन से ग्रसित बालक। पूर्ण बहरापन से ग्रसित बालक विशेष प्रवर्धक के प्रयोग के बाद भी कुछ नहीं सुनते तथा दूसरों की भाषा नहीं समझ पाते हैं। जबकि आंशिक बहरेपन से ग्रसित बालक प्रवर्धक का प्रयोग करके दूसरों की बोली को समझ लेते हैं या यदि इनसे ऊँचे स्वर में बोला जाए तो भी ये सुन लेते हैं।

अभ्यास प्रश्न

13. हमारे समाज में बालिका एवं बालक की बाल्यावस्था का प्रत्यय एक सामान है। (सत्य / असत्य)
14. मानसिक रूप से मंद बालकों में, सामान्य बालकों की तुलना में बौद्धिक क्षमता कम होती है। (सत्य/असत्य)
15. श्रवण सम्बन्धी दोष से ग्रसित बालकों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है। (सत्य/असत्य)

विभिन्न राजनैतिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित बाल्यावस्था के प्रत्यय

हमारे देश में बालक एवं बाल्यावस्था को केंद्र में रखते हुए अनेक राजनैतिक कदम उठाये गये हैं भारतीय कानून एवं पालिसी के अनुसार बाल्यावस्था की विभिन्न परिभाषायें दी गयी हैंI वर्तमान में विभिन्न कानून एवं पालिसी के अनुसार बाल्यावस्था की उम्र सीमा 14 वर्ष से कम, 18 वर्ष से कम तो किसी कानून एवं पालिसी के अनुसार 21 वर्ष से कम तक है। अतः बाल्यावस्था के प्रत्यय के स्पष्टीकरण हेतु नेशनल पालिसी फॉर चिल्ड्रेन 2013 के द्वाराबाल्यावस्था की जो परिभाषा दी गयी है, उस परिभाषा के साथ समानता लाने के लिए भारत सरकार को अपने विभिन्न कानूनों में संशोधन करना होगा।

नेशनल पालिसी फॉर चिल्ड्रेन 2013 के अनुसार- 18 वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति बालक कहलाता है। बाल्यावस्था जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसके अपने मूल्य हैं तथा इस अवस्था में बालक के संपूर्ण तथा सामन्जस्यपूर्ण विकास एवं सुरक्षा के लिए बहुक्षेत्रीय, समेकित एवं समावेशित उपागम की आवश्यकता है।

हमारे देश में बालक एवं बाल्यावस्था से सम्बंधित कई कानूनी एवं संवैधानिक प्रावधान हैं। विभिन्न कानूनों के अंतर्गत बालक को विभिन्न आयु सीमा के अनुसार परिभाषित किया गया है। द चाइल्ड लेबर प्रोहिबिशन एंड रेगुलेशन एक्ट 1986 के अनुसार कोई भी व्यक्ति जिसने 14 वर्ष की आयु पूरी ना की हो बालक कहलाता है। प्रोहिबिशिन ऑफ़ चाइल्ड मैरिज एक्ट 2006 के अनुसार कोई भी वह (व्यक्ति) पुरुष जिसने 21 वर्ष की आयु व महिला जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी ना की हो वह बालक कहलाता है। जुवेनिल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ़ चिल्ड्रेन एक्ट 2000 (2006 एवं 2010 में संशोधित) के अनुसार वह व्यक्ति जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी ना की हो बालक कहलाता है।
श्रम कानून के अंतर्गत फैक्ट्री एक्ट 1948 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति बालक कहलाता है तथा इस एक्ट के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति किसी फैक्ट्री में काम नही कर सकता है।
भारतीय पैनल कोड ने अपने फौजदारी कानून में कहा है कि किसी भी बालक के द्वारा 7 वर्ष तक की आयु तक किया गया कोई भी कृत्य अपराध नही है। अतः 7 वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए दंड का कोई प्रावधान नही है। 7 वर्ष से 12 वर्ष की आयु के बीच के बालकों द्वारा किए गये कृत्य के लिए दंड का प्रावधान है , यदि यह साबित किया जा सके की बालक को इस एक्ट के परिणामों की समझ है।
भारतीय संविधान में बालकों के लिए निम्न प्रावधान किए गए हैं:

- **अनुच्छेद 23** मानव और दुर्व्यपार तथा बालश्रम का प्रतिषेध करता है।
- **अनुच्छेद 24** किसी फैक्ट्री में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध करता है ।
- **अनुच्छेद 45** प्रारंभ में भारत के संविधान में यह घोषणा की गयी थी की ‘राज्य संविधान के प्रारंभ से 10 वर्ष की कालावधि के अन्दर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु समाप्ति तक नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा’ और तभी से राज्यों ने 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था का प्रयास शुरू कर दिया। 2002 में 86 वा संविधान संशोधन कियागया तथा इस संशोधन के द्वारा संविधान में एक

नया अनुच्छेद- 21 क जोड़ा गया जो इस प्रकार है – 'राज्य 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने की ऐसी रीति में , जो राज्य विधि द्वारा अवधारित करे उपबंध करेगा' इसके साथ ही **अनुच्छेद 45** की घोषणा निम्न घोषणा से प्रतिस्थापित की गयी- राज्य सभी बालकों के लिए 6 वर्ष की आयु पूरी करने तक प्रारंभिक बाल्यावस्था देख रेख और शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।

- 86 वें संविधान संशोधन में ही संविधान के भाग - 4 क में एक नया मूल कर्त्तव्य 51 (ट) जोड़ा गया –'माता पिता या संरक्षक 6 से 14 वर्ष की आयु वाले अपने बालक के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे'।
- वर्ष 2009 में बालकों का नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पास किया गया जोकि 1 अप्रैल 2010 से पूरे भारतवर्ष में लागू हो गया है। इस अधिनियम के अनुसार 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बालकों को कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करने का मूल अधिकार है।
- **अनुच्छेद 46** में यहव्यवस्था की गयी है 'राज्य जनता के कमजोर वर्गों, विशेषतः अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा'।

अभ्यास प्रश्न

16. वर्ष 2010 में बालकों का नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पास किया गया। (सत्य/असत्य)
17. अटेंशन डेफिसिट हाईपरएक्टिविटी विकारबाल्यावस्था में होने वाली एक मनोवैज्ञानिक समस्या है।(सत्य/ असत्य)
18. अनुच्छेद 23 किसी फैक्ट्री में बालकों के नियोजन का प्रतिषेधकरता है। (सत्य / असत्य)
19. द चाइल्ड लेबर प्रोहिबिशन एंड रेगुलेशन एक्ट 1986 के अनुसार कोई भी व्यक्ति जिसने 14 वर्ष की आयु पूरी ना की हो बालक कहलाता है। (सत्य / असत्य)
20. 86 वें संविधान संशोधन में ही संविधान के भाग - 5 क में एक नया मूल कर्त्तव्य 51 (ट) जोड़ा गया है। (सत्य/असत्य)

1.5 सारांश

इस इकाई में आपने जन्म, शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था के विषय में अध्ययन किया है। इसमें जन्म, शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं बाल्यावस्था की उपअवस्थाओं: प्रारंभिक बाल्यावस्था व उत्तर

बाल्यावस्था में होने वाले विभिन्न विकासों का वर्णन किया गया है। बाल्यावस्था के प्रत्यय को बताते हुए विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक वास्तविकताओं के द्वारा निर्मित बाल्यावस्था के विभिन्न प्रत्ययों पर प्रकाश डाला गया है। जैसा की आपने देखा की शैशवावस्था बालक के निर्माण का काल है । यह अवस्था ही वह आधार है, जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है। इस अवस्था में बालक का जितना अधिक निरीक्षण एवं निर्देशन किया जाता है बालक का विकास और उसके जीवन का विकास उतना ही उत्तम होता है। शैक्षिक द्रष्टि से बाल्यावस्था भी जीवन की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है, इस अवस्था में बालक जिन व्यक्तिक , सामाजिक एवं शिक्षा सम्बन्धी व्यवहार एवं आदतों का निर्माण कर लेता है उनको रूपांतरित कर पाना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है। इस द्रष्टि से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों पर बालकों के निर्माण करने का बड़ा उत्तरदायित्व है।

1.6 शब्दावली

1. **शैशवावस्था :** बालक के जन्म लेने के उपरान्त की अवस्था को शैशवावस्था कहा जाता हैयह अवस्था जन्म से लेकर 2 वर्ष तक रहती है।
2. **बाल्यावस्था :** विकास की शैशवावस्था और प्रौढावस्था के बीच की जो अवस्था होती है, बाल्यावस्था कहलाती है। यह अवस्था दो वर्ष की आयु से लेकर 11 वर्ष की आयु तक रहती है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पांच
2. निर्माण का काल
3. किशोरावस्था
4. लैटिन, In, Fari
5. 200-300
6. 2 वर्ष, 6 वर्ष
7. उत्तर बाल्यावस्था
8. सत्य
9. असत्य
10. असत्य
11. शैशवावस्था , प्रौढावस्था
12. 6 वर्ष, 12 वर्ष
13. असत्य
14. सत्य

15. असत्य
16. असत्य
17. सत्य
18. असत्य
19. सत्य
20. असत्य

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओझा , एन. एन. 2005. भारत की सामाजिक समस्याएं , क्रोनिकल पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली
2. पाठक, पी. डी. 2006. शिक्षा मनोविज्ञान , अग्रवाल पब्लिकेशन्स , आगरा
3. लाल , आर. बी. 2007. शैक्षिक मनोविज्ञान , आर. लाल. पब्लिकेशन्स, मेरठ
4. www.childlineindia.org.in

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैशवावस्था को जीवन का महत्वपूर्ण काल क्यों कहा जाता है, स्पष्ट कीजिए तथा इस काल में होने वाले विभिन्न विकासों का वर्णन कीजिए ।
2. "बाल्यावस्था जीवन का अनोखा काल है" इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए और इस काल में होने वाले विभिन्न विकासों का वर्णन कीजिए ।

इकाई 2 - विविध सन्दर्भों में बच्चों द्वारा जी जा रही बाल्यावस्था

Differing childhoods within children's lived contexts: family, schools, neighbourhoods and community - critiques of the relevant researches, narrations, and descriptions from varied sources.

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 यूरी ब्रानफेनब्रेनर का पारिस्थितिक मॉडल: बाल्यावस्था की बहुलता को समझने का सैद्धान्तिक उपकरण
2.4 भारत में बाल्यावस्था
2.5 बाल्यावस्था का विकासात्मक संदर्भ: परिवार
2.6 बाल्यावस्था का विकासात्मक संदर्भ: पड़ोस
2.7 बाल्यावस्था का विकासात्मक संदर्भ: विद्यालय
2.8 बाल्यावस्था में अनूठेपन का उदाहरण: बाल श्रमिक
2.9 बाल श्रम के लिए उत्तरदायी कारण
2.10 बाल्यावस्था में अनूठेपन का उदाहरण : पथवासी बच्चे
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज का ताना-बाना विविधता युक्त है। यह भी द्रष्टव्य है कि ये विविधताएं कई बार आग्रह और पूर्वग्रह के कारण भेदभाव और सामाजिक पदानुक्रम का आधार बनती है। ऐसे परिवेश में बड़े होने का

अनुभव केवल जैविक परिपक्वता तक सीमित नहीं रहता है बल्कि अनके रूपों में प्रकट होता है। 'बड़े होने का अनुभव' किस तरह प्रकट होगा? यह उस परिवेश पर निर्भर करता है जिसमें बच्चा बड़ा हो रहा होता है। भारत में एक ओर ग्रामीण परिवेश है जहां जातीय सीमाएं, पितृसत्ता, मानव के जैविक विकास से जुड़े धार्मिक और सामुदायिक संस्कार, संयुक्त परिवार, सामूहिकता कम या ज्यादा विद्यमान हैं तो दूसरी ओर नगरीय संस्कृति का प्रभाव है जहां पाश्चात्य आधुनिकता के प्रभाव में भारतीय समाज की परंपरागत पहचान जैसे-जाति की सीमाएं कमजोर हुयी हैं, संस्थागत समाजीकरण पर विश्वास बढ़ा है, समानता जैसे मूल्यों के प्रभाव में बालिकाओं की शिक्षा को लेकर जागरूकता आयी है। इसके साथ ही बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि उनके पहचान और विकास का संकेतक के रूप में स्थापित हुए हैं। तकनीकी और प्रौद्योगिकी का भी व्यापक प्रभाव है। यहां 'गेटेड कम्यूनिटी' और माल कल्चर का प्रभाव भी देखा जा सकता है। विकास की भौतिक उपलब्धियों के आर्थिक संकतेकों के अतिरिक्त आदिवसी/मूलनिवासियों के भी समुदाय है जो अपनी संस्कृतिगत विश्वासों और परंपराओं के अनुसार बच्चों का लालन-पालन और समाजीकरण करते हैं। उनकी अपेक्षाएं और विकासात्मक संदर्भ बचपन की लोकप्रिय छवियों से भिन्न होते हैं। विद्यालय के अभाव, विद्यालय की लागत आदि सीमाओं को शिक्षा के अधिकार कानून के बाद विजित कर लिया गया है लेकिन परिवार की गरीबी और इस गरीबी को दूर करने में आय अर्जक की भूमिका को निभाना ऐसा पक्ष है जिसे अभी भी दूर नहीं किया गया है। इसका प्रभाव नगरीय और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में है। बाल्यावस्था पर गरीबी का भी प्रभाव अवलोकित किया जा सकता है। बाल्यावस्था की एक लोकप्रिय छवि- 'अबोध बच्चा', अभिभावकों द्वारा पोषित, विद्यालय की उपस्थिति, चंचल भोला सुकुमार सक्रिय उत्साही आदि के साथ एक हाशिए का भी बचपन है -

- वे बच्चे जिसके पास आवास, भोजन और वस्त्र की आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए कोई पाल्य नहीं है।
- वे बच्चे जो ऐसे पाल्य या व्यक्ति के साथ रहने को मजबूर जिसने उसे साथ रहने के लिए विवश किया है और उनके साथ रहने के कारण बच्चों के मानसिक, शारीरिक और यौनि शोषण की संभावना अधिक है।
- जो शारीरिक या मानसिक या उक्त दोनों दृष्टियों से विशिष्ट क्षमता से युक्त है और जिसकी देखभाल नहीं की जा रही है।
- जिसके अभिभावक तो हैं लेकिन जो स्वयं अपनी और अपने पाल्य की देखभाल कर पाने में समर्थ नहीं है।
- जो अनाथ हैं, या जो परिवार से बिछड़ गए हैं या जो परिवार को छोड़ कर चले आए हैं और जिनके अभिभावकों का पता नहीं चल पाया है।
- जो मानव-तस्करी, देह व्यापार और मादक पादर्थो के सेवन जैसे व्यसनों में लिप्त हैं।
- जो सशस्त्र संघर्ष, प्राकृतिक आपदा के प्रभाव में हैं।

बच्चों की विविधता के उक्त संदर्भ को शिक्षकों द्वारा संज्ञान में लिया जाना चाहिए। इन बच्चों के असामान्य बचपन की विशिष्टता को औपाचारिक शिक्षण के द्वारा संबोधित किया जाना चाहिए।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. बाल्यावस्था में विविधता की संकल्पना को समझ सकेंगे।
2. वे भारतीय समाज के विशेष संदर्भ में बाल्यावस्था के पहलुओं को पहचान सकेगें।
3. वे अपने परिवेश में बाल्यावस्था को प्रभावित करने वाले कारकों पर मनन कर सकेगें।

बचपन में बहुलता

'बचपन में बहुलता' अपेक्षाकृत एक नया सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य है जो परिवार अध्ययन, बाल्यवस्था अध्ययन, मनोविज्ञान, नृशास्त्र जैसे अन्य सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन उपागमों में बदलाव को भी दर्शाता है। यदि बचपन से संबंधित अकादमिक बहसों पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि एक विशिष्ट विकासात्मक अवस्था के रूप में बचपन की पहचान 17 वीं और 18 वीं शताब्दी के आसपास की गयी। एरीज (1962) इस संबंध में तर्क देते हैं कि बाल्यावस्था को एक विशिष्ट विकासात्मक अवस्था के वर्ग में रखने के लिए बच्चों की वयस्कों से भिन्न गतिविधियों में संलग्नता को आधार बनाया गया। इस तर्क के सापेक्ष कि बाल्यावस्था का उदय 17 वीं व 18वीं शताब्दी की परिस्थितियों पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि इस दौरान घटित हो रहे पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रान्ति और उपनिवेशीकरण ने बालक और वयस्क के बीच अंतराल को पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस दौरान ही आधुनिकता का जन्म हुआ जिसमें व्यक्ति के लिए स्थान, मध्यम वर्ग का उदय, राज्य की कल्याणकारी अवधारणा और नागरिकता बोध को स्थान मिला। इसी तरह स्वास्थ्य सेवाओं के प्रसार और उपलब्धता, शिशु मृत्यु दर पर नियंत्रण, संक्रामक रोगों पर नियंत्रण को भी वैज्ञानिक प्रगति के संकेतों के रूप में पहचाना गया। इन परिवर्तनों ने ऐसी परिस्थिति तैयार की जिसमें बच्चों की सुरक्षा और देखभाल और पोषण की जरूरतों को पूरा इस अवस्था की विशिष्ट आवश्यकताओं के रूप में पहचाना गया। सामाजिक कुशलताओं, ज्ञान और संस्कृति के संचरण के लिए संस्थागत समाजीकरण पर बल दिया गया और विद्यालय जैसी संस्थाओं का विकास प्रारंभ हुआ। 'कल्याणकारी राज्य' की संकल्पना ने इस प्रक्रिया में राज्य को भी भागीदार बना दिया। इन बदलावों के फलस्वरूप बाल्यावस्था की जैविक सीमा/आयु सीमा को लंबा कर दिया। बच्चों की दुनिया को वयस्कों की दुनिया से भिन्न माना जाने लगा जिसकी विशिष्टता खेल और विद्यालयी शिक्षा में संलग्नता को बताया गया। वयस्कों की दुनिया से बच्चों की दुनिया को अलग करने में यह ध्यान रखा गया कि यौनिकता/कामुकता (Sexuality) से रहित हो। इस तरह से बाल्यावस्था की जो छवि निर्मित हुयी उसे 'एक मध्यमवर्गीय नौकरीपेशा पितृसत्तात्मक समाज में बाल्यावस्था' का एकांगी रूप हावी था। इसमें बच्चे को आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से निर्भर, सुरक्षा और संरक्षण की आवश्यकता, भोला, सरल,

प्राकृतिक स्वाभाव वाला जैसे विशेषणों से परिभाषित किया जाता है। बाल्यावस्था, वयस्क बनने के लिए तैयारी की अवस्था बन कर रह जाती है। इसी उद्देश्य से शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं को भी उपलब्ध कराया जाता है।

वर्तमान में इस स्वरूप की सार्वभौमिकता को नकारा जा रहा है। बाल्यावस्था की विशेषतों के उक्त साधारणीकृत लक्षणों के बदले बाल्यावस्था में बहुलता को पहचाना गया है। इस संदर्भ में बाल्यावस्था के निम्नलिखित पहुलओं का पर बल दिया गया है-

- बाल्यावस्था की कोई सार्वभौमिक संकल्पना या परिभाषा नहीं है। इसे जैविक विकास की अवस्थाओं के वर्गों में रखना एक सीमित अर्थ प्रदान करता है। वस्तुतः यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक निर्मिति है।
- बच्चों की दुनिया वयस्कों की दुनिया से गुणात्मक दृष्टि से भिन्न होती है। उनकी इस दुनिया को उनके अनुभवों और नज़रिए से देखा जाना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि वे निष्क्रिय ग्रहणकर्ता (PassiveRecipient) नहीं है बल्कि सक्रिय अर्थ निर्माता है।
- बच्चों की कुछ विशेषताओं और विकासात्मक संकेतकों के बारे में भविष्यकथन किया जा सकता है लेकिन बच्चों का विकास उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में स्थापित होता है। इस संदर्भ की मान्यताओं, विश्वासों, रीति-रिवाजों और कर्मकाण्डों के आधार पर बाल्यावस्था की विशेषताओं को पहचाना जा सकता है।
- बच्चों की सामाजिक स्थिति के सदंर्भ में उनके जेण्डर की भूमिका को अवश्य संज्ञान में लेना चाहिए। प्रायः यह पाया गया है कि बाल्यावस्था की लोकप्रिय छवि में एक लड़के के विकासात्मक संदर्भ को ही संज्ञान में लिया जाता है।
- बच्चों के विकास की चर्चा में बच्चों के अधिकार को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। बाल्यावस्था में स्वास्थ्य और शिक्षा के अधिकारों और सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।
- सामान्य बाल्यावस्था में संरक्षण और देखभाल का समुचित प्रबंध होता है। इसके अलावा वे बच्चे जो संकटपूर्ण वातावरण जैसे- आतंक प्रभावित क्षेत्र, आपदाग्रस्त क्षेत्र और भौतिक सुविधाओं से वंचित क्षेत्र में रह रहे हैं उनके बाल्यावस्था पर भी विचार करना चाहिए। प्रतिकूलताओं में बचपन किस प्रकार प्रस्फुटित होता है? इस पर भी विचार करना चाहिए।
- गरीबी, प्रवसन की चुनौतियों, घरेलू हिंसा और सामाजिक उत्पातों के बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का भी संज्ञान में लेना चाहिए।

2.3 यूरी ब्रानफेनब्रेनर का पारिस्थितिक मॉडल: बाल्यावस्था की बहुलता को समझने का सैद्धान्तिक उपकरण

बाल्यावस्था में बहुलता को समझने के लिए यूरी ब्रानफेनब्रेनर का पारिस्थितिक मॉडल हमारी मदद करता है। इसके अनुसार, एक बालक (या व्यक्ति विशेष) को अनेक तरह के सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं। इन सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों में सबसे पहले सूक्ष्मतंत्र (MicroSystem) आता हैं। सूक्ष्मतंत्र के अंतर्गत बालक के आसपास के करीबी लोग आते हैं जैसे परिवार, शिक्षक, भाई-बहन व परिवार के अन्य वयस्क आदि। ये सभी बालक को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं तथा बच्चे उन्हें प्रभावित करते हैं। अगले तंत्र में मध्यवर्ती तंत्र (MesoSystem)आता है, इसमें परिवार शिक्षक तथा अन्य इकाइयाँ आती हैं। ये इकाइयां आपस में अन्तः क्रिया करती हैं जिसका असर बालक पर पड़ता है। यह भी उल्लेखनीय है कि इन इकाइयों की आपसी प्रक्रिया में बालक कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। बर्हितंत्र (ExoSystem के अंतर्गत वह सामाजिक कारक आते हैं, जिनका बालक पर अप्रत्यक्ष रूप से असर पड़ता है। जैसे- शिक्षक का विद्यालय के प्रशासन से संबंध, माता-पिता का व्यवस्था, उनकी आय, आदि। अंत में समष्टि तंत्र आता है। इसके अंतर्गत समाज के मूल्य, नियम, कायदे-कानून, रीति- रिवाज आदि को रखते हैं।

इस मॉडल को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में आयु के अतिरिक्त बच्चों को दी गयी सामाजिक भूमिका, उनके परिवार की सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक-क्षेत्रीय पृष्ठभूमि, सामाजिक संबंधों का जाल, सांस्कृतिक विश्वास और मान्यताएं वृह्दस्तरीय कारण हैं जो बाल्यावस्था की बहुलता के लिए उत्तरदायी है। सूक्ष्म स्तर पर पाल्य के साथ बिताया जाने वाला समय, बातचीत और गतिविधियां, अभिभावकों की विद्यालय और पाल्यों से संबंधित अन्य एजेंसियों से संबंध, व्यक्तिगत प्रवृत्ति, जेण्डर आधारित श्रम विभाजन, जीवन-यापन की शैलियां, परिवार का संगठन, देखभाल और लालन-पालन की शैलियों आदि बाल्यावस्था के स्वरूप को तय करती है।

2.4 भारत में बाल्यावस्था

भारत में जनगणना के अंतर्गत ‘बच्चे‘ के जनांकिकीय वर्ग के अन्तर्गत उस प्रत्येक व्यक्ति को रखते हैं जिसकी आयु 14 वर्ष से कम होती है। अधिकांश सरकारी योजनाओं में बच्चे की परिभाषा करने के लिए इसी मानक आयु को आधार बनाया गया है। यह भी उल्लेखनीय है के अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यू.एन.सी.आर.सी. (यूनाइटेड नेशंस कन्वेन्शन फॉर चिल्ड्रेन राइट्स)के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु का प्रत्येक व्यक्ति बच्चे की श्रेणी में आता है। आंकड़ों की दृष्टि से देखें तो भारत की आबादी का कुल 39 प्रतिशत हिस्सा बच्चों की जनसंख्या के अन्तर्गत आता है। इसमें से 27 प्रतिशत बच्चे नगरीय क्षेत्रों मे रहते हैं और 73 प्रतिशत बच्चे ग्रामीण परिवेश में निवास करते हैं। आयुवर्ग के अनुसार देखें तो 0-5 वर्ष की आयु प्रसार के अन्तर्गत 29 प्रतिशत बच्चे हैं। इसी तरह 6-10 वर्ष की आयु प्रसार में 28 प्रतिशत,

11-15 वर्ष के आयु प्रसार में 27 प्रतिशत और 11-14 वर्ष की आयु प्रसार में 16 प्रतिशत बच्चे आते हैं। बच्चों की कुल संख्या में 52 प्रतिशत लड़के और 48 प्रतिशत लड़कियां हैं। भारत में बाल्यावस्था से संबंधित शोध कार्यों द्वारा बाल्यावस्था की निम्नलिखित प्रवृत्तियां ज्ञात होती है-

भारत में बाल्यावस्था के प्रारंभिक अध्ययनों में एक कार्य मर्फी (1953) का है। आप ने भारत में बाल्यावस्था की विशिष्टता इस पक्ष में देखते हैं कि यहां बच्चे और वयस्क एक जैसी गतिविधियों और एक ही भौतिक परिवेश व स्थान में सक्रिय रहते हैं। गतिविधि से अभिप्राय है कि बच्चों को खेतों पर काम करने, घरेलू कार्यों में सहयोग करने आदि से बच्चों को रोका नहीं जाता है। भौतिक परिवेश से अर्थ है कि सोने, मिलने, रहने और खेलने जैसी रोजमर्रा की गतिविधियों के स्थान में बच्चों के साथ वयस्क भी उपस्थित रहते हैं। सरस्वती (1999) मर्फी की इस स्थापना से सहमत हैं और इसी आधार पर वे भारत में बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था को सतत मानती है। उनका तर्क है कि भारत के परिवारों में बच्चों की गतिविधियों और वयस्कों की गतिविधियों के बीच कोई सीमारेखा या विभाजन नहीं है। सरस्वती और पाई (1997) इस तथ्य का उल्लेख करती हैं कि भारत के परिवारों में बहु अभिभावकत्व का चलन है। इसकी व्याख्या में वे बताती हैं कि माता-पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्य जैसे- दादा-दादी, बड़े भाई-बहन आदि भी अभिभावकों की भूमिका में रहते हैं। चौधरी (2004) भाई-बहनों में जन्म का क्रम और आयु को बाल्यावस्था की विशिष्टता का निर्धारक मानती हैं । इनके अनुसार भारत में छोटे भाई-बहनों को बड़े भाई-बहन को वयस्क और अभिभावक मानना पड़ता है। वे उनके निर्देशन में कार्य करते हैं। बड़े भाई-बहन भी इस भूमिका का निर्वहन करते हैं। अभिभावकों की तुलना में वे बड़े भाई-बहनों की निगरानी में अधिक समय व्यतीत करते हैं।

मलिक (2013) गरीबी की बाल्यावस्था में विकास के प्रभाव का आकलन करते हुए बताते हैं कि गरीब परिवारों में बच्चों को वयस्क की भूमिका निभानी होती है। वे विद्यालय जाने की अपेक्षा नगद भुगतान के बदले मजदूरी करने को तत्पर रहते हैं। ऐसे परिवारों के बच्चों की विद्यालयी शिक्षा अपेक्षाकृत अधिक आयु में प्रारंभ होती है। ये बच्चे खेल, मनोरंजन, संगीत और भ्रमण जैसी संलग्नताओं से वंचित रहते हैं। इन्हें विद्यालय में भी सामाजिक बहिष्करण का सामना करना होता है। साधना (2009) दलित परिवारों में बाल्यावस्था की चर्चा के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा दो संकेतकों को चुनती हैं। वे मात्रात्मक आंकड़ों के आधार पर बताती है कि अन्य जातीय वर्गो के बदले दलित परिवारों में शिशु मृत्युदर अधिक है। इन परिवारों में शिशु के जन्म से मिलने वाली स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है। इसी तरह शिक्षा के क्षेत्र में दलित बच्चे अधिकांशतः सरकारी विद्यालयों में जाते हैं। इसका कारण निजी विद्यालयों की फीस वहन की क्षमता नहीं है। नांबिसान (2009) दलित बच्चों के विद्यालयी अनुभवों में सामाजिक बहिष्करण की प्रवृत्ति को पहचानती हैं। दास और मेहता (2013) आदिवासी बच्चों के संदर्भ में इसी स्थिति का उल्लेख करते हैं। नगरीय क्षेत्रों में गरीबों के बच्चों की चुनौतियों की चर्चा करते हुए रूक्मिनी बनर्जी (1997) बताती है कि ऐसे बच्चे अधिकांशतः प्रवासी परिवारों से होते हैं। ये परिवार नगर-ग्राम और नगर-नगर का प्रवास करते रहते हैं। उदाहरण के लिए नगरों में नौकरी की समस्या उपस्थित होने पर वे गांव वापस चले जाते हैं। जब गांव में रोजगार के अवसर नहीं होते तो शहर आते हैं। इससे इन परिवारों के

बच्चों की औपचारिक शिक्षा सर्वाधिक प्रभावित होती है। कई बार अध्ययन सत्र के दौरान अभिभावक बच्चों को गांव भेज देते हैं। बच्चों को आय अर्जक और अपने भाई-बहनों का देखभाल करने वाले की भूमिका निभानी पड़ती है। वे ये भी बताती है कि ये बच्चे मित्रों के साथ बाजार जैसे सामुदायिक स्थान पर पर्याप्त समय व्यतीत करते हैं। उच्च बालिका मृत्युदर, निम्न लिंगानुपात, और बालिकाओं में कुपोषण भारतीय, विद्यालय नामांकन में स्त्रियों की निम्नदर समाज की मात्रात्मक सच्चाई है जो एक पितृसत्तात्मक समाज में जेण्डर समाजीकरण के संदर्भ में लड़कों की स्वीकार्यता का भी प्रमाण है। दूबे (1988) बताती है हैं कि भारतीय समाज में लैंगिक समाजीकरण जेण्डर की रचना के लिए उत्तरदायी हैं। आप उल्लेख करती हैं कि भारतीय समाज में लड़कियों को महिला के लघु रूप में देखा जाता है। रोजमर्रा की गतिविधियों में श्रम विभाजन, रीति-रिवाजों में महिलाओं की भूमिका बालिकाओं के समाजीकरण को बालकों के समाजीकरण से अलग बना देती है। बचपन की सुविधाओं के संदर्भ में लड़कियां, लड़कों की तुलन में उपेक्षित होती हैं। उनकी सुरक्षा के नाम पर उनकी सामाजिक गतिशीलता को हतोत्साहित किया जाता है। विद्यालय में भी परिवार के समाजीकरण को पुनर्बलित किया जाता है। इसका उदाहरण लड़कियों के लिए आचार-व्यवहार के निर्धारण में देखा जा सकता है।

चौधरी (2013) एक नगरीय और शिक्षित बाल्यावस्था का उल्लेख करती हैं जो महानगरों के एकल परिवार में देखी जा सकती है। वे बताती हैं कि ऐसे परिवारों में इण्टरनेट आदि के माध्यम से देखभाल के देशी नुस्खों की खोज की जाती है। बिष्ट (2008) बताती हैं कि पाठ्यपुस्तकों और मीडिया के विभिन्न माध्यमों में जिस बाल्यावस्था की प्रस्तुति की जा रही है वह नगरीय, मध्यमवर्गीय पुरूषों के लिए उच्च जातीय बाल्यावस्था की है। आदिवासी बच्चे, लड़कियां, दलित परिवार के बच्चे, दिव्यांग, ग्रामीण परिवेश के बच्चों का बचपन अभी भी औपचारिक शिक्षा में हाशिए पर है। कौर (2014)बाजार और मीडिया ने बच्चों को संभाव्य उपभोक्ता मानते हुए उनकी छवि को बाजार में प्रस्तुत किया है। बच्चों के लिए उत्पादों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुयी है। इन उत्पादों का लक्षित उपभोक्ता नगरीय, शिक्षित, शारीरिक सौष्ठव, स्मार्ट और प्रौद्योगिकी सेवी बच्चा है। परिवार के आवश्यक संघटक के रूप में बच्चों को प्रस्तुत किया गया है। ये भी दिखाया गया है कि अभिभावक बच्चों की जरूरतों और जिद्दों को पूरे करने के लिए प्रयास करते हैं। बच्चों की चंचलता का सर्वाधिक प्रदर्शन मीडिया में किया गया है। इसी तरह टेलीविजन पर प्रसारित ‘रिएलटी शो‘ और ‘टैलेण्ट हण्ट‘ के कार्यक्रम नृत्य, अभिनय और गायन जैसी पाठ्यसहगामी मानी जाने वाली गतिविधियों को एक नया मंच प्रदान कर रहे हैं। ये मंच एक ओर बच्चों को अपनी रचनात्मकता और कुशलता के प्रदर्शन का अवसर दे रहा है तो दूसरी ओर बाल्यावस्था में केवल अकादमिक और पुस्तकीय ज्ञान में दक्षता के मिथक को भी तोड़ रहा है। बच्चों की वयस्क की सी प्रस्तुति एक अन्य पक्ष है जिसे मीडिया ने स्थापित किया है। मीडिया में ‘अच्छे‘ बच्चे की छवि में आज्ञाकारिता, सहयोग की तत्परता, विद्यालय में अच्छा प्रदर्शन, सामाजिक अन्तःक्रियाओं में आचार-वयवहार के उत्तम प्रदर्शन को दर्शाया गया है। ओल्गान्यूवेनहाइस (2009) भारत के संदर्भ में बाल्यावस्था के विरोधाभास को उभारती हैं कि यहां सर्वप्रथम एक ‘वैश्विक बच्चे‘ की परिकल्पना की जाती हैं। इस परिकल्पना के आधार पर आदर्श बचपन में क्या होना चाहिए को परिभाषित किया जाता है और फिर

किन बच्चों को यह नहीं मिल पा रहा है? उन्हें पहचाना जामा है। भारत में बच्चों के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधाओं की उपलब्धता, प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण और बालश्रम के उन्मूलन आदि के कार्यक्रम इसी मान्यता पर क्रियान्वित किए जा रहे हैं।

2.5 बाल्यावस्था का विकासात्मक संदर्भ: परिवार

परिवार संतानोत्पत्ति, जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पालकों में दायित्वबोध और पाल्य के सामाजिक-आर्थिक-भावनात्मक सुरक्षा और संरक्षण की संस्थागत व्यवस्था हैं। किसी भी व्यक्ति की प्रथम सामाजिक पहचान उसके परिवार की ही सामाजिक पहचान होती है। परिवार सूक्ष्म स्तर पर लालन-पालन, बच्चे से अन्तःक्रिया, परिवार के अन्य सदस्यों के साथ अभिभाभवकत्व की साझेदारी का माध्यम है तो वृहद् स्तर पर परिवार समाज की सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक व्यवस्था से परिचित कराने और इन व्यवस्थाओं में प्रवेश का माध्यम बनता है। भारतीय संदर्भ में परिवार की विशेषताओं में पारिवारिक संबंधों, रिश्तेदारों का व्यापक जाल, जाति, धर्म और समुदाय की पहचान से युक्त और विभेदीकृत, पितृसत्तात्मक और सामूहिकता में विश्वास करने वाले का उल्लेख किया जाता है। परिवार की दिनचर्या, रीति-रिवाज और सामाजिक व्यवहार बाल्यावस्था से ही व्यक्ति के समाजीकरण को प्रभावित करता हैं। भाषा का विकास, अन्य महत्वपर्ण व्यक्तियों के प्रति व्यवहार, शिक्षा का महत्व, घरेलू कार्यों में सहयोग, परिवार में टेलीविजन इत्यादि देखने के समय, साक्षरता की सामग्री, अतिथियों के आने की आवृत्ति, परिवार के बाहर जाने की दर और सामाजिक कुशलताओं की भूमिका में परिवार में अपनाए जाने वाले दैनंदिन व्यवहार का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अन्तःक्रिया और सामाजिक व्यवहार से जुड़ी इन गतिविधियों पर परिवार की सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक और भाषायी पृष्ठभूमि का प्रभाव पड़ता है। इन पृष्ठभूमियों में जितनी भिन्नता होगी उतने तरह के बाल्यवास्था के प्रारूप प्रकट होगें। उदाहरण के लिए निम्न आय वर्ग के परिवारों में घरेलू कार्यों में सहभागिता, आय अर्जन में अभिभावकों की मदद, छोटे भाई-बहनों की देखभाल, छोटे घर में एक साथ रहने की प्रवृत्ति, औपचारिक शिक्षा के बदले आय अर्जन को प्रधानता जैसी प्रवृत्ति अवलोकनीय है। उच्च आय वर्ग के परिवारों में भौतिक सुविधाओं से युक्त एक अलग कमरा, सूचना प्रौद्योगिकी के आधुनिक संसाधनों का प्रयोग, औपचारिक शिक्षा और अन्य संस्थागत समाजीकरण पर बल को महत्व दिया जाएगा। मध्यम वर्गीय परिवारों शिक्षा के द्वारा सामाजिक गतिशीलता सुनिश्चित करना, घर और विद्यालय दोनों जगहों पर विद्यालय जैसे अभ्यासों में संलग्नता, अनुशासन आदि का महत्व देखा जा सकता है। राबर्ट लेवाइन परिवार की लालनपालन शैली के तीन अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं। सर्वप्रथम माता-पिता यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि बच्चे की जैविक परिपक्वता सुनिश्चित हो और वह जीवित रहे। तदुपरांत उनका लक्ष्य अपने पाल्य को इस प्रकार से विकासात्मक संदर्भ प्रदान करना होता है कि वह आर्थिक रूप से निर्भर रह सके। दोनों प्रकार के लक्ष्यों को संतुष्ट करने के उपरांत वह अपनी सामुदायिक और सांस्कृतिक पहचान को आत्मसात कर सके। रास (1961) ने चार प्रकार के परिवार संरचनाओं का उल्लेख करते हैं-

1. वृहद् संयुक्त परिवार, जिसमें तीन या तीन से अधिक पीढ़ीयां रहती हैं। ऐसे परिवारों में दादा परिवार की मुखिया की भूमिका में रहते हैं। परिवार के समाज के साथ संबंधों का निर्वहन, रीति-रिवाज कर्मकाण्डों में सहभागिता, आर्थिक संसाधनों का एकत्रण और विभाजन आदि का दायित्व निभाते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चे, विशेष रूप से लड़के का पैदा होना स्वागत योग्य होता है। उसके लालन-पालन का दायित्व परिवार के वयस्क उइाते हैं। बड़े भाई-बहनों का एक समुच्चय होता है जो उसके देखभाल के साथ अन्य गतिविधियों की निगरानी करता है।
2. संयुक्त परिवार, जिसमें माता-पिता अपने वयस्क और विवाहित बच्चों के साथ रहते हैं। उनकी भूमिका परिवार की मुखिया की रहती है। विवाहित जोड़ा और उनकी संताने अपने पैतृक निवास में रहते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चे के दादा-दादी उनकी देखभाल में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। बच्चा, अपनी माता के अलावा इन वयस्कों के साथ भी पर्याप्त समय व्यतीत करता है।
3. एकल परिवार, माता-पिता और उनके अविवाहित संतानें रहती है। ऐसे परिवारों में बच्चे के लालन-पालन का दायित्व मुख्यतः माता का होता है। पिता मुख्यः आय अर्जक की भूमिका निभाता है।
4. एकल परिवार, माता-पिता और उनके अविवाहित संतानें रहती है। ऐसे परिवारों में पिता और माता दोनों आय अर्जक होते हैं। उन्हें प्रतिदिन आय अर्जन हेतु काम पर जाना होता है। बच्चे की देखभाल के लिए आया या क्रैच का प्रबंध करते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चें के संस्थागत समाजीकरण जैसे- प्री-स्कूल, होबी क्लब आदि में पंजीयन कराने की तत्परता रहती है।

परिवार में पालन-पोषण के दायित्व के आधार पर बाल्यावस्था के विकासात्मक संदर्भ में चार प्रकार बताए गए हैं। प्रथम, जहां बच्चे के देख-भाल का दायित्व दादा-दादी/नाना-नानी जैसे बुजुर्ग उठाते हैं। ऐसे परिवारों में लालन-पालन के देशज और लोक सम्मत व्यवहारों जै-मालिश करना, मिट्टी में खेलना और लोरी सुनाने आदि का चलन अधिक होता है। द्वितीय, लालन-पालन का मुख्य दायित्व माता-पिता का होता है। मां की भूमिका जैविक और भौतिक आवश्यकताओं तक, दूध पीलाना, देखभाल करना मालिश करना इत्यादि कार्यों की होती है जबकि सामाजिक अन्तःक्रियाओं और कुशलता आदि के लिए पिता की भूमिका को महत्व दिया जाता है। इसी कारण भारत में बचपन के समाजीकरण को पितृसत्तात्मक समाजीकरण कहते हैं। तृतीय, भारत में परिवार की संरचना और सामाजिक संबंधों का जाल इस प्रकार का होता है कि भारत में कोई भी बच्चा प्रथम संतान नहीं होता है। उसके चचरे भाई-बहनों या रिश्तेदार और पड़ोस का कोई न कोई बच्चा उसके बड़े-भाई बहन की भूमिका में अवश्य होता है। ऐसे परिवार जहां माता-पिता दोनों कार्य करने जाते हैं, परिवार किसी अन्य पालक के आर्थिक बोझ को वहन करने की क्षमता नहीं रखता है बड़े-भाई बहन पालक की भूमिका निभाते हैं। यह भूमिका अपने से छोटे-भाई बहन की देखभाल करने, उनकी आवश्यकताओं के बारे में निर्णय करना, विद्यालय चुनाव जैसे निर्णयों में दिखती है। चतुर्थ, महानगरीय मध्यम वर्गीय परिवारों में आया को बच्चे के लालन-पालन का दायित्व सौंपा जाता है। ऐसे परिवारों में माता-पिता दोनों नौकरी के निमित्त प्रतिदिन घर के बाहर जाते हैं। आया को देख-रेख के संबंध में सलाहें दे दी जाती है।

भारत में परिवार की संरचना में बदलाव के प्रथम लक्षण के रूप में संयुक्त परिवार के विघटन को पहचाना जा रहा है। भले ही संरचना के स्तर पर संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं लेकिन भावानात्मक रूप से वे उपस्थित है। अपने वृहद् परिवार के आयोजनों में सम्मिलित होना, दूरभाष आदि माध्यमों से संपर्क में रहना, उनसे मिलने के लिए पैतृक गांव आने-जाने जैसे लक्षणों को इस तर्क के समर्थन में प्रस्तुत किया जाता है। भारत में बच्चे के विकास में परिवार की भूमिका इस अर्थ में विशिष्ट हो जाती है वह बच्चों के प्रति सांस्कृतिक विश्वासों (जैसे- बच्चे ईश्वर का रूप होते हैं), पारस्परिक निर्भरता के मूल्यों और पितृसत्तात्मक समाजीकरण के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अभ्यासों का माध्यम बनते हैं।

2.6 बाल्यावस्था का विकासात्मक संदर्भ: पड़ोस

परिवार और विद्यालय के संरचित परिवेश के अतिरिक्त ‘पड़ोस‘ भी विकासात्मक परिवेश उपलब्ध कराता है। विद्यालयेतर हमउम्र साथियों के साथ समूह का निर्माण, इस समूह के साथ समय बिताना, सामुदायिक गतिविधियों का अवलोकन और सहभागिता, व्यस्कों की अन्तःक्रियाओं और गतिविधियों का अवलोकन आदि कुछ ऐसे उदाहरण जिनके क्रियान्वयन का क्षेत्र ‘पड़ोस‘ होता है। पड़ोस एक समान सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले परिवारों का भौगोलिक संकेन्द्रण होता है। परिवार अपनी आवश्यकता और हैसियत के अनुसार एक आवासीय परिवेश का चुनाव करता है। आवासीय परिवेश के समस्त परिवारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, धार्मिक और सांस्कृतिक अभ्यास, इन परिवारों के बीच सामाजिक संबंधों की प्रगाढ़ता आदि मिलकर पड़ोस का विकास करते हैं। पड़ोस की भौतिक विशेषताएं जैसे- आवसीय सुविधाएं, बस्ती की संरचना, मनोरंजन आदि की सुविधा, सामुदायिक भवन, खेल के स्थान आदि की उपलब्धता और अनुपलब्धता बच्चे के रोजमर्रा की गतिविधियों को प्रभावित करता है। महानगरों में विकसित हो रहे ‘अपार्टमेंट संस्कृति‘ में बच्चों के लिए पार्क, खेल का मैदान और खेल के संसाधन उपलब्ध होते हैं। इनके माध्यम से विद्यालय के बाद की दैनिक अवधि को संरचित किया जाता है। जबकि निम्न आय वर्ग के परिवार जो मलिन बस्तियों/झुग्गियों आदि में रहते हैं वे सघन आबादी के क्षेत्र होते हैं, घरों का आकार और क्षेत्रफल कम रहता है और शौचालय आदि की समस्या रहती है। ऐसे पड़ोस का भौतिक पर्यावरण अनुकूल दशा उपलब्ध नहीं कराता है। इन परिवारों में अभिभावकों द्वारा बच्चों की निगरानी का भी अभाव पाया जाता है। वे प्रायः गलियों और बाजारों को हमउम्र साथियों के साथ समय बिताने के स्थान के रूप में प्रयुक्त करते हैं। सामुदायिक संस्थानों जैसे- स्थानीय प्रशासन, स्थानीय समितियां और संगठन भी बच्चों के जीवन को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। नागरिक संल्गनता, सामुदायिक आयोजन आदि के माध्यम से ये बच्चों की विश्वदृष्टि के विकास में भूमिका निभाती है। पड़ोस के साथ सामाजिक संबंध भी बच्चों के लिए विकासात्मक संदर्भ उपलब्ध कराता है। भारत में अपने ही जैसे धार्मिक, क्षेत्रीय और जातीय लोगो के पड़ोस में रहने की प्रवृत्ति को पहचाना गया है। गांव में जातीय आधार पर ‘पुरवे‘ और ‘कुनबे‘ का पड़ोस इसका एक उदाहरण है। बच्चा अपने पड़ोस में कितना और किस रूप में क्रियाशील रहेगा? इसका निर्णय परिवार के द्वारा किया जाता है। मध्यमवर्गीय

और नगरीय परिवारों के द्वारा पड़ोस में पाल्य गतिविधियों को संरचित किया जाता है और इसकर निगरानी की जाती है। उदाहरण के लिए खेलने के लिए समय सारिणी बना देना, जिन बच्चों के साथ पाल्य संपर्क में है उनके अभिभावकों के बारे में पूछना, सुनिश्चित करना कि पाल्य असामाजिक गतिविधियों में संलग्न न हो। निम्न सामाजिक आर्थिक वर्ग के परिवारों में अभिभावकों द्वारा बच्चों की निगरानी का भी अभाव पाया जाता है। वे प्रायः गलियों और बाजारों को हमउम्र साथियों के साथ समय बिताने के स्थान के रूप में प्रयुक्त करते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि सूचना-प्रौद्योगिकी के बढ़ते संसाधनों ने मध्यम वर्गीय परिवारों के पाल्यों की पड़ोस के साथ अन्तःक्रिया को सीमित किया है।

पड़ोस के द्वारा सामाजिक पूंजी के विकास के लिए संसाधन प्रदान किए जाते हैं, बच्चे अपने पड़ोस से रोल मॉडल पहचानते हैं और उनका अनुकरण करते हैं, पड़ोस के साथ सामाजिक संबंध, सामाजिक-सांवेगिक सहयोग का स्रोत है। इन सकारात्मक पक्षों के अतिरिक्त असामाजिक और आपत्तिजनक व्यवहार में संलग्नता, बाल-अपराध, मादक पदार्थों के सेवन की आदत, विद्यालय से भागने आदि की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने में पड़ोस की भूमिका को पहचाना गया है। ध्यातव्य है कि पड़ोस किसी व्यवहार विशेष या व्यक्तित्व के गुण विशेष के निर्धारण का अंतिम और एकमात्र कारण नहीं है।

2.7 बाल्यावस्था का विकासात्मक संदर्भ: विद्यालय

बाल्यावस्था में विद्यालय द्वारा एक विशिष्ट विकासात्मक संदर्भ उपलब्ध कराया जाता है। जैसे ही बच्चा विद्यालय में प्रवेश करता है उसे एक वैयक्तिक स्वतंत्रता और दायित्व के साथ विद्यार्थी की पहचान प्राप्त होती है। उसके लिए एक ऐसी दुनिया खुलती है जहां वह प्रथमतः सीखने के लिए आता है। इसके साथ ही वह अपने व्यक्तित्व और वैचारिकी को भी विकसित करता है। विद्यालय में शिक्षक के रूप में विद्यार्थियों को रोल मॉडल मिलता है। सहपाठी उसके लिए ऐसा समूह बनते हैं जहां बच्चा पहल करना, नेतृत्व करना, तर्क-वितर्क करना आदि सीखता है वहीं वह अपने साथियों के दबाव में भी कार्य करता है। विद्यालय विद्यार्थी को अपनी रूचि पहचानने और उसका विकास करने में मदद करते हैं। विद्यालय में विद्यार्थी का समायोजन उसके स्वस्थ शारीरिक और मानसिक विकास का माध्यम बनता है। इन आदर्श भूमिकाओं के साथ यह भी उल्लेखनीय है कि कई बार विद्यालयों की छिपी हुयी पाठ्यचर्या बच्चों के साथ भेदभाव और हाशिए के समुदायों के प्रति पूर्वग्रह के प्रसार में भी भूमिका निभाती है। विद्यालय विद्यार्थी को एक ऐसा परिवेश उपलब्ध कराता है जहां विद्यार्थी कक्षा में सहपाठियों, अध्यापकों, पाठ्यचर्या और अन्य गतिविधियों में सहभागिता करता है। स्वयं विद्यालय का भी अपना परिवेश होता है। विद्यालय का संगठन, विद्यालय में उपलब्ध संसाधन, विद्यालय की समुदाय से संबद्धता, विद्यालय की राज्य से संबद्धता विद्यालय के परिवेश को निर्धारित करने वाले कुछ कारक है। इन्हीं कारकों के सापेक्ष आप सरकारी विद्यालय, सरकार द्वारा अनुदानित विद्यालय, निजी विद्यालय जैसी विद्यालय के प्रकारों का अवलोकन कर सकते हैं। भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना का विद्यालयों के चुनाव, अभिभावकों के विद्यालय के साथ संबंध और विद्यार्थियों के विद्यालय में संलग्नता पर प्रभाव पड़ता है।

इस प्रभाव को अभिभावकों द्वारा विद्यालय के चुनाव में, अभिभावकों के प्रति विद्यालय की अभिवृत्ति में, विद्यार्थियों के प्रति शिक्षकों के विश्वासों और धारणाओं में देख सकते हैं। प्रायः विद्यालयों की पाठ्यचर्या, सत्र की अवधि, शिक्षक की न्यूनतम योग्यता आदि पक्ष समान होने पर विद्यालयों को उत्तम, अच्छा, कम अच्छा जैसे श्रेणियों में देखने के लिए उक्त कारक ही उत्तरदायी है। इस तर्क की पुष्टि इस आधार पर भी होती है कि निजी विद्यालयों के प्रति सर्वाधिक अधिमान है और वर्तमान में सरकारी विद्यालयों में वही बच्चे जा रहे हैं जिनके अभिभावक किसी भी प्रकार का शुल्क वहन करने की क्षमता नहीं रखते हैं। इसी तरह सरकारी विद्यालयों में दलित, आदिवासी, लड़कियों जैसे हाशिए के समुदाय के विद्यार्थियों की अधिकता भी प्रमाण है कि समाज में यह मान्यता व्याप्त है कि विद्यालय के परिवेश में गुणात्मक भिन्नता है और अभिभावक निजी विद्यालयों के प्रति अधिभार रखते हैं। विद्यालय में विद्यार्थी का अकादमिक प्रदर्शन उसके भावी भविष्य को दिशा देने का कार्य करता है। इस संदर्भ में विद्यालय की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

2.8 बाल्यावस्था में अनूठेपन का उदाहरण: बाल श्रमिक

प्रायः आप घरेलू कार्यों, सड़क के किनारे सामान बेचते और खाने-पीने आदि के दुकानों पर कार्य करते हुए अनेक बच्चों को देखते होंगे। आपने कभी सोचा है कि इन बच्चों के लिए शिक्षा और बड़े होने के क्या मायने हैं? ऐसे बच्चों को बाल श्रमिक कहा जाता है। बाल श्रम एक सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण बाधा है। वैश्विक स्तर पर, कुल बाल श्रमिकों में से 50 प्रतिशत से अधिक भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका में है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार अकेले भारत में ही 5 से 10 करोड़ के बीच बाल श्रमिक है। संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी फैक्ट्री,खनन कार्य या किसी जोखिम वाले काम में नहीं लगाया जा सकता।

किसी उद्योग, खान, कारखाने आदि में 14 वर्ष से कम आयु के मानसिक और शारीरिक श्रम करने वाले बाल श्रमिक कहलाते है। परन्तु 5 वर्ष से कम आयु के बच्चे इतने बड़े नहीं होते कि भुगतान या मुनाफे के लिए लाभदायक आर्थिक गतिविधियों में भाग ले सके। इसलिए बाल श्रमिक 5 से 14 आयु वर्ग के आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने वाले बच्चे होते है। संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल अधिकार पर संपन्न सम्मेलन में कहा गया है कि बच्चों के श्रम की व परिस्थितियां जहां उनका कार्य बच्चे के स्वास्थ्य एवं मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, या सामाजिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो, बाल श्रम की परिधि में आता है। वस्तुतः बाल श्रम का सबसे अंधकारमय पक्ष बाल श्रम से बच्चों पर पड़ने वाले कुप्रभाव है। यहाँ पर कुछ दुष्प्रभावों का उल्लेख किया जा रहा है-

- बाल मजदूरी के चलते बच्चों का नैसर्गिक,शारीरिक तथा मानसिक प्रभाव विकास बाधित होता है। परिणामतया उनकी कार्य क्षमता का हास होता है।

- बालश्रम में संल्नता के कारण उनकी औपचारिक शिक्षा बाधित हो जाती है। वस्तुतः यह कहा जाता है कि जो विद्यार्थी औपचारिक शिक्षा से वंचित हैं वे किसी न किसी प्रकार के श्रम में संल्गन हैं।
- शिक्षा स्वास्थ्य एवं आवास की समस्या का सामना करने के कारण इन भावी जीवन जोखिम युक्त हो जाता है। खतरनाक उद्योंगो में काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर तो कुप्रभाव पड़ता है।
- विभिन्न उद्योंगो में काम करने वाले बच्चों को अनेक प्रकार की बीमारियों और विकलांगता का सामना करना पड़ता है। दियासलाई तथा पटाखा बनाने वाले बच्चों को सांस की दिक्कत तथा भयानक रूप से जल जाने का खतरा होता है जबकि पत्थर खदान, स्लेट या कांच उद्योग में काम करने वाले बच्चे सिलकोसिस, धूल एवे ताप की बजह से दम घुट जाने तथा जल जाने के खतरे से दो चार होते है। हथकरघा उद्योग में फाइब्रोसिस तथा बाइसीनोसिस तथा कालीन उद्योग में धूल एवं रेशों के कारण फेफडों की भयानक बीमारी गटिया तथा जोड़ के तनाव से बच्चों के प्रभावित होने की संभावनना होती है। ताला या पीतल उद्योग में काम करने वाले बच्चों को दमा भयंकर सिरदर्द क्षयरोग तथा गुब्बारा फैक्ट्री के बाल श्रमिकों को निमोनियां हार्टअटैक जैसी बीमारियां लग जाती है

2.9 बाल श्रम के लिए उत्तरदायी कारण

भारत में बाल श्रम के लिए पारिवारिक गरीबी एक महत्वपूर्ण उत्तरदायी कारक है. कुछ समंक बताते है कि 18 से 58 वर्ष की आयु के (जो अधिकांशतः बच्चों के पालन पोषण का दायित्व निर्वहन करते है) लगभग 25 प्रतिशत लोग बेकार है। शेष जो रोजगार प्राप्त हैं उनमें से 92 प्रतिशत लोग असंगठित होकर क्षेत्र में काम करते है जहां न्यूनतम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों पर अमल नहीं होता. साथ ही पूरे वर्ष रोजगार की समस्या रहती है. गरीबी के इस परिवेश में बच्चे मजदूरी करने हेतु विवश हो जाते है। बाल मजदूरी के प्रोत्साहन में नियोक्ताओं का हित भी उत्तरदायी है। वस्तुतः बाल श्रमिक सस्ता और आज्ञाकारी श्रमिक होता है। जिसकी कोई संगठित क्षमता नहीं होती है।उसे डरा धमका कर बडे लम्बे समय तक कम मजदूरी पर काम लिया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन व्यय कम करने की दृष्टि से नियोक्ता के लिए बाल श्रम लाभ का स्त्रोत है।बाल श्रम के लिए माता पिता की अशिक्षा, विद्यालय का भयप्रद वातावरण, अपव्यय, और अवरोधन भी महत्वपूर्ण है। कई बार विद्यालय का भय प्रद वातावरण उन्हें विद्यालय छोड़ने के लिए बाध्य कर देता है।एक अनुमान के मुताबिक कक्षा 1 में नामांकित होने वाले 100 बच्चों में से 40 ही कक्षा 5 तक पहुंच पाते है। कक्षा 8 तक तो यह संख्या मात्र 20 रह जाती है। जाहिर है विद्यालय छोड़ देने वाले ये सभी खेलने और पढ़ने की उम्र में बालश्रमिक बनकर परिवार के कमाऊं पूत बन जाते है। बाल श्रम के निवाराणार्थ बनाए गए अधिनियमों एवं प्रावधानों का कठोरतापूर्वक पालन न हो पाना भी इस समस्या के निरन्तर विकास का एक प्रभावी कारण है। सरकारी तथा गैर सरकारी तौर पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि माचिस तथा पटाखा बनाने वाली फैक्ट्रियों में विस्फोटक सामग्री कानून तथा फैक्ट्री कानून तथा श्रम कानूनों का उल्लंघन किया जाता है। बाल श्रम के लिए हमारा

जाति या वर्ग आधारित सामाजिक ढांचा, जिसमें प्रायः निम्न जाति या वर्ग आधारित सामाजिक ढांचा जिसमें प्रायः निम्न जाति या वर्ग में जन्म लेने वाले बच्चों को मजदूरी विरासत में मिलती है, भी जिम्मेदार है शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव बुरी संगत पारिवारिक तनाव आदि बाल मजदूरी के अन्य प्रमुख कारण है।

2.10 बाल्यावस्था में अनूठेपन का उदाहरण : पथवासी बच्चे

पथवासी बच्चों को परिभाषित करते हुए यूनीसेफ (1985, 1992) ने तीन प्रमुख बिन्दुओं को महत्व दिया हैदृ

- वे बच्चे जो गलियों पर कार्य करते हैं, लेकिन अपने परिवार के साथ रहते हैं।
- वे बच्चे जिनका परिवार तो है, लेकिन उन्हें इससे आवश्यक मदद नहीं मिलती।
- वे बच्चे जो कार्यात्मक रूप से परिवार और अभिभावक के बिना रहते हैं।

यूनीसेफ की ही अवधारणा को आधार बनाकर पथवासी बच्चे पर आधारित अन्तराष्ट्रीय अन्तः एन0जी0ओ0 कार्यक्रम (1986) ने इन्हें इस प्रकार से परिभाषित किया है-
“एक पथवासी बच्चा वह लड़का या लड़की है जो अभी व्यस्क नहीं हुआ है और जिसके लिए गली अपने वृहत्तर अर्थ में, जो परित्यक्त स्थान और गैर निवास योग्य स्थानों को भी शामिल करता है, ही आवास और जीविकोपार्जन का साधन है जो किसी भी प्रकार के व्यस्क संरक्षण और सहयोग से वंचित है।” इसी प्रकार कासग्रोव (1990) ने इन्हें परिभाषित करते हुए कहा कि है कि ‘पथवासी बच्चे ऐसे बच्चे हैं जो 18 वर्ष की उम्र से कम आयुवर्ग के हैं, जिनका व्यवहार सामान्य और सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार जैसा नहीं होता है, जिनकी विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार या परिवार जैसी किसी अन्य प्रकार के संस्था द्वारा नहीं होती है।” इन परिभाषाओं में पथवासी बच्चे की अवधारणा को सार्वभौमिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन परिभाषाओं में प्रयुक्त आधारों पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि ये आधार संस्कृतिबद्ध हैं, न कि सार्वभौमिक। लस्क (1992) ने इस अवधारणा को पुनः एक नए वर्गीकरण के रूप में प्रस्तुत किया। इसके अन्तर्गत इन्होंने निम्न वर्ग बनाएदृ गली में रहने वाले परिवारों के बच्चे, बिना अभिवावक के बच्चे, परिवार में रहने वाले लेकिन गली में समय बिताने वाले बच्चे। आप्तेकर (1994) ने इन परिभाषाओं को चुनौती दी और पथवासी बच्चे की अवाधारणा की व्याख्या एक प्रक्रिया के रूप में कियह प्रक्रिया गली में प्रवेश और समय बिताने के साथ प्रारम्भ होती है और गली की संस्कृति में पूरी तरह से रम जाने पर समाप्त होती है।ये बच्चे गली में ही ज्यादातर समय बिताते हैं और गली की गतिविधियों में संलग्न रहते हैं।जीवन यापन गली की गतिविधियों में संलग्नता पर आधारित है। इन्हें किसी भी प्रकार का संरक्षण और सुरक्षा नहीं मिलती है।

प्रायः पथवासी बच्चों को 'परित्यक्त बच्चों' के रूप में देखा जाता है, लेकिन यह भी पाया गया है कि ये बच्चे परित्यक्त बच्चे न होकर ऐसे परिवार से सम्बन्धित हैं जहाँ जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को 'कमाने' की जरूरत होती है।मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन बच्चों को जो कीमत चुकानी पड़ती है वह ही इनके अनुभवों को सामान्य ओर स्वीकार्य बचपन की अवधारणा से भिन्न बना देता है. ज्यादातर कार्यों में 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन' की अवधारणा को परिभाषित करते हुए वस्तुनिष्ठता की कीमत पर उनके जीवन्त, निजी और वैयक्तिक अनुभवों को किनारे कर दिया गया है।बजाय अन्तःक्रियात्मक विश्लेषण करने के, कार्यकरण प्रभाव के रूप में व्याख्या करते हुए, गरीबी, पारिवारिक जीवन की कठिनाइयों एवं जनसंख्या की अधिकता का परिणाम बता दिया गया है। जो कार्य इस स्तर से आगे बढ़े हैं, उन्होंने इन बच्चों के वर्गीकरण का प्रयास किया है। वर्गीकरण और परिभाषाओं के अन्तर्गत इन बच्चों के, इनके परिवार से सम्बन्ध के स्तर को और गली से इनके सम्बन्ध की प्रकृति को आधार बनाया गया।इन्हें एक 'व्यक्ति' विशेष के रूप में न देखकर एक विशेषण विशेष से जोड़कर देखा गया है।इनके 'समांगता' की मान्यता हमें उनके अनुभवों के सूक्ष्म विश्लेषण से वंचित कर देती है।कुछ अध्ययनों में इन्हें ऐसे समूह के रूप में देखा गया है जिनके मूल आवश्यकताओं जैसे भोजन, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य, से वंचित कर दिया गया है। स्पष्ट है कि पथवासी बच्चे को परिभाषित करने की तीन धाराएँ रही हैंद्द प्रथम के अन्तर्गत सामाजिक दृजनांकीकिय आधारों पर गली में इनकी मौजूदगी को इनकी परिभाषा का आधार बनाया गया है। दूसरे प्रकार के प्रयास में परिवार और अन्य सामाजिक एजेंसियों से इनके विलगाव की प्रक्रिया को आधार बनाया गया है। इस प्रकार के प्रयासों ने इन बच्चों को मुख्यधारा से काटकर एक अलग वर्ग में रखा है। तीसरे प्रकार के वे प्रयास हैं जो हाल के वर्षों में हुए हैं, जिनके अन्तर्गत सबसे पहले अवधारणा विशेष पर ही प्रश्न चिह्न लगाते हुए इसे 'सामाजिक सांस्कृतिक कारक निर्मित सम्प्रत्यय' माना गया है, और यह सवाल पूछा गया कि यह परिभाषा किसके लिए है? किसने बनाया है? और यह किसके पक्ष में कार्य कर रही है? इस धारा के अन्तर्गत आने वाले विद्वानों का मानना है कि पथवासी बच्चे की अवधारणा के अन्तर्गत इन बच्चों को आम बच्चों, व्यस्कों, परिवार और स्कूल जैसी अन्य सामाजिक संस्थाओं से विलग रूप में देखा जाता है। यह प्रवृत्ति इनके सामाजिक बहिष्करण को वैधता प्रदान करती है।वृहत्तर सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक प्रक्रिया जन्य अपवंचन, राज्य द्वारा मूलभूत सुविधाओं को प्रदान करने की असफलता, एवं परिवार के द्वारा जीवन जीने की मूलभूत चुनौतियों से दैनिक सामना को विश्लेषण के दायरे से अलग कर देने पर उपरोक्त प्रकार के एकांगी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। एक शिक्षक के रूप में इन बच्चों के सन्दर्भ में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होगारू

इन्हें 'अपराधी', 'भगोड़ा' या 'भुक्तभोगी' के रूप में देखने के बजाय एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहिए जो नाना प्रकार के वातावरण में सक्रियता के साथ सहभागिता करते है।

ये बच्चे गलियों में रहते हुए समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान व्यक्तित्व का विकास करते हैं, सीखते हैं, चुनौतियों का सामना करते हैं और दायित्व स्वीकारते हैं। इन बच्चों के लिए गली जीवनानुभवों का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

इन बच्चों को हम मूल्यहीन और असामाजिक कह देते हैं, जबकि इनमें भी 'आत्म सम्मान' की इच्छा और सामाजिक संवेदना होती है।

हमें ध्यान रखना होगा की पथवासी बच्चे की संज्ञा इन्हें केवल गली में भटकने वाले बच्चों के रूप में बाँध देती है और जीवन के अन्य पक्षों की उपेक्षा कर देती है. इन बच्चों के लिए कोई भी सुधारात्मक प्रयास इनके प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखकर नहीं किया जा सकता है।

यदि इनकी छवि को नकारात्मक रूप में अतिरंजित किया जायेगा और दया भावना के साथ सहयोग का प्रयास हुआ उससे ये बच्चे समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के बजाय और भी कटते चले जायेंगे।

तदनुभूति और तादात्मय के साथ इनकी ओर बढ़ने पर यह भी अपनी ऊर्जा सीखने की अपनी ललक के साथ आगे आएँगें।

संज्ञानात्मक क्षमता की दृष्टि से ये बच्चे उतने ही क्षमतावान हैं जितने की अन्य सामान्य बच्चे। शिक्षा की प्रक्रिया में मुख्यधारा में लाने के लिए हमें इनके विकासात्मक सन्दर्भ को ध्यान में रखकर उसके अनुरूप 'त्वरक' कार्यक्रमों का निर्माण करना होगा। यहाँ उल्लेखनीय है कि वास्तविक लक्ष्य उन्हें शिक्षा की मुख्यधारा में लाने तक सीमित नहीं है बल्कि समाज की मुख्यधारा में लाने का है।

विपरीत परिस्थितियों में जीने की बाध्यता, प्रवसन, गरीबी और अपवंचन जनित सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया के बीच समाज के निम्नतम तबके से आनेवाले ये बच्चे भी अपने 'बालदृअधिकारों' के दावेदार है और एक शिक्षक के रूप में हमारा दायित्व हैं की हम मानव विविधता को ध्यान में रखते हुए सभी विद्यार्थियों को सीखने का गुणवत्ता पूर्ण अवसर उपलब्ध कराएँ.

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Ariès, P. (1962). *Centuries of childhood: A social history of family life*. Trans. Robert Baldick. New York: Vintage.
2. Bisht, Rachita (2008). Who is A Child?: The Adults' Perspective within Adult-Child Relationship in India. Interpersona 2(2), 151-172.
3. Chaudhary, N (2004). Listening to Culture: Constructing Reality from Everyday Talk. New Delhi: Thousand Oaks.
4. Chaudhary, N. (2013). Parent beliefs, socialisation practices and children"s development in Indian families.Unpublished report of a major research project funded by the University Grants Commission, New Delhi.
5. Kaur, R. (2015.)Representations of Children and Childhood in Indian Television Advertisements. Childhood Studies, 15(1), 1-15.

6. Nambissan, G. B. (2009). Exclusion and Discrimination in Schools: Experiences of Dalit Children. Working Paper Series Indian Institute of Dalit Studies.

7. Sadna, N. (2009) Dalit Children in Rural India: Issues Related to Exclusion and Deprivation Working Paper Series Indian Institute of Dalit Studies New Delhi

8. Saraswathi, T. S. & Pai, S. (1997). Socialization in the Indian context. In H. S. R. Kao & D. Sinha, (Eds.), *Asian perspectives on psychology*. New Delhi: Sage: 74 – 92.

9. Saraswathi, T. S. (1999). Adult-child continuity in India: Is adolescence a myth or an emerging reality? In T. S. Saraswathi (Ed.), *Culture, socialization and human development: Theory, research and applications in India*. New Delhi: Sage: 213-232.

10. Tuli, M and Chaudhary, N. (2010). Elective Interdependence: Understanding individual agency and interpersonal relationships in Indian families. *Culture and Psychology*, 16 (4): 477-496.

11. Ross, Aileen D. (1961) the Hindu Family in its Urban Setting, Toronto: University of Toronto Press.

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. अपने विद्यार्थियों के सन्दर्भों का ध्यान रखते हुए बचपन में बहुलता के विभिन्न आयामों की विवेचना कीजिये?
2. ग्रामीण परिवेश में बाल्यावस्था और नगरीय परिवेश में बाल्यावस्था की तुलना कीजिये?
3. क्या बाल श्रमिकों के लिए बचपन जैसी कोई अवस्था होती है? अपना मत स्पष्ट कीजिये?
4. पथवासी बच्चों का बचपन सामान्य बच्चों के बचपन से कैसे भिन्न होता है?

इकाई3- बच्चों के साथ अंतःक्रिया एवं अवलोकन: विश्लेषण के विविध उपागम

Interpretation and analyses of the observations and interactions with children in different socio-culture milieu by making use of an interdisciplinary approach

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आनेवाले बच्चों के अध्ययन का अंतर्विषयी उपागम
3.4 बच्चों का अवलोकन: विभिन्न तरीकें
3.5 बच्चों के साथ अंतक्रिया: साक्षात्कार विधि
3.6 बच्चों को समझने के अन्य तरीके
    3.6.1 विश्लेषणात्मक/चिंतनात्मक प्रतिक्रिया लेखन (रिफ्लेक्टिव जर्नल)
    3.6.2 एनेक्डोटल अभिलेख (उपाख्यान आलेख/घटनावृत्त आलेख)
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ सूची एवं उपयोगी पठन सामग्रियां
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

बच्चों से अच्छी तरह अंतःक्रिया या उनकी गतिविधियों का गहन अवलोकन करके शिक्षक उनके बारे में बहुत कुछ समझ सकते हैं। यह जरूरी भी है क्योंकि किसी बच्चे के बारे में बिना जाने उसके विकास को सही दिशा दे पाना शिक्षक के लिए मुश्किल है। हर बच्चे के जीवन में उसके सामाजिक-सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि परिवेश का गहरा हस्तक्षेप होता है। जब बच्चे विद्यालय आते हैं तो वे अपनी सोंच एवं व्यवहार के अंतर्गत उस परिवेश के तत्वों को भी लेकर आते हैं। कई बार शिक्षक अपने

विद्यार्थियों के उस सोंच या व्यवहार के पीछे के कारण को समझ नहीं पाते हैं और उसपर अपनी अनापेक्षित प्रतिक्रिया दे देते हैं। इसके कारण वे बच्चे विद्यालय में सहज नहीं हो पाते हैं और सीखने की प्रक्रिया से दूर होते जाते हैं। इसलिए बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के प्रति संवेदनशील होना एक शिक्षक के लिए बहुत जरूरी है और उसे कुछ एसे उपागम या तरीके आने चाहिए जिनके माध्यम से वह अपने बच्चों के परिवेशीय पक्षों का अध्ययन कर सके। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी बच्चे का व्यक्तिगत अध्ययन करना हो तो इसके अन्तर्गत उस बच्चे के बाहरी व्यवहार व उसके अंतःकरण का अध्ययन, उसकी पारिवारिक स्थिति, शारीरिक व मानसिक समस्याएं, रुचियाँ, आस-पास का वातावरण, माता-पिता के साथ उसका व्यवहार एवं संबंध तथा बच्चे की आर्थिक स्थिति, आदि समस्त पक्षों को जानने के लिए विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल करना एक शिक्षक को आना चाहिए। इन सब के आधार पर, शिक्षकों को बच्चों के बारे में बहुत कुछ पता चल सकता है जिसके आधार पर वे अपने सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आकार दे सकते हैं। इस इकाई में बच्चों को समझने के कुछ प्रमुख उपागमों एवं तरीकों के बारे में चर्चा की गई है। प्रशिक्षुओं से अपेक्षा है कि वे उनकी समझ बनाकर अपने विद्यालय में उनका प्रभावी प्रयाग करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. बता सकेंगे कि बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को समझना क्यों आवश्यक है।
2. बता सकेंगे कि बच्चों को समझने के विभिन्न उपागम एवं तरीके क्या हैं।
3. समझ सकेंगे कि उन उपागमों एवं तरीकों का इस्तेमाल बच्चों के बारे में जानने के लिए किस तरह करना है।
4. समझ सकेंगे कि विभिन्न तरीकों के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण कैसे करें तथा उनके आधार पर क्या व्याख्या करें।

3.3 विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आनेवाले बच्चों के अध्ययन का अंतर्विषयी उपागम: आवश्यकता एवं महत्व

हर बच्चे की अपनी अलग-अलग पहचान होती है और उसके विकास की प्रक्रिया भी विशिष्ट होती है। इसके पीछे उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है। जो बच्चा जिस परिवेश में पला-बड़ा होता है वह उस परिवेश के विभिन्न तत्वों के साथ अंतःक्रिया कर उसको स्वयं के व्यवहार में अवश्य शामिल कर लेता है। यह प्रक्रिया चेतन और अचेतन दोनों ही स्तरों पर निरंतर चलती रहती है। इन सब का बच्चे के विकास और मुख्य तौर पर शैक्षिक विकास पर भी गहरा असर पड़ता है। उदाहरण के तौर पर बच्चे की भाषा, उसके आस-पास का माहौल आदि का उसके सीखने की

प्रक्रिया में अहम योगदान होता है। इन सब के साथ-साथ बच्चों के अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों को शैक्षणिक वातावरण में भली-भांति समझकर एवं उनकी परिस्थितियों के अनुकूल शिक्षण प्रविधि का उपयोग कर शिक्षण में उनकी सहायता करना एवं उनके अच्छे भविष्य के निर्माण में पूर्णरूपेण सहयोग करना भी है।

अतः यह जरूरी है कि बच्चे के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं, उसके व्यवहार, सोंच आदि के बारे में शिक्षक को एक व्यवस्थित समझ हो। हालांकि, इतना महत्वपूर्ण होने के बावजूद यह आयाम बहुत उपेक्षित रहा है। विभिन्न विषयों जैसे कि मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नृविज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि से विभिन्न सिद्धांतों, उपागमों एवं तरीकों को अपनाकर बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं को समझने का कार्य धीरे-धीरे शुरू हुआ। यदि देखे तो उन्नीसवीं सदी के आरंभ में जैसे-जैसे मनोवैज्ञानिकों का ध्यान व्यक्तिगत विभिन्नताओं की उत्पत्ति, स्वरूप एवं समस्याओं की ओर अग्रसर हुआ, बच्चों के अध्ययन की आवश्यकता महसूस होने लगी। इतना ही नहीं, जीवन के समस्त पहलुओं में विभिन्नताएँ दिखाई देने लगी और बच्चों के मानसिक स्तर, व्यक्तिगत गुणों, योग्यताओं, क्षमताओं, रुचियों, उपलब्धियों इत्यादि में विविधताएँ दिखाई देने लगी। ऐसी स्थिति में मनोवैज्ञानिकों को ऐसे अध्ययन के तरीको की आवश्यकता का अनुभव हुआ जो बच्चों के व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि पहलुओं का अध्ययन कर पाने में सक्षम हो। इसके परिणामस्वरूप अन्वेषण शुरू हुए, प्रायोगिक कार्य होने लगे, फिर धीरे-धीर बच्चों के अध्ययन हेतु विभिन्न उपागमों एवं उपकरणों का उपयोग होना शुरू हुआ। उपकरणों की सहायता से व्यक्तियों के मानसिक एवं दैहिक दोनों ही पहलुओं का मापन एवं मूल्यांकन किया जाने लगा।

साथ ही, समय परिवर्तन के साथ जैसे-जैसे व्यक्तिगत विभिन्नताओं के जटिल रूप को महत्व दिया जाने लगा, वैसे-वैसे उपकरणों की आवश्यकता अनुभूत होने लगी और तदनुसार उनमें परिवर्तन भी होते रहे। अब बच्चों के अध्ययन के लिए केवल मनोवैज्ञानिक आधार ही नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय उपगमों को अपनाया जाने लगा। बच्चों को उनके संदर्भ में समझने का दृष्टिकोण समाजशास्त्र एवं नृविज्ञान द्वारा भी प्रोत्साहित किया गया। इनसब का यदि शैक्षिक अनुप्रयोग देखें तो विद्यार्थियों को जानने, उनकी रुचियों को समझने, उनकी विभिन्न समस्याओं का समाधान करने, उनके दृष्टिकोण व अभिवृत्तियों को पहचानने आदि में शिक्षकों द्वारा विभिन्न तरीको को इस्तेमाल करने की समझ बढ़ी।

सामान्यतः देखें तो बच्चों को समझने के कई सरल एवं जटिल तरीके हैं जिसे शिक्षकों द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है। इन तरीकों के माध्यम से बच्चों के बारे में महत्वपूर्ण आंकड़ों को एकत्र करके उनका विश्लेषण करने से शिक्षकों की समझ भी बहुत समृद्ध होगी। आगे के खण्डों में कुछ प्रमुख तरीकों के बारे में संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। प्रशिक्षुओं से अपेक्षा है कि वे इन तरीकों को समझकर इनका प्रयोग विद्यालयों में करें।

3.4 बच्चों का अवलोकन: विभिन्न तरीके

अवलोकन विधि वह विधि है, जिसमें किसी के व्यवहार या घटना को देखकर उसका व्यवस्थित व नियोजित रूप से अध्ययन किया जाता है। इस विधि का उपयोग शिक्षार्थियों के व्यवहारों, उनकी अभिरुचि, अभिक्षमता, व्यक्तित्व आदि के विषय में जानने के लिए किया जाता हैं। अवलोकन का शाब्दिक अर्थ है-ध्यानपूर्वक देखना, निरीक्षण करना, आँखों से देखना, अर्थात यह एक सुविचारित, सुनियोजित, सजगतापूर्वक अध्ययन करने की प्रक्रिया है। इसका प्रयोग कई प्रकार से किया जा सकता है जैसे व्यक्ति विशेष अथवा समूह के व्यवहार के अध्ययन हेतु। अवलोकन एक जटिल प्रक्रिया है जिसके व्यवस्थित क्रियांवयन के लिए अवलोकनकर्ता को कई प्रकार की तैयारियां करनी होती है। एक शिक्षक के रूप में अवलोकन करने के लिए इसके विविध पक्षों को समझना जरूरी है। अवलोकन के कुछ प्रमुख प्रकार इस प्रकार से हैं:

i. **औपचारिक अवलोकन-** इसमें अवलोकनकर्ता विद्यार्थियों के विशिष्ट व्यवहारों का अवलोकन औपचारिक परिस्थितियों में करता है। अवलोकनकर्ता यह निश्चित करता है कि उसे विद्यार्थियों को किस समय और कहाँ अवलोकन करना है । इसमें स्थान, समय, उपकरण के साथ-साथ, अवलोकन के निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाता हैं तथा साथ ही अवलोकन के लिए कुछ निश्चित बिन्दुओं को भी पूर्वनिर्धारित किया जाता है। उदाहरण स्वरूप जिस व्यक्ति का अवलोकन किया जानेवाला है उससे कुछ निश्चित कार्य करवाये जाते हैं और पूर्वनिर्धारित मानकों के अनुसार उनका अवलोकन किया जाता है। इसमें परिस्थितियों को आवश्यकतानुसार व्यवस्थित व नियंत्रित किया जाता है। अतः इसे औपचारिक अवलोकन कहा जाता है।

ii. **अनौपचारिक/स्वाभाविक अवलोकन-** शिक्षक स्वाभाविक परिस्थिति या विविध गतिविधियों जैसे- खेल का मैदान, कक्षाकक्ष में की गई गतिविधि, मध्य अंतराल के समय होने वाले क्रियाकलाप, स्कूल के बाहर बच्चों का व्यवहार आदि के दौरान अवलोकन कर सकते हैं। सामान्यत: इस तरह के अवलोकन में विद्यार्थियों को यह पता नहीं होता कि उनके व्यवहारों का अवलोकन किसी अवलोकनकर्ता द्वारा किया जा रहा है। फलस्वरूप वें अपने व्यवहारों में स्वभाविकता बनाए रखते है और अवलोकनकर्ता उन व्यवहारों का प्रेक्षण आराम से कर लेता है। इस दौरान शिक्षक किसी विद्यार्थी विशेष के विभिन्न व्यवहारों व गतिविधियों को ध्यानपूर्वक देख सकता है। उदाहरण के तौर पर, शिक्षक दूर से ही बच्चों के समूह द्वारा खेल के मैदान में किए गए व्यवहारों का अवलोकन कर इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि कौन सा विद्यार्थी सबका नेतृत्व कर रहा है, कौन-कौन से विद्यार्थी खेल में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं, और कौन से विद्यार्थी निष्क्रिय व चुपचाप मैदान में बैठे हुए हैं। अनौपचारिक निरीक्षण के लिए समय सीमा, स्थान, परिस्थितियां की कोई पाबंदी नहीं निर्धारित की जाती है। अवलोकनकर्ता स्वतंत्रता पूर्वक बच्चे के व्यवहार का अवलोकन कर सकता है।

iii. **सहभागी अवलोकन-** इस विधि में अवलोकनकर्ता विद्यार्थियों की क्रियाओं में स्वयं हाथ बटाता है अर्थात अवलोकनकर्ता विविध गतिविधियों में सहभागियों के साथ भाग लेते हुए उस समूह का सदस्य बन जाता है और इसके साथ-साथ उसके व्यवहारों का अवलोकन भी करते रहता है। यहां इस तरह अवलोकनकर्ता का क्रियाओं में हाथ बंटाने का मुख्य उद्देश्य व्यवहारों को स्वाभाविक तरीके से प्रभावित करने तथा ठीक ढंग से वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण करने से है। इस प्रकार के अवलोकन में शिक्षक अवलोकनकर्ता के रूप में निकट एवं गहराई से विद्यार्थियों के प्रत्येक पहलू का ध्यान से अवलोकन कर उनका विस्तृत रिकॉर्ड तैयार कर सकता है।

iv. **असहभागी अवलोकन-** इस प्रकार के अवलोकन में शिक्षक एक अवलोकनकर्ता के रूप में समूह में सम्मिलित न होकर उस गतिविधि पर बाहर से दृष्टि रखता है और विद्यार्थियों के व्यवहार को बाहर से ध्यान पूर्वक देखता है। अवलोकनकर्ता विद्यार्थियों के व्यवहार को विद्यालय के अन्दर एंव बाहर किसी भी जगह पर ध्यान से देखता रहता है और उसके आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचता है।

एक शिक्षक के लिए औपचारिक, अनौपचारिक, सहभागी व असहभागी सभी प्रकार के अवलोकन महत्वपूर्ण हैं। कई बार इन दोनो प्रकार के अवलोकन विधि का प्रयोग साथ-साथ होता है। कक्षा में शिक्षक अपने अवलोकन के आधार पर ही कक्षा व्यवस्था अथवा विद्यार्थियों के व्यवहार को व्यवस्थित करता है। उसके अवलोकन के कई बिन्दू हो सकते हैं।

अवलोकन के चरण

अवलोकन की प्रक्रिया को मूलतः तीन चरणों में किया जा सकता है। प्रत्येक चरण में किए जानेवाले कार्यो का विवरण सूझाव के रूप में आगे दिया जा रहा है। हालाकि इन चरणों को संदर्भ अनुसार परिवर्तित किए जाने की पूरी संभावना है। साथ ही यह भी समझना आवश्यक है कि कोई भी चरण स्वयं में परिपूर्ण नही है बल्कि प्रत्येक चरण की कार्ययोजना का अन्य चरणों से गहरा संबंध है। अवलोकन की प्रक्रिया को चरण में व्यक्त करने का प्रमुख कारण उसे व्यवस्थित रूप से करने से है।

प्रथम चरण (अवलोकन पूर्व) -यह अवलोकन से पहले का चरण है और यह अवलोकन करने के लिए आधार का काम करता है। यदि इस चरण को सुनियोजित कर लिया जाए तो आगे के चरणों को व्यवस्थित रूप से करने एवं अपेक्षित परिणामों को प्राप्त करने की संभावना बढ़ जाती है। इस चरण में किए जानेवाले प्रमुख कार्यो का क्रमवार विवरण निम्नलिखित हैं।

1. **अवलोकन के उद्देश्यों का निर्धारण**-अर्थात, क्या अवलोकन करना है, किसका अवलोकन करना है तथा क्यों अवलोकन करना है। ये तीनो प्रश्न अवलोकन के प्रक्रिया की प्रथम कड़ी हैं। इनके बिना आगे नही बढ़ा जा सकता। अतः अवलोकन करने से पूर्व शिक्षक को इन बिन्दुओं पर विचार करके इनका निर्धारण करना आवश्यक है। उदारहण के लिए, एक शिक्षक निम्नलिखित बिन्दुओं को लेते हुए अपने अवलोकन के उद्देश्यों को निर्धारित कर सकता है:-

- किसी विशेष परिस्थिति का अवलोकन
- किसी विशेष विद्यार्थी का अवलोकन
- किसी विशेष गतिविधि का अवलोकन
- किसी चयनित समस्या या विषय का अवलोकन

2. **अवलोकन हेतु योजना निर्माण-** अवलोकन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अब यह निश्चित करना होता है कि अवलोकन कैसे करें। इसके लिए क्या कार्य योजना होगी। योजना निर्माण के दौरान हमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होता है।
    i. अवलोकन की पस्थितियों से अवगत होना।
    ii. अवलोकन के लिए सहभागियों (एक विद्यार्थी, विद्यार्थी-समूह, शिक्षक-समूह आदि) का चयन
    iii. अवलोकन कैसे करेंगे अर्थात इसका प्रकार क्या होगा।
    iv. अवलोकन बिन्दुओं का निर्धारण (प्रश्नावली निर्माण, प्रारूप निर्धारण, आदि)
    v. अवलोकन के लिए समय, स्थान व अपेक्षित सामग्रियों का निर्धारण

द्वितीय चरण (अवलोकन के दौरान) - प्रथम चरण में निर्धारित किए गए कार्ययोजना के आधार पर उनका क्रियान्वयन इस चरण में किया जाएगा। वस्तुतः इस चरण में उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आंकड़ों को संग्रहीत किया जाएगा। आवलोकन की यह प्रक्रिया आवश्यकतानुसार एक से अधिक बार हो सकती है। इस चरण में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक हैः-

i. योजनानुरूप बनायी गयी प्रश्नावली अथवा प्रारूप में आंकड़ों को व्यवस्थित रूप से अंकित करना।
ii. परिस्थिति के अनुसार पूर्वनिर्धारित योजना में परिवर्तन करने के लिए लचीलापन रखें।
iii. अवलोकन के प्रकार के अनुसार उसके नियमों का ध्यान रखना। उदाहरण स्वरूप अनौपचारिक अवलोकन के दौरान शिक्षक को यह ध्यान रखना होगा कि विद्यार्थियों स्वाभाविक रूप से अपनी गतिविधियों में संलग्न हैं, तब अवलोकन करें।
iv. अवलोकन के आंकड़ों को सुरक्षित रूप से रखना।

तृतीय चरण (अवलोकन पश्चात) - इस चरण में द्वितीय चरण के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण किया जाएगा। आंकड़ों के विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों को ध्यान में रखे। साथ ही यह भी हो सकता है कि द्वितीय व तृतीय चरण को बार-बार किया जाना हो। विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त करें। विश्लेषण की बात करें तो प्राप्त आंकड़ों को कई दृष्टिकोणों से विश्लेषित किया जा सकता है। यह विश्लेषणकर्ता के उपर निर्भर करता है कि वे विश्लेषण के लिए किन-

किन विषयों से आधार बिन्दुओं को लेता है। उदाहरण के तौर पर, किसी बच्चे द्वारा किए जानेवाले व्यवहार को जेण्डर, पितृसत्ता, सामाजिक अधिगम, समाजीकरण आदि तमाम अवधारणाओं के संदर्भ में समझा जा सकता है।

आगे उदाहरण के तौर पर एक अवलोकन सूची को दिया गया है। इसमें दिए गए बिन्दुओं को पढ़े और यह विश्लेषण करें कि इस सूची के आधार पर प्राप्त आकड़ों की मदद से शिक्षक क्या विश्लेषण कर सकता है और कौन-कौन से निष्कर्षो तक पहुंच सकता है। साथ ही इस सूची के अवलोकन बिन्दुओं की समीक्षा भी करें कि वे औपचारिक अवलोकन हैं अथवा अनौपचारिक अवलोकन।

अवलोकन की सीमाएं

- अवलोकन विधि की सफलता के लिए सबसे पहले प्रेक्षक का तैयार एवं कुशल होना आवश्यक है। ऐसा नहीं होने के कारण प्रेक्षक अवलोकन के समय कई तरह की भूल कर बैठते है और विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है। अवलोकन की प्रक्रिया में बार बार सम्मिलित होने से ही प्रेक्षक को अनुभव होता है।
- स्वाभाविक अवलोकन विधि में प्रेक्षण अनियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है। परिस्थिति अनियंत्रित होने के कारण प्रेक्षक द्वारा निरीक्षण किए जाने वाले व्यवहार कई कारणों जैसे बच्चे का स्वास्थ्य, कक्षा-कक्ष परिस्थिति, आदि द्वारा प्रभावित होते रहते हैं। ऐसी परिस्थति में प्रेक्षक के लिए यह निश्चित करना संभव नहीं हो पाता कि विद्यार्थियों के व्यवहार में होने वाला अमूक परिवर्तन का कारण कौनसा है। अतः वे निश्चित होकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ रहते हैं।
- इस विधि में अवलोकनकर्ता के निजी पूर्वाग्रह, पक्षपात आदि का प्रभाव अवलोकन पर पड़ता है, जिससे उसका अवलोकन तटस्थ नहीं हो पाता है। उदाहरणस्वरूप- जब कोई शिक्षक किसी विद्यार्थी से बहुत खुश होता है या उसे पसंद करता है तो वह शिक्षक उस छात्र के बुरे व्यवहार को भी अच्छा कहता है, नजरअंदाज करता है और किसी ना किसी ढ़ग से उसकी प्रंशसा करता रहता है। इसी तरह अगर शिक्षक किसी अमुक विद्यार्थी से नाखुश होता है तो शिक्षक द्वारा उसके कामों में दोषारोपण किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि इस विधि में अवलोकनकर्ता की अपनी पूर्वधारणा या पक्षपात का प्रभाव अवलोकन पर बहुत पड़ता है ।
- अवलोकन विधि का उपयोग केवल बाह्य व्यवहारों के अध्ययन में किया जाता है और इसके आधार पर ही विद्यार्थी की आंतरिक मानसिक क्रियाओं के बारे में निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। लेकिन ऐसा करना हमेशा सही नही होता है क्योंकि आंतरिक मानसिक क्रियाओं का यथार्थ ढ़ग से अध्ययन करना संभव नही है।

गतिविधि

- बच्चों के किसी विशेष व्यवहार के अवलोकन के लिए अवलोकन प्रपत्र विकसित कीजिए।
- आप अपने शिक्षण अभ्यास के दौरान कुछ विद्यार्थियों का अवलोकन यहां वर्णित अलग-अलग अवलोकन विधि से करें। इसके पश्चात यह विश्लेषण करें कि क्या आपको समान आंकड़े ही प्राप्त हुए हैं।
- अपने शिक्षण अभ्यास के दौरान किसी विशेष संदर्भ को लेकर अवलोकन की एक कार्य योजना बनाएं और यह विश्लेषण करें कि क्या आपने भी यहां वर्णित अवलोकन के विभिन्न चरणों के अनुसार ही कार्य योजना बनाई।

अभ्यास प्रश्न

1. अवलोकन के प्रमुख प्रकार कौन कौन से हैं? आप उनमें से किनका प्रयोग मुख्य रूप से करते हैं?
2. औपचारिक और अनौपचारिक अवलोकन में मुख्य अंतर क्या है?
3. क्या अवलोकन एक चरणबद्ध कार्य है?

3.5 बच्चों के साथ अंतःक्रिया: साक्षात्कार विधि

साक्षात्कार का शाब्दिक अर्थ होता है अंतःदर्शनअर्थात आंतरिक रूप से देखना। इस तरह यह कहा जा सकता है कि शाब्दिक रूप से किसी व्यक्ति से सम्बन्धित आंतरिक तथ्यों को जानने की प्रक्रिया को साक्षात्कार कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जिन अप्रकट अथवा अदृश्य तथ्यों को बाह्य रूप से निरीक्षण नहीं किया जा सकता है, उन तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना ही साक्षात्कार कहलाता है। जैसे-किसी विषय के विभिन्न पहलुओं के विषय में गहन जानकारी प्राप्त करना।

इस विधि द्वारा विद्यार्थियों की सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं, अभिरुचियों योग्यताओं, मनोवृत्तियों से संबंद्ध अवधारणाओं का अध्ययन करते हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के विचारों, विश्वासों, मूल्यों, भावनाओं, अतीत के अनुभवों आदि के विषय में जानना है। इसमें प्रत्यक्ष संपर्क अर्थात आमने-सामने के संपर्क द्वारा सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है। साक्षात्कार विधि में शिक्षक विद्यार्थियों का एक-एक करके या एक छोटा समूह बनाकर कुछ प्रश्न पूछते हैं। साक्षात्कार का प्रयोग मुख्यतः वैसे विषयों के अध्ययन के लिए किया जाता है जिनको जानने के लिए बातचीत करनी आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर बच्चों के समायोजन संबंधी समस्याओं का अध्ययन करने तथा साथ ही साथ उनका शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन संबंधी अवधारणाओं को जानने के लिए इस विधि को अपनाया जा सकता है। साक्षात्कार के अन्तर्गत विद्यार्थी को स्वतंत्रतापूर्वक प्रश्नों के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। इस विधि में प्रायः गुणात्मक तथ्यों का संग्रह किया जाता है। इस विधि में विद्यार्थियों की भाव भंगिमा, अभिव्यक्ति, बोलने की शैली आदि के अवलोकन का मौका भी साक्षात्कारकर्ता को मिलता है। कुछ हद तक यह भी कहा जा सकता है कि शिक्षक साक्षात्कार के आधार पर बच्चे के

व्यवहार के बारे में जो विश्लेषण करता है, वह अधिक प्रामाणिक होता है और उसके द्वारा बच्चे के मानसिक पहलुओं के विषय में अधिक विश्लेषण किया जा सकता है। क्योंकि शिक्षक के विश्लेषण में स्वयं विद्यार्थी का मत भी अंतर्निहित होता है।

साक्षात्कार के प्रकार

साक्षात्कार को कई प्रकार से समझा जा सकता है जिसमें से निम्नलिखित साक्षात्कार प्रमुख हैं।

1. **संरचित साक्षात्कार-** इस विधि के अन्तर्गत अध्ययनकर्ता पूछे जानेवाले प्रश्नों को एक निश्चित क्रम में पहले से ही तैयार कर लेता है। साक्षात्कार के समय वह सूचनादाता से यह प्रश्न उसी क्रम के आधार पर पूछता है। इस तरह के साक्षात्कार में पूर्व निर्धारित प्रश्न होने के कारण साक्षात्कार की प्रकृति नियंत्रित होती है। उदारहण के तौर पर, शिक्षक पहले से यह निश्चित कर लेते है कि विद्यार्थियों से वे किन-किन प्रश्नों को पूछेंगे और उसको पूछने का क्रम क्या होगा। इस प्रकार के साक्षात्कार के कुछ लाभ भी हैं और कुछ सीमाएं भी। इस साक्षात्कार में पहले से प्रश्न निर्धारित होने के कारण साक्षात्कारकर्ता को कोई विशेष कठिनाई नही होती है, पर पूर्वनिर्धारित प्रश्न होने के कारण यह भी हो सकता है कि कई महत्वपूर्ण सूचनाओं को को शामिल नही किया जा सके। नीचे किसी विद्यार्थी से साक्षात्कार हेतु बनायी गयी सामान्य प्रश्नावली का उदाहरण दिया जा रहा है, इसके प्रश्नों को देखें और किसी विद्यार्थी से इनको पूछ कर उनका विश्लेषण भी करें।
    i. अपने परिवार के बारे में बताएं?
    ii. आपके कितने भाई-बहन हैं?
    iii. आपको घर पर क्या करना अच्छा लगता है और क्यों?
    iv. अपने आस-पड़ोस के बारे में बताएं?
    v. क्या आपके मित्र हैं?
    vi. अपने प्रिय मित्र के बारे में बताँए। वह आपको प्रिय क्यों है?
    vii. आपको यह विद्यालय कैसा लगता है?
    viii. आपका पसंदीदा कालांश कौनसा है?
    ix. आपको किस तरह का खेल पसंद है?
    x. आपको कैसे शिक्षक या शिक्षिकाएं पसंद है?

2. **असंरचित साक्षात्कार** - संरचनात्मक साक्षात्कार विधि के विपरीत इस विधि में प्रश्न एवं उनकी संख्या पहले से निश्चित नहीं होती। अध्ययनकर्ता अध्ययन संबंधित कोई भी प्रश्न पूछने के लिए स्वतंत्र होता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों के स्वरूप अपने मन से निर्धारित करता है। वस्तुतः साक्षात्कारकर्ता पहले से सिर्फ विषयवस्तु के विषय में सोंचकर आता है पर प्रश्नों का निर्माण वह साक्षात्कार के दौरान ही करता है। इस प्रकार के साक्षात्कार के लिए गहन तैयारी की जरूरत पड़ती है। साक्षात्कारकर्ता के पास यह कौशल होनी चाहिए जिससे वह साक्षात्कार के दौरान

उभर कर आए प्रसंगों से पुनः कोई प्रश्न बना दे। इस प्रकार के साक्षात्कार के लिए अनुभवी व्यक्ति की अवाश्यकता होती है। इस साक्षात्कार में चुंकि प्रश्नों को पहले से निर्धारित करके नही रखा जाता, अतः साक्षात्कार देनेवाले को यह पूरी आजादी रहती है कि वह अपनी बात को विस्तार से रखे। साथ ही यह भी खतरा रहता है कि कहीं विषय से भटकाव ना हो जाए। साक्षात्कार के और भी कई प्रकार हैं जैसे- औपचारिक, अनौपचारिक, नैदानिक इत्यादि।

साक्षात्कार की प्रक्रिया के चरण

मुख्य रूप से साक्षात्कार की प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण होते है -

i. **साक्षात्कार की तैयारी**- इस चरण में साक्षात्कार के विषय एवं उसके उद्देश्यों के अनुरूप पूर्व तैयारियां की जाती है। उदाहरण के तौर पर साक्षात्कार देनेवाले व्यक्ति से अनुमति, साक्षात्कार का समय, चर्चा के विषयबिन्दु, स्थान, इत्यादि से संबधित तैयारियों पर ध्यान दिया जाता है। इस दौरान साक्षात्कार की योजना का निर्माण भी किया जाता है जिसमें साक्षात्कार का प्रारम्भ, विकास एवं समापन से संबंधित व्यवस्था की योजना बनायी जाती है।

ii. **साक्षात्कार का संचालन**-इस चरण में साक्षात्कार को पूर्व निर्धारित योजना के अनुरूप क्रियांवित किया जाता है। इस दौरान साक्षात्कारकर्ता द्वारा साक्षात्कार के विषयबिन्दु को चर्चा के केन्द्र में बनाये रखने के अलावा कई महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। जैसे- साक्षात्कार की शुरूआत कैसे करें, समुख बैठे व्यक्ति से चर्चा को स्वाभाविक रूप से शुरू कैसे करें। चर्चा के दौरान महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में कैसे रखें, इत्यादि। साक्षात्कार का समापन कैसे करें, इसका भी विशेष ध्यान साक्षात्कारकर्ता को रखना होता है।

iii. **आलेखन/प्रतिवेदन व विश्लेषण**- इस चरण में साक्षात्कार के दौरान आए महत्वपूर्ण सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से लिखा जाता है। प्रायः साक्षात्कार के तुरन्त बाद इस कार्य को कर लिया जाता है ताकि किसी प्रकार की महत्वपूर्ण जानकारी ध्यान से उतर ना जाए। अंत में उद्देश्यों के आधार पर प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण कर लिया जाता है।

गतिविधि

- किसी बच्चे का चयन कर उससे कम से कम एक घंटा बातचीत करें और फिर बातचीत से निकलकर आए मुख्य बिन्दुओं का विश्लेषण करें।
- अपने शिक्षण अभ्यास के दौरान कुछ विद्यार्थियों के माता-पिता/अभिभावक से साक्षात्कार की कार्य योजना बनाएं और उसके आधार पर साक्षात्कार लें।
- एक संरचित और एक असंरचित साक्षात्कार के माध्यम से बच्चों से अंतःक्रिया करें। उसके आधार पर, दोनों प्रकार के साक्षात्कारों पर टिप्पणी करें।

आगे ज्यां पियाजे द्वारा बच्चों के साथ किए गए एक साक्षात्कार का उदाहरण दिया जा रहा है।

ज्यां पियाजे की नैदानिक साक्षात्कार विधि (क्लीनिकल विधि)

अभी तक हमने साक्षात्कार के विभिन्न प्रकार एवं इसकी समान्य प्रक्रिया पर विचार किया। साथ ही साक्षात्कार के लिए प्रश्नावली के उदाहरण का विश्लेषण भी किया। जिन पियाजे ने भी अपने अध्ययन के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया था। चूंकि उनके प्रयोग ने बच्चों के अध्ययन के लिए साक्षात्कार विधि के महत्व को रेखांकित किया, अतः यहां हम उनके द्वारा किए गए प्रयोग का एक परिचय भी दे रहे हैं। पियाजे ने बच्चों के विचारों के विस्तार के लिए वार्तालाप शैली का तरीका अपनाया। पियाजे के नैदानिक साक्षात्कार का उपयोग बच्चों की संज्ञात्मक पक्ष का अध्ययन करने में किया जाता है। इसके अलावा बाल विकास के अन्य क्षेत्रों में भी इसका उपयोग किया जाता है, जैसे- बच्चों के देखभाल के तौर तरीकों की सूचनाएं प्राप्त करने के लिए अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा इसका उपयोग किया गया। इस विधि की विशेषता यह है कि यह व्यक्ति को अपने विचारों के प्रदर्शन हेतु अवसर देता है।

नैदानिक साक्षात्कार की कुछ सीमाएँ भी हैं जैसे- कई बार विषयी स्वयं के विचार प्रक्रिया से सम्बन्धित सूचनाओं को छुपाते हुए साक्षात्कारकर्त्ता को मिथ्या सूचनाएँ देता है। विषयी अपने विचारों को शब्दों में अभिव्यक्त करने में असमर्थ होते है। इस कारण से साक्षात्कारकर्ता को वास्तविक जानकारी प्राप्त नही हो पाती।

नैदानिक साक्षात्कार के अन्तर्गत पियाजे ने 5 साल के बच्चे से सपनों की समझ के बारें में कई प्रश्न किए थे। उनके उदारहण नीचे दिए जा रहे हैं। (Source: Piaget, 1926/1930,PP 97-98)

- प्रश्न 1 - सपने कहाँ से आते हैं ?
  उत्तर - मै सोचता हूँ, जब मै सोता हूँ तब सपने आते है।
- प्रश्न 2 - क्या यह हमारे भीतर से आते है या फिर बाहर से ?
  उत्तर - बाहर से।
- प्रश्न 3 - हम सपने में क्या देखते है ?
  उत्तर - मैं नही जानता (हाथ हिलाते हुए)।
- प्रश्न 4 - जब आप सोते हो, और अपना सपना देखते हो, तब सपना कहाँ होता है ?
  उत्तर - मेरे बिस्तर में कम्बल के अन्दर, यह मेरे पेट मे था, हड्डियों में छूपा था। इसलिए मैनें नही देखा।
- प्रश्न 5 - जब तुम सोये तब सपना कहाँ था ?
  उत्तर - हाँ, वह मेरे बिस्तर में था।
- प्रश्न 6 - जब आप कमरे में थे, तब आपने सपने को देखा तो यदि मै अन्दर आता तो क्या मै भी देख पाता ?

उत्तर - नही, जो बड़े होते है वो सपने नही देखते।

- प्रश्न 7 - क्या दो लोगों को एक जैसे सपने आते है ?
  उत्तर - नही, कभी नही।
- प्रश्न 8 - जब सपना कमरे में होता है तो क्या तुम्हारे करीब होता है ?
  उत्तर - हाँ, वह मेरी आँखो से 30 सेंटीमीटर दूर होता है।

गतिविधि

- आपने उपरोक्त प्रश्नों एवं उनके उतरों कों पढ़ा। अब आप पियाजे द्वारा पूछे गए प्रश्नों का विश्लेषण करें और इस आधार पर अपने आस पास में उसी आयु के दो-तीन बच्चों से उन्हीं प्रश्नों को पूछं। क्या उनके जवाब उसी प्रकार के होंगे या अलग। यह पता लगाएं।
- अपने विद्यालय के एक बच्चे के साक्षात्कार हेतु एक साक्षात्कार पत्र तैयार किजिए जो उसके व्यवहार का अध्ययन कर सकें।
- आप इस इकाई से पूर्व की इकाइयों में से उन गतिविधियों अथवा दत्त कार्यो को चिन्हित करें जिसको करने के लिए साक्षात्कार विधि का सहारा लेना होगा।

साक्षात्कार की सीमाएं

- इसमें समय तथा श्रम दोनों ही अधिक लगते हैं। साथ ही बहुत बड़ी संख्या में साक्षात्कार कर पाना मुश्किल होता है। अतः यह विधि बहुत छोटे समूह के लिए उपयुक्त है।
- साक्षात्कारकर्ता की पूर्वधारणा के कारण साक्षात्कार के आंकड़े तथा विश्लेषण दोनो ही प्रभावित होते हैं। अतः इससे प्राप्त निष्कर्षों पर पूर्ण रूप से निर्भर नही रहा जा सकता।
- इस विधि द्वारा विद्यार्थियों के शैक्षिक व्यवहारों के अध्ययन करते समय यह देखा जाता है कि वे उस परिवेश में घबरा जाते है या डरे-डरे दिखते है। इस कारण कभी कभी तो वे सब कुछ जानते हुए भी प्रश्नों का सही उत्तर नहीं दे पाते। अतः निष्कर्ष तक पहुंचना संभव नहीं हो पाता।

अभ्यास प्रश्न

4. साक्षात्कार के कुछ प्रमुख प्रकार बताएं।
5. संरचित और असंरचित साक्षात्कार में क्या अंतर है?
6. क्या किसी व्यक्ति से बातचीत एक प्रकार का साक्षात्कार हो सकता है?
7. साक्षात्कार करने में प्रमुख चुनौतियां कौन कौन सी हैं? आप उन चुनौतियों का समाधान कैसे करेंगे।

3.6 बच्चों को समझने के अन्य तरीके

अवलोकन और साक्षात्कार के अलावा और भी कई तरीके हैं जिनके माध्यम से बच्चों को समझा जा सकता है। विद्यालय में शिक्षक इन तरीकों को अपनाते भी हैं। आइए इनके बारे में समझते हैं।

3.6.1 विश्लेषणात्मक/चितंनात्मक प्रतिक्रिया लेखन (रिफ्लेक्टिव जर्नल)

जर्नल (पत्रिका) अथवा प्रतिवेदन का लेखन चिंतन एवं मनन करने के अभ्यास का एक साधन है। विश्लेषणात्मक/चितंनात्मक जर्नल अपने कार्य की प्रगति के प्रति समालोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक रूप से सोचने का तरीका है। यह दर्शाता है कि कैसे आपके कार्य के विभिन्न पक्ष एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसमें किसी विषय अथवा सीखने की प्रक्रिया की उन्नति/विकास एवं सोच में बदलाव की निरंतर संभावना बनी रहती है। उदाहरण के तौर पर विद्यालय में बच्चों के व्यवहार में आपके प्रति पहले दिन से लेकर अबतक क्या-क्या परिवर्तन हुआ और क्यों हुआ, इसपर आप एक रिफ्लेक्शन लिख सकते हैं।

चिंतनशील लेखन में एक घटना, विचार, वस्तु, प्रक्रिया अथवा अनुभव पर पुनः देखने का साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सिद्धांतों पर समकालीन विचारों को लेते हुए वस्तु, प्रक्रिया, अनुभवों पर विश्लेषण एवं टिप्पणी दी जाती है। प्रक्रिया के महत्व एवं प्रासंगिकता की खोज एवं व्याख्या की जाती है। इसमें यह भी देखा जाता है कि विषय अथवा प्रक्रिया का आपके लिए क्या महत्व है एवं इससे आपका सीखना कैसे प्रभावित हो रहा है। रिफ्लेक्टिव लेखन में बहुत सारे विषयों से विभिन्न दृष्टिकोणों को शामिल करने की भरपूर सम्भावना होती है। उदाहरण के तौर पर, आपकी कक्षा में कोई बच्चा किसी खास तरह का व्यवहार करता या करती है तो उसके कारणों पर आप चिंतन मनन कर सकते हैं और मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि से विश्लेषण का आधार लेकर टिप्पणी लिख सकते हैं।

विश्लेषणात्मक/चितंनात्मक लेखन की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण बिन्दु

चिंतनशील-विश्लेषणात्मक लेखन में निम्नांकित के संदर्भ में ध्यान रखना चाहिए -

i. **विवरण-** यह बहुत अधिक लंबा नहीं होना चाहिए तथा इसमें 'यह क्या है'?क्या हुआ? एवं 'मैं इसके बारे में क्यों बात कर रहा हूँ?' यह अवश्य आना चाहिए।
ii. **व्याख्या-** इसमें यह अवश्य देखा जाए कि क्या वह प्रक्रिया/विषय उपयोगी महत्वपूर्ण रोचक व प्रासंगिक है? कैसे यह दूसरों के समान अथवा अलग है? कैसे इसे समकालीन सिद्धांतों को लेते हुए पता लगाया समझाया जा सकता है ?
iii. **परिणाम-** परिणाम में आपने इससे क्या सीखा व यह आपके भविष्य के काम को कैसे प्रभावित करेगा, इस पर चिंतन होना चाहिए।

शिक्षक डायरी: रिफ्लेक्टिव जर्नल के रूप में

कक्षा में शिक्षण के दौरान अपने विद्यार्थियों के व्यवहारों व समस्याओं को योजनाबद्ध तरीके से समझना तथा उनपर चिंतन-मनन करना, एक शिक्षक के लिए अति आवश्यक हैं। इसमें शिक्षक की डायरी की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। एक तरह से, अपनी डायरी के माध्यम से शिक्षक स्वयं के शिक्षण में साकारात्मक परिवर्तन ला सकता है। शिक्षक डायरी मूलतः एक शिक्षक का दपर्ण है जिससे उसके शिक्षण की विशेषताओं की छवि मिलती है। सीखने-सीखाने की प्रक्रिया में शिक्षक डायरी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत होती है जो शिक्षक की समझ, व्यवहार व मनोभाव को प्रदर्शित करती है।

विद्यालय में अपने शिक्षण से सम्बंधित विभिन्न गतिविधियों की योजनाओं से लेकर शिक्षण के दौरान आनी वाली कठिनाइयों आदि का विस्तृत विवरण एक शिक्षक स्वयं अपनी डायरी में प्रतिदिन लिखता है। उन अनुभवों के आधार पर वह अपने शिक्षण पद्धति में बदलाव की संभावना तलाशता है तथा आवश्यकतानुरूप परिवर्तन करके पुनः कक्षा में प्रस्तुत होता है। इसके अलावा विद्यार्थियों की रूचि तथा उनके स्तर को देखकर उसमें सुधार लाने के तरीकों को लिखना तथा शिक्षक विद्यालय में प्रतिदिन क्या पढ़ाते है तथा बच्चे उस चीज को किस गति से सीखते हैं, इस संबंध में सूचनाओं को एकत्रित करना। इस प्रकार शिक्षक डायरी उसके वृत्तिक विकास का भी एक प्रभावी माध्यम हो सकता है।

शिक्षक डायरी का इतना व्यापक महत्त्व होने के बावज़ुद शिक्षकों के द्वारा इसका प्रभावी उपयोग नगण्य है। विद्यालयों में यह सिर्फ औपचारिकता तक ही सीमित है, जिसे प्रशासनिक आदेशों के कारण शिक्षकों द्वारा ऐसे ही लिख दिया जाता है। परन्तु यदि वास्तविक रूप से शिक्षक डायरी का सही उपयोग किया जाये तो किसी भी विद्यालय में शिक्षण स्तर को बहुत ऊँचा उठाया जा सकता है।

गतिविधि

- किसी बच्चे का चयन करें और उसके व्यवहार का अवलोकन उसपर रिफ्लेक्टिव नोट लिखें।
- आप जब इन्टर्नशिप के अन्तर्गत विद्यालयों में शिक्षण कार्य करने के लिए जाएंगे, उस समय अपने प्रतिदिन के शिक्षण के विषय में चिंतनशील विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन तैयार करें।

अभ्यास प्रश्न

8. क्या शिक्षकों के लिए रिफ्लेक्टिव नोट लिखना लाभदायक है? क्यों?
9. रिफ्लेक्टिव नोट का एक उदाहरण बताएं जो शिक्षक अपने विद्यालय में कर सकते हैं?

3.6.2 एनेक्डोटल अभिलेख (उपाख्यान आलेख/घटनावृत्त आलेख)

बच्चों के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए शिक्षक विभिन्न प्रकार के तरीकों का उपयोग करते हैं। इसमें गैर मनोवैज्ञानिक तकनीकें आदि शामिल होती है। किसी विद्यार्थी के व्यवहार और व्यक्तित्व गुणों से

संबंधित सूचनाओं अथवा उस विद्यार्थी के जीवन से जुड़ी महत्वपूर्ण घटनाओं आदि को एनेक्डोटल या उपख्यानक आलेख के रूप में तैयार किया जाता है, जिसके द्वारा विद्यार्थी के विकास को संपूर्णता में समझने में सहायता मिल सके। उपख्यानक अभिलेख के द्वारा एक शिक्षक को बच्चों के व्यवहार की समझ विकसित करने में सहायता मिलती है। ये अभिलेख बच्चे के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाओं का एक लिखित संकलन है जिसकों शिक्षक आवश्यकता अनुरूप उपयोग में लेता है।

इस अभिलेख के माध्यम से शिक्षक अपने विद्यार्थी के व्यवहार व अधिगम के विकास से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं को व्यवस्थित रूप से रिकार्ड करके रखता है ताकि समयानुसार उनके विश्लेषण से विद्यार्थी को विशेष मदद की जा सके। सभी विद्यार्थियों के विषय में एनेक्डोटल रिकार्ड को तैयार करने के दौरान एक अध्यापक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के प्रति और अधिक संवेदनशील हो पाता है, साथ ही उनके विषय में और जान पाता है।

उपाख्यानक अभिलेख छात्रों की समस्याओं पर भी प्रकाश डालते है। अतः विद्यार्थियों को उचित निर्देशन एवं परामर्श देने में सुविधा होती है। जब कोई नया अध्यापक विद्यालय में आता है, तब वह उपाख्यानक अभिलेखों का अध्ययन करके अपने विद्यार्थियों के संबंध में पूरी जानकारी थोड़े समय में ही प्राप्त कर लेता है। अतः इस प्रकार उपाख्यात्मक अभिलेख बच्चों के विशेष व्यवहार का लेखा-जोखा रखने में सहायक है। और एक शिक्षक के लिए यह अत्यंत आवश्यक हे। कि वे बच्चों के विशेष व्यवहारों पर दृष्टि रखें और उन व्यवहारों का दिन-प्रतिदिन अवलोकन कर रिकार्ड का संधारण करें।

गतिविधि

- अपने आस पास के कुछ विद्यालयों का भ्रमण करें और यह पता लगाएं कि वहां कौन कौन से उपाख्यानक अभिलेख उपलब्ध हैं।
- साथ ही यह भी पता लगाएं कि उन उपाख्यानक अभिलेखों का प्रयोग विद्यालय के शिक्षक किस प्रकार से करते हैं।

एनेक्डोटल अभिलेखों के प्रकार

एनेक्डोटल रिकार्ड विभिन्न प्रकार के होते हैं। विद्यालय के विद्यार्थियों अथवा उनसे संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं से संबंधित संक्षिप्त विवरण एक प्रकार का एनेक्डोटल रिकार्ड ही है। इसमें किसी विद्यार्थी विशेष से संबंधित सूचनाओं का संग्रह किया जाता है। उदाहरण के तौर पर विद्यार्थी की पारिवारिक पृष्ठभूमि, आर्थिक स्तर, स्वास्थ्य विवरण, अकादमिक प्रदर्शन रिपोर्ट इत्यादि। विद्यार्थी की नियमित डायरी भी स्वयं में एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। इनमें से कई एनेक्डोट्स को विद्यालय का शिक्षक अकेले नहीं बना सकता अर्थात उसके लिए विद्यार्थी के परिवार व अन्य स्रोतों से भी मदद लेनी पड़ती है।

एनेक्डोटल रिकार्ड को तैयार करने के लिए प्रमुख रूप से इस इकाई में पहले चर्चित विधियों का सहारा ही लिया जाता है। एक शिक्षक अवलोकन, साक्षात्कार, विश्लेषणात्मक लेखन आदि के माध्यम से ही

विद्यार्थी विशेष के विषय में एनेक्डोटल रिकार्ड तैयार करता है। आगे एनेक्डोटल रिकार्ड के कुछ प्रारूप दिए गए हैं।

गतिविधि

स्थिति-1

आशा कक्षा-7 की छात्रा है, वह कक्षा में हमेशा चुपचाप बैठी रहती है। ऐसा नहीं की वह पढ़ने में कमजोर है, बल्कि उसके शिक्षक और शिक्षिकाओं के अनुसार वह बहुत अच्छे से पढ़ती है। कई बार समझाने पर भी आशा कक्षा में गुमसुम ही रहती है। ना किसी के साथ खेलती है और ना किसी से बात करती हे।

स्थिति-2

रवीन्द्र कक्षा-5 में पढ़ता है और सुबह विद्यालय आते ही दुसरे बच्चों के साथ लड़ाई करना उसका पहला काम हैं। विद्यालय के शिक्षकों के अनुसार रवीन्द्र पढ़ने में होशियार है। लेकिन बहुत समझाने पर भी वह अपनी शरारतों को नहीं छोड़ता है और इसी कारण सभी बच्चे उसके साथ बात नहीं करते हैं और विद्यालय के सभी शिक्षक भी उससे नाराज रहते हैं।

ऊपर दी गई स्थिति-1 व स्थिति-2 को ध्यान से पढ़िए। दोनों स्थितियों के बच्चों का अध्ययन आप आगे कैसे करेंगे और उनके एनेक्डोटल रिकार्ड्स के आधार पर क्या विश्लेषण करेंगे।

उपाख्यात्मक अभिलेख का प्रारूप

प्रारूप-1

विद्यार्थी का नाम: .... कक्षा: ....

क्र.स.	दिनांक	स्थान	घटना	टिप्पणी
				अध्यापक के हस्ताक्षर नाम व पद

प्रारूप-2

सामाजिक-जनांकिकी प्रोफाईल - इसके माध्यम से विद्यार्थी के व्यक्तिगत परिचय के साथ-साथ विद्यार्थी की पारिवारिक जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। इससे हमें यह जानने में भी मदद मिलती हैं कि प्रयोज्य की उम्र क्या हैं? उसका लिंग, जाति, धर्म, विद्यालय का नाम, जन्मस्थान, पारिवारिक ब्यौरा, भाषा आदि जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। इस उपकरण के द्वारा हमें विद्यार्थी की सामाजिक, आर्थिक व्यक्तिगत स्थिति की आधारभूत जानकारी प्राप्त होती है। जिसमें उसके बारे में लगभग सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण जानकारी सम्मिलित होती है। खासकर उस माहौल का पता चलता है जिसमें वो अपना

अधिकतर समय व्यतीत करता है। यह जानना इसलिए आवश्यक बन जाता हैं, क्योंकि उस माहौल का उस पर अधिक प्रभाव होगा। यहाँ उदाहरणस्वरूप कुछ प्रश्न दिये जा रहे है , जिन्हे देखकर आप इस तरह का उपकरण के प्रारूप से अवगत हो पायंगे।

विद्यार्थी का नाम -...
जन्मतिथि -... लिंग - पुरूष/स्त्री
कक्षा -...
पिता का नाम-...
माता का नाम-..
निवास स्थान का पता-...
परिवार का स्वरूप- एकल/संयुक्त
परिवार में सदस्यों की संख्या- ....
परिवार में प्रयोग की जाने वाली भाषा- हिन्दी/अंग्रेजी/अन्य ....
विद्यार्थी के परिवार के शैक्षिक स्तर का विवरण-..
विद्यार्थी के परिवार के आर्थिक स्तर काविवरण……………………………………

अभ्यास प्रश्न

10. आपके अनुसार कौन-कौनसे उपाख्यानक अभिलेखो का प्रयोग विद्यालय में होता है या किया जा सकता है?
11. उपाख्यानक अभिलेखों को तैयार करते समय किस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

3.7 सारांश

इस इकाई के माध्यम से हमने समझा कि हर बच्चे के जीवन में उसके सामाजिक-सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक आदि परिवेश का गहरा हस्तक्षेप होता है। जब बच्चे विद्यालय आते हैं तो वे अपनी सोंच एवं व्यवहार के अंतर्गत उस परिवेश के तत्वों को भी लेकर आते हैं। अतः यह जरूरी है कि बच्चे के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं, उसके व्यवहार, सोंच आदि के बारे में शिक्षक को एक व्यवस्थित समझ हो। विभिन्न विषयों जैसे कि मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नृविज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि से विभिन्न सिद्धांतों, उपागमों एवं तरीकों को अपनाकर बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं को समझने का कार्य किया जा सकता है, जिनसे सम्बंधित कई उपागमों एवं तरीकों की चर्चा हमने इस इकाई में की। हमने अवलोकन विधि के बारें में अपनी समझ विकसित की और यह जाना कि बच्चे के व्यवहार का अवलोकन किस प्रकार से किया जा सकता है एवं उसके व्यवहारों को कैसे समझा जा सकता है। साक्षात्कार विधि के अन्तर्गत हमने उसके अलग-अलग प्रकार जैसे- संरचित व असंरचित साक्षात्कार आदि को समझा। इसी

तरह, यह भी जाना कि शिक्षक विद्यालय में विभिन्न बच्चों के व्यवहार का रिकार्ड़ एनेक्डोटल आलेख के रूप में कैसे तैयार कर सकता है। इस रिपोर्ट में वह बच्चे के व्यवहार में समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों को अंकित करता है। कुल मिलाकर देखें तो इस इकाई के अन्तर्गत बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं से आंकड़ों को एकत्र करने के लिए विभिन्न तरीकों यथा- अवलोकन, साक्षात्कार, चितनशील विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन एवं एन्कडोटल आलेख का संदर्भगत अध्ययन यहां किया गया है।

3.8 शब्दावली

1. **संरचित-** जिसके विभिन्न भागों को निर्धारित किया जा चुका है।
2. **असंरचित-** जिसके भाग पूर्वनिर्धारित नही हैं और उसमें खुलापन है।
3. **वृत्तिक-** पेशेवर, किसी वृत्ति/प्रोफेशन से सम्बंधित

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. औपचारिक, अनौपचारिक सहभागी और असहभागी अवलोकन।
2. औपचारिक अवलोकन में स्थान, समय, उपकरण आदि निर्धारित होते हैं। अनौपचारिक में इनको पूर्वनिर्धारित करने की आवश्यकता नहीं होती।
3. यदि व्यवस्थित एवं समग्र रूप में देखा जाए तो अवलोकन एक चरणबद्ध कार्य है।
4. संरचित और असंरचित साक्षात्कार
5. संरचित साक्षात्कार में पूछे जानेवाले प्रश्न पहले से निर्धारित होते हैं। असंरचित में प्रश्नों को साक्षात्कार के दौरान ही गढ़ा जाता है।
6. यह एक असंरचित साक्षात्कार के तौर पर हो सकता है यदि बातचीत किसी मुद्दे पर उस व्यक्ति की राय या विचार जानने से सम्बंधित है।
7. पहले से विस्तृत तैयारी चाहिए। साक्षात्कार देनेवाले से अधिक समय की मांग होती है।
8. हां, इससे शिक्षकों को अपने कार्य और अपने बच्चों की गतिविधियों का समग्र विश्लेषण करने में मदद मिलती है।
9. शिक्षण करने के पश्चात शिक्षक जब अपने शिक्षण का स्वमूल्यांकन करते हुए टिप्पणी लिखते हैं तो यह उनका रिफ्लेक्टिव नोट ही है।
10. बच्चों की उपलब्धि या किसी गतिविधि/आयोजन में बच्चों की भूमिका से संबंधित उपाख्यानक अभिलेखों का प्रयोग विद्यालय में देखा जा सकता है।
11. उपाख्यानक अभिलेखों को तैयार करते समय यह विशेष ध्यान रखना होता है कि बच्चों से सम्बंधित कोई जरूरी बिन्दु छूट न जाए।

3.10 संदर्भ सूची एवं उपयोगी पठन सामग्रियां

1. बर्क, लारा, ई. (2006). चाइल्ड़ डेवलपमेंट, नई दिल्ली, प्रिंटीस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड़।
2. रंगनाथन, नमिता (2000). द प्राइमरी स्कूल चाइल्ड, नई दिल्ली, ओरिएन्ट लोगमान लिमि0।
3. बेस्ट, जे. डब्लू. व काह्न, जे. वी. (2006). रिसर्च इन एजुकेशन, पी.एच.आई पब्लिकेशन।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को समझना एक शिक्षक के लिए क्यों आवश्यक है? अपने परिवेश के कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए व्याख्या करें।
2. मनोविज्ञान के कुछ प्रमुख सिद्धांतों को सहारा लेते हुए किसी बच्चे की गतिविधियों एवं व्यवहार का विश्लेषण करें।
3. समाजशास्त्रीय अवधारणाओं के आलोक में बच्चों के सामाजिक विकास का अवलोकन करें।
4. छात्रों के व्यवहारों का अवलोकन करते समय आप किन-किन बातों का ध्यान रखेंगे और क्यां ?
5. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन में अवलोकन किस प्रकार से सहायक हो सकता है। उदाहरण द्वारा समझाइये
6. आप अपने विषय में अवलोकन के आधार पर किन किन व्यवहारों के विषय में पता लगा सकते हैं?
7. कुछ वैसे मुद्दों की सूची बनाइए जिनपर आप अपने विद्यालय के बच्चों से कुछ जानकारी एकत्र करना चाहते हैं और फिर उनसे सम्बंधित साक्षात्कार प्रश्नावली का निर्माण करें।
8. बच्चों से किस तरह का साक्षात्कार सबसे सुगम होगा और इस संदर्भ में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।
9. चिंतनशील/विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन एवं शिक्षक के रूप में आपके लिए किस तरह उपयोगी होगा। अपने विचार प्रस्तुत करें।
10. रिफ्लेक्टिव जर्नल के माध्यम से किसी शिक्षक की शिक्षण एवं बच्चों के प्रति अवधारणाओं पर एक टिप्पणी लिखें।
11. आपके अनुसार विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन लिखने के लिए किन किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

खण्ड -2

Block- 2

इकाई- 1 शिक्षण एवं अधिगम के सन्दर्भ में सिगमन्ड फ्रायड के मनो-लैंगिक विकासात्मक अवस्था सिद्धान्त के आधार पर विकास को समझना

Understanding 'growing-up' through Sigmund Freud's Psycho-sexual developmental stage theory in the context of teaching and learning

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मनोलैंगिक विकास की अवस्थाएं
1.4 **मन के अभिकरण**
1.5 **मन के तीन अभिकरणों के बोध के स्तर**
1.6 शैक्षिक निहितार्थ
1.7 सारांश
1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक सिगमन्ड फ्रायड हैं। यह सिद्धान्त मानव मन की आन्तरिक अनुभुतियों (Feelings), आवेगों (impulses) तथा स्वप्न-चित्रों (Fantasies) को समझने का प्रयास है।

फ्रायड का जन्म 1856 में फ्रेइबर्ग, मोराविया में हुआ था। फ्रायड के जन्म के समय उनकी माता की उम्र 20 वर्ष और पिता की 40 वर्ष थी। फ्रायड के पिता ऊन के व्यापारी थे। वे परन्तु व्यावसायिक रूप से बहुत सफल नहीं रहे। फ्रायड एक बुद्धिमान विद्यार्थी थे। उन्होंने चिकित्सा शिक्षा प्राप्त की थी। और मन: चिकित्सा के अन्तर्गत 'उन्माद'(हिस्टीरिया- Hysteria) को अपने शोध कार्य का केन्द्र बिन्दु बनाया। 'हिस्टीरिया'शारिरिक बिमारियों तथा समृति क्षय से सम्बन्धित है जिनका कोई दैहिक कारण स्पष्ट नहीं

होता है। 'हिस्टीरिया'नामक बिमारी से ग्रस्त व्यक्ति अपनी इच्छाओंतथा संवेगों की वास्तविकता का दमन कर देता है। यह दमन शारिरिक लक्षणों के रूप में परिलक्षित होता है। 'हिस्टीरिया'से ग्रसित रोगियों,जिनमें अधिकतर महिलाएं थीं, की समस्याओं के निदान के लिए गए शोध कार्य से 'मनोविश्लेषणसिद्धान्त' का प्रार्दुभाव हुआ। फ्रायड का शोध कार्य इस अवधारणा पर केन्द्रित रहा कि ये रोगी जिन संवेगों का दमन करते हैं वे मूलरूप से लैंगिक (Sexual) प्रकृति के होते हैं। इन संवेगों से सम्बन्धी वास्तविक घटनाओं के साथ-साथ उनके प्रति रोगी की अनुभूतियां तथा विचार भी महत्वपूर्ण होते हैं।

बाल्यकालीन लैंगिकता (Childhood Sexuality) को समझने के लिए फ्रायड ने ओडिपस ग्रन्थि (Odipus Complex) के प्रत्यय को प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थि के कारण बालक अपनी माँ के प्रति तीव्र लगाव की वजह से पिता के प्रति वैमनस्य युक्त हो जाता है तथा बालिका अपने पिता के प्रति तीव्र लगाव के कारण माँ के प्रति वैमनस्य युक्त हो जाती है। यह सिद्धान्त फ्रायड द्वारा 'इन्टरप्रिटेशनऑफ ड्रिम्स'(Interpretation of Dreams) नामक पुस्तक में सर्वप्रथम वर्ष1900 में प्रस्तुत किया गया तथा इसे 'अचेतन तक का शाही मार्ग' (The royal road to the unconscious) कहा।

1.3 मनोलैंगिक विकास की अवस्थाएं (The Stages of Psycho Sexual Development)

फ्रायड ने अपने शोध कार्य के परिणामों से यह निष्कर्ष निकाला कि काम-भावनाएं (Sexual feeling) बाल्यावस्था से ही सक्रिय रहती हैं। फ्रायड 'कामुकता'(Sex) को केवल सम्भोग तक ही सीमित नहींरखते हैं वरन् इसके अन्तर्गत वे दैहिक आनन्द सुख (Bodily pleasure) को उत्पन्न करने वाली सभी क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं। सुख / आनन्द के लिए की जाने वाली चूषण क्रियाएं (sucking for pleasure), हस्तमैथुन (Masturbation), अपने शरीर का प्रर्दशन, दूसरों के शरीर को देखना, गुदीय उत्सर्जन या अवरोधन, शरीर को सुदृढ़ बनाने हेतु की जानी वाली शारिरिक क्रियाएं तथा क्रूरता (cruelty) सम्बन्धी कार्य जैसे चिकोटी काटना या दाँत से काटना आदि ऐसी ही दैहिक आनन्द / सुख उत्पन्न करने वाली गतिविधियाँ हैं।

फ्रायड के सिद्धान्त में 'सामान्य कामुक ऊर्जा' (general sexual energy) को 'लिबिडो' कहा गया है और शरीर के जिस हिस्से में यह ऊर्जा केन्द्रित होती है उसे कामोत्तेजक भाग (erogenous zone) कहा जाता है। शरीर का कोई भी हिस्सा कामोत्तेजक भाग बन सकता है लेकिन बाल्यावस्था में मुँह, गुदा तथा जननांग (the mouth, the anus, and the genital area) तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग हैं। बालक/बालिका की काम सम्बन्धी रूचियाँ इन कामोत्तेजक भागों में एक निश्चित अवस्था क्रम (specific stage sequence) से केन्द्रित रहती हैं। बच्चे की प्रथम काम सम्बन्धी रूचि 'मुँह' पर केन्द्रित रहती है। इसके बाद यह रूचि 'गुदा' केन्द्रित हो जाती है और अन्ततः 'जननांग' पर केन्द्रित होती है।

फ्रायड का मानना था कि यह क्रम एक परिपक्वता प्रक्रिया से बनता है । और यह प्रक्रिया अन्र्तजात (innate), जैविक (biological) कारकों पर आधारित होती है। इसके साथ ही बच्चे के निजी अनुभव भी इस ‘क्रम’को सुनिश्चित करने में निर्णायक विकासात्मक भूमिका का निर्वहन करते हैं। उदाहरण के लिए यहाँ यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि जो बच्चा मुखी स्तर (Oral stage) पर अत्यधिक कुण्ठा का अनुभव करता है वह बड़े होने पर मुँह से किए जाने वाली चीजों पर लवलीन (Preoccupied) रहता है।

i. मुखी अवस्था (oral stage) - जन्म के तुरन्त बाद के महिने

फ्रायड ने लिखा है – ‘यदि एक शिशु अपने को व्यक्त कर सकता होता तो वह निस्सन्देह यह बताता कि माँ के स्तनों को चूसना जीवन की सबसे महत्वपूर्ण चीज है’ (1920,p. 323) चूसना, वास्तव में अत्यावश्यक है, क्योंकि यह पोषण प्रदान करता है, बच्चे को जीवित रहने के लिए उसे चूसना ही होगा। फ्रायड का विचार था कि ‘चूसने’से स्वयं ही आनन्द /सुख प्राप्त होता है। यही कारण है कि भूखे नहीं होने पर भी शिशु अपने अंगूठे को चूसते हैं। फ्रायड इस प्रकार के सुख/आनन्द के लिए चूसने को ‘Autoerotic’ (आत्म-रति) कहते हैं क्योंकि शिशु अपने शरीर से ही परितोषण (Gratification) प्राप्त करते हैं। शिशु इस अवस्था में पूर्ण रूपेण दूसरों पर आश्रित रहते हैं परन्तु उन्हें इस बात का भान नहीं होता क्योंकि उन्हें दूसरों के अलग/पृथक अस्तित्व का बोध ही नहीं होता है।

फ्रायड इस प्रारम्भिक वस्तुरहित स्थिति (initial objectless state) को एक प्राथमिक आत्मरति (as one of primary narcissism) की स्थिति बताते हैं। आत्मरति का अर्थ है ‘स्वप्रेम’ (Self - love) और इसे ग्रीक मिथक (Greek Myth) से लिया गया है।इस मिथक में ‘नासिसॅस’ (Narcissus) पसम कस बालक तालाब के पानी में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर उससे प्यार करने लगता है। आत्मरति से यह प्रदर्शित होता है कि शिशु मूलरूप से अपने शरीर पर ही केन्द्रित रहते हैं।

मुखी अवस्था का दूसरा भाग (The second part of the oral stage)

लगभग 6 माह की आयु से शिशु ‘दूसरे’के प्रत्यय को पकड़ना प्रारम्भ करते हैं, विशेष रूप से माँ को अपने से अलग आवश्यक ‘दूसरे’के रूप में समझते लगते हैं। माँ के पास न होने पर या उसकी जगह किसी अन्य को देखनेपर वे चिन्तित हो जाते हैं। इस अवधि में शिशु के जीवन में एक दूसरा महत्वपूर्ण विकास हो रहा होता है। दांतों का बढ़ना और दांत से काटने की उत्तेजना का प्रारम्भ होना। फ्रायडवादी मानते हैं कि शिशु को ऐसा लगता है कि ‘काटने’ से माँ को दूर कियाजा सकता है। इस स्तर पर जीवन जटिल और कष्टप्रद हो जाता है। शिशु अपने जीवन के प्रारम्भिक समय में ही पहुचँना चाहता है जब जीवन काफी सरल और संतोषप्रद था। शिशु स्तनपान से प्राप्त होने वाले आहार और सुख से ‘दांत से काटने’ की प्रवृति के कारण वंचित होने लगता है। यह शिशु के लिए मानसिक आघात के तुल्य होता है।

निर्धारण एवं प्रतिगमन (Fixation and regression)

फ्रायड के अनुसार हम सब मुखी अवस्था (Oral Stage) तथा मनोलैंगिक विकास के अन्य स्तरों से गुजरते हैं। लेकिन किसी स्तर पर एक व्यक्ति अपने को 'निर्धारित'(Fix) भी कर सकताहै चाहे वह उससे कितना भी आगे क्यों न चला गया हो। ऐसी स्थिति में वह उस अवस्था के सुख/आनन्द से ही जुड़ा रह जाता है। उदाहरण के लिए 'मुखी अवस्था' से जुड़े रह गए व्यक्ति भोजन करने, चीजों को चूसने या दांत से काटने (जैसे पेन्सिल आदि), मुखी लैंगिक क्रियाओं (Oral Sexual activities) या धूम्रपान या मदिरापान की लत से सुख/आनन्द प्राप्त करते पाए जाते हैं। मनोविश्लेषणवादी सामान्यतया मानते हैं कि इसका कारण मुखी अवस्था पर अत्यधिक परितोषण (excessive gratification) या अत्यधिक नैराश्य/कुण्ठा (excessive frustration) के कारण होता है।

कभी-कभी व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में थोड़े से ही मुखी विशेषक (Oral Traits) को प्रदर्शित करते हैं जब तक कि वे कुछ नैराश्य/कुण्ठा से ग्रस्त नहीं होते हैं। तब वे मुखी निर्धारण बिन्दु (Oral Fixation Point)पर लौट जाते है (regress) हैं। एक नन्हा बच्चा अपनी छोटी बहिन के जन्म के बाद जब माता-पिता के लाड़ प्यार में अपने लिए कमी पाता है तो अंगूठा चूसने की जिस क्रिया को वह छोड़ चुका होता है, उसे पुन: प्रारम्भ कर देता है। उसका मुखी अवस्था (oral stage) पर लौट जाना (regress) है। इसी प्रकार एक किशोरी जो मुखी अवस्था के मामलोंसे प्रमुख रूप से सरोकार नहीं रखती है, अपने किशोर - मित्र से सम्बन्ध टूट जाने पर अवसादित (depressed) होने के कारण 'खाते रहने' की ओर उन्मुख हो जाती है।

ii. **गुदा अवस्था (The Anal Stage)**-18 माह से 36 माह तक आयु में शिशु की काम रूचियाँ (sexual interests) गुदा क्षेत्र (anal zone) पर केन्द्रित रहती हैं। गुदा क्षेत्र की श्लेष्म झिल्लियों (mucous membranes) में अन्त्र क्रियाओं (Bowel movements) से उत्पन्न होने वाले आनन्ददायक अनुभुतियों (Pleasurable sensations) से बच्चे वाकिफ (aware) होने लगते हैं। वे मल-मूत्र विसर्जन की क्रियाओं को कुछ देर रोककर करने से गुदीय आनन्द प्राप्त करना प्रारम्भ कर देते हैं। वे अपने द्वारा उत्पन्न किए गए 'मल' में रूचि लेने लगते हैं और उससे खेलने-लीपने-पोतने से आन्नद प्राप्त करने लगते हैं। यह स्वाभाविक है कि माता-पिता इस प्रकार की क्रियाओं को बहुत देर तक नहीं चलने देते हैं। इसके लिए माता-पिता टाईलेट-प्रशिक्षण (Toilet Training) देते हैं। कुछ बच्चं कुछ समय के लिए इसका विरोध करते हैं तथा अपने तथाकथित 'गन्दे'काम को जारी रखते हैं। इस विरोध को प्रदर्शित करने में वे चीजों को बर्बाद करने, अव्यस्थित रहने तथा अस्तव्यस्त रहते हैं। इस प्रकार का प्रदर्शन प्रौढ़ावस्था तक भी चल सकता है। फ्रायड माता5पिता की 'टॉयलेट-ट्रेनिंग' पर जोर देने के दूसरे परिणाम पर भी ध्यान देते हैं। उन्होंने देखा कि कुछ लोग इस कारण से स्वच्छ रहने, व्यवस्थित रहने तथा विश्वसनीय बने रहने में अत्यधिक जोर देने लगते हैं। ऐसे लोग माता-पिता के 'गन्दे काम'के विरोध को न मानने को बहुत जोखिम- भरा समझने लगते हैं और माता- पिता द्वारा बनाए नियमों का पालन, करनेमें ही भलाई समझने लगते हैं। ऐसे बच्चे अपने द्वारा उत्पन्न 'मल' को

तो दूसरों के कहने पर छोड़ देते हैं परन्तु बाद के जीवन में अपने द्वारा उत्पन्न वस्तुओं यथा ‘धन-सम्पत्ति’को पकड़कर रखते हैं और किसी दूसरे को उसे कदापि नहीं लेने देते हैं।

iii. लैंगिक अवस्था (The Phallic Stage) - लगभग 3 वर्ष से 6 वर्ष की आयु में बच्चे लैंगिक अवस्था में प्रवेश करते हैं। फ्रायड ने इस स्तर को बालिकाओंकी तुलना में बालकों के सन्दर्भ में अधिक अच्छे तरीके से समझा है।

बालक का ओडिपल संकट (The boy’s Oedipal Crisis)

ओडिपल संकट बालक द्वारा अपने लिंग पर रूचि लेने से प्रारम्भ होता है। आसानी से उत्तेजित होने वाला, आकार में बदलने वाला और सनसनी से भरपूर यह अंग बालक के कुतूहल को प्रज्वलित कर देता है। बालक अपने लिंग की तुलना अन्य पुरूषों तथा जानवरों के लिंग से करने लगता है और वह लड़कियों और स्त्रियों के जननांगों को देखने के प्रयास करने लगता है। वह लिंग के प्रदर्शन से आनन्दित होने लगता है। वह बड़े होने पर अपनी कामसम्बन्धी (sexual) भूमिका की कल्पना करने लगता है। अपने मनोराज्य-फंतासी (fantasy) में वह अपने को एक आक्रामक नायक पुरूष (aggressive, heroic male) के रूप में सोचता है और अपने विचारों को अपनी प्राथमिक प्रेम-वस्तु, अपनी माँ पर केन्द्रित करता है। वह माँ को कसकर चूम सकता है या रात को उसके साथ सोना चाहता है या उससे विवाह करने की कल्पना करने लगता है। लेकिन यह बालक शीघ्र ही जान लेता है उसके ये विचार अनुचित माने जाते हैं। वह जान जाता है कि वह ‘बड़ा बच्चा’ (big boy) हो चुका है। वह समझ जाता है कि वह जब चाहे माँ को नहीं छू सकता, उससे चिपक नहीं सकता। लेकिन वह देखता है कि पिता जब चाहें माँ को छू सकते हैं, चिपक सकते हैं और रातभर उसके साथ सो सकते हैं। यहाँ पर ‘ओडिपल संकट’ की रेखाएं खिंच जाती हैं। बालक अपने पिता को माँ के लिए प्यार में प्रतिद्वन्दी के रूप में देखने लगता है। पिता से ईष्या होने पर भी वह पिता से प्यार करता है तथा उसे पिता की जरूरत होती है।अत: अपने विध्वंसकारी विचारों से स्वयं डर जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस स्थिति में बालक ‘केसट्रेशन’(castration) की आशंका से ग्रस्त हो जाता है। फ्रायड के समय में माता-पिता बालकों के हस्तमैथुन करने पर सीधे ‘केसट्रेशन’ की धमकी दे देते थे। अब माता-पिता हस्तमैथुन को मृदु ढंग से हतोत्साहित करते हैं परन्तु बालक सम्भवत: केसट्रेशन से चिंतित रहता है क्योंकि उसको पता चल चुका होता है कि उसकी बहन या अन्य स्त्रियों के पास ‘लिंग’नहीं है। उसे लगता है कि कभी उनके पास भी लिंग था लेकिन लेकिन वह काट दिया गया है और ऐसा उसके साथ भी हो सकता है।

‘ओडिपल संकट’ से उबरने के लिए बालक माता के प्रति अपनी ‘अगम्यागमन इच्छाओं’ (incestuous desires) का दमन (repression) करता है। वह माँ के प्रति अपनी कामुक भावनाओंको गहरे अचेतन (unconscious) में धकेलदेता है। वह अपनी माँ को अभी भी प्यार करता है। लेकिन ऐसा वह सामाजिक रूप से स्वीकृत शुद्ध-उद्दात रूप से करता है। पिता के प्रति विरोध का भी वह दमन करता है तथा उससे एकीकरण identification) के लिए उसका जैसा बनने के प्रयास प्रारम्भ कर देता है। ऐसा

प्रतीत होता है मानो बालक कह रहा हो – 'यदि तुम उससे जीत नहीं सकते हो तो उससे मिल जाओ' (if you can't win him, join him)।

'ओडिपल संकट'से अन्तिम रूप से निपटने के लिए बालक 'परम अहम'(super ego) का आत्मीकरण करता है। वह अपने माता-पिता के निषेधों (prohibitions) को आत्मीकृत करता है और स्वयं को एक 'पुलिस वाले'के रूप में देखता है जो उसे खतरनाक इच्छाओं तथा आवेगों से रोकता है।

बालिका का ओडिपल (The Girl's Oedipus Complex)

फ्रायड का विश्वास था कि एक छोटी बालिका के लिए भी 'ओडिपल संकट' होता है लेकिन उन्होंने स्वीकार किया कि इस सन्दर्भ में उनकी समझ अपूर्ण एवं अस्पष्ट है। उनके अनुसार 5 वर्ष की आयु के आसपास से बच्ची अपनी माँ से निराश हो जाती है।उसको लगता है वह माँ के प्यार से वंचित हो रही है। छोटे भाई या बहन के जन्म होने से उसे ऐसा लगने लगता है। वह माँ की बढ़ती हुई रोक-टोक से क्षुब्ध होने लगती है । अन्ततः उसे सर्वाधिक निराशा तब होती है जब उसे लगताहै कि माँ ने उसे अपर्याप्त रूप से सज्जित (insufficiently equipped) कर इस दुनिया में भेजा है क्योंकि उसके पास लिंग नहीं है। फ्रायड ने इसे लिंग ईर्ष्या /डाह (penis envy) कहा –लिंग पाने की चाह तथा एक बालक के समान होने की इच्छा। लेकिन कुछ समय बाद यह छोटी बच्ची अपने नारीजातीय गर्व (femininepride)को पुनः प्राप्त कर लेती है। ऐसा तब होता है जब वह पिता द्वारा उस पर ध्यान दिए जाने को महत्व देने लगती है। बच्ची की शैशवावस्था में हो सकता है कि पिता का उसके प्रति विशेष ध्यान न हो परन्तु अब पिता उसकी छवि/आकर्षण तथा नारीत्व की प्रशंसा करने लगते हैं – पिता उसे 'मेरी छोटी राजकुमारी' (my little princess) कहने लगते हैं। इससे प्रोत्साहित होकर बच्ची अपनेऔर पिता के बीच रूमानी स्वप्न चित्र (romantic fantasies) बुनने लगती है।वास्तविक दुनिया में यह सम्भव नहीं होता है तथापि वह माँ को अपना प्रतिद्वन्दी मानने लगती है। इस ओडिपल स्थिति को फ्रायड 'इलेक्ट्रा मनोग्रन्थि' (Electra complex)कहते हैं। फ्रायड के लिए एक बड़ी उलझन यह थी कि वे बच्ची के 'इलेक्ट्रा मनोग्रन्थि' के समाधान के लिए 'प्रेरणा' (motivation) का पता नहीं लगा जा रहे थे।

एक छोटे बच्चे के सन्दर्भ में प्राथमिक प्रेरणा स्पष्ट थी – लिंग कटने का भय, एक छोटी बच्ची के सन्दर्भ यह भय था ही नहीं। फ्रायड इस स्थिति को ठीक तरह से समझ नहीं पाए लेकिन उनका अनुमान था बच्ची को माता-पिता के प्यार को खोनेका डर था। इसलिए वह 'इलेक्ट्रा मनोग्रन्थि' का समाधान करती है। इस प्रकार वह पिता के प्रति अपनी कामुक इच्छाओं का दमन कर माँ से तादात्म्य स्थापित करती है।वह एक परम अहम् (super ego) निर्मित कर निषिद्धआवेगों तथा इच्छाओं (forbidden impulses and wishes)से अपने को बचाती है। 'लिंग कटने के भ्य' के अभाव में बच्ची का ओडिपल भावनाओं के विरूद्ध मजबूत सुरक्षाकवच निर्मित करने की प्रेरणा कमजोर होती है। फ्रायड जानतेथेकि उनका यह

अन्तिम निष्कर्ष नारीवादियों (feminists) को क्रोधित करेगा परन्तु उनके चिन्तन ने उन्हें इसी निष्कर्ष तक पहुंचाया और उन्होंने दावा किया कि स्त्रियां वास्तव में नैतिक मामलों के बारे में कम सख्त होती हैं।

(Freud knew that this last conclusion would anger the feminists, but this was where his reasoning led, and he argued that women in fact are less rigid about moral issues. 1993, p. 129)

अव्यक्ता अवस्था (The Latency Stage)

ओडिपल अनुभूतियों (oedipal feelings) के विरोध में दृढ़ बचाव निर्मित कर, बच्चा 'अव्यक्ता अवस्था' में प्रवेश करता है जो छह वर्ष से ग्यारह वर्ष तक चलती है, अधिकांश कामुक और आक्रामक फंतसियां (sexual and aggressive fantasies) अब अव्यक्त रहती हैं। वे अचेतन मन में गहरे दबा दी जाती हैं। इस समय कामुकता का दमन काफी व्यापक होता है – इस दमन में न केवल ओडिपल अनुभूतियां और स्मृतियां समाहित होती हैं वरन् मुखी और गुदीय अनुभूतियां और स्मृतियां भी होती हैं। खतरनाक आवेग और फंतासियां अब जमींदोज / भूमिगत (underground) होती हैं। इस समय बालक/बालिकाएं इनसे बहुत अधिक परेशान नहीं रहते हैं। और यह अवस्था अपेक्षतया शांत होती हैं। इस अवस्था में बालक-बालिकाएं अपनी ऊजाओं का मूर्त, सामाजिक रूप से स्वीकृत कार्यों यथा खेल-कूद तथा बौद्धिक क्रियाओं में उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। कुछ फ्रायडवादियों का तर्क है कि कामुक और आक्रामक फंतासियां इस अवस्था में पूर्ण रूप से लुप्त नहीं होती हैं जैसा कि फ्रायड का मानना था। लेकिन वे भी यह मानते हैं कि काम-सम्बन्धी मामले अपना डरावना तथा र्दुदमनीय स्वरूप खो चुके होते हैं। सामान्यता, अव्यक्ता अवस्था में बच्चे एक नया सुव्यस्थित आत्म-नियंत्रण प्राप्त कर लेते हैं।

तारूण्य (जनन-सम्बन्धी अवस्था)(Puberty – The Genital Stage)

अव्यक्ता अवस्था का स्थयित्व बहुत समय नहीं बना रहता है। नवफ्रायडवादी इरिकसन इसे 'तूफान से पहले का सन्नाटा' (it is only a bull before the storm of puberty) कहते हैं। तारूण्य अवस्था, जो बालिकाओं में लगभग11 वर्ष से तथा बालकों में लगभग13 वर्ष से प्रारम्भ होती है, काम-सम्बन्धी ऊर्जा (sexual energy) में वृद्धि हो जाती है और यह ऊर्जा स्थापित सुरक्षा कवचों को ध्वस्त सा कर देती है। इस अवस्था में ओडिपल अनुभूतियां पुन: चेतन स्तर पर आ धमकती हैं और युवक/युवतियां इन अनुभूतियों को वास्तविक धरातल पर उतारने के लिए सक्षम भी हो जाते हैं।

तारूण्य अवस्था के चलते व्यक्ति का एक प्रमुख कार्य 'माता-पितासे स्वतन्त्र होना है' (फ्रायड, 1920:345), यहाँ पर यह उल्लेख करना समीचीन है कि यह अवधारणा पाश्चात्य संस्कृतिके सन्दर्भ में कदाचित सही हो परन्तु भारतीय परिवेश में इसके पूर्णरूपेण ठीक होने में सन्देह होना सम्भवत: गलत नहीं है। जन्म से लेकर तारूण्य अवस्था तक मानव अपने माता-पिता पर मजबूत निर्भरता निर्मित कर लेता है

और उसकेलिए अपने माता-पिता से स्वतंत्र होना भावनाओं के दृष्टिकोण से कष्टकारी होता है। वास्तव में अधिकतरलोगों के लिए माता-पिता से पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र होना कभी भी सम्भव नहीं हो पाता है।

1.4 मन के अभिकरण (The Agencies of the Mind)

इस संदर्भ में फ्रायड ने तीन प्रत्ययों को प्रतिपादित किया है – इदम्, अहम् तथा परमअहम।

i. इदम् (the Id) – फ्रायड ने प्रारम्भ में ‘इदम्’को व्यक्तित्व का ‘अचेतन’(the unconscious) भाग कहा था। यह व्यक्तित्व का सर्वाधिक आदिम भाग है (the most primitive part of the personality) तथा मूल दैहिक प्रतिक्रियाएं तथा अर्न्तनोद (the basic biological reflexes and drives) इसमें सन्निहित रहती है । इदम् ‘आनन्द /सुख का सिद्धान्त’ (Pleasure principle) से शासित रहता है। इसका उद्देश्य अधिकतम आनन्द/सुख की प्राप्ति तथा पीड़ा को न्यूनतम करना होता है। तनाव को कम करना इसका लक्ष्य होता है। फ्रायड के अनुसार सम्भोग की क्रिया में तनाव के चरम बिन्दु पर आने के बाद स्खलन आनन्ददायक होता है। इसकी प्रकार लम्बे समय तक भूखा रहने के बाद भोजन की प्राप्ति तथा मल-मूत्र के देर तक बाधित होने के बाद इसके निष्कासन की क्रिया आनन्ददायक होती है।

   सामान्यतया, इदम प्रत्येक उत्तेजना को दूर करने तथा शान्त स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करता है – यह स्थिति गहरी और शांत निद्रा की स्थिति होती है।

   जीवन यात्रा में अनेक प्रभावों तथा आवेगों को हम ‘इदम’ में दमित कर देते हैं और वे वहाँ मूल अर्न्तनोदों के साथ अस्तित्व में बने रहते हैं। मन के इस अंधेरे और अगम्य भाग में ऐसा कुछ नहीं होता है जो तर्क पर आधारितहो तथा जहाँ समय का कोई भान हो। ये प्रभाव तथा आवेग एक प्रकार से अमर होते हैं तथा समय बीत जाने पर भी ऐसे प्रकटहोते हैं मानो वे अभी हुए हैं। इदम् महासागरीय, अस्तव्यस्त तथा असंगत (Oceanic, chaotic, and illogical) होता है। यह बाह्य जगत से पूर्णरूपेण से असम्बद्ध होता है।इस रहस्यमय क्षेत्र के बारे में जानकारी सपनों के अध्ययन से प्राप्त होती है।

   इदम् में मूल अर्न्तनोद तथा प्रतिक्रियाएं के साथ-साथ दमित अनुभव तथा चित्र समाहित रहते हैं। इसके साथ ही इदम् में आक्रामकता तथा विध्वंसकारी शक्तियां भी सन्निहित रहती हैं।

ii. अहम् (The Ego) - यदि हम ‘इदम्’ से ही शासित रहेंगे तो हम लम्बे समय तक जीवित ही नहीं रह पाएंगे। अस्तित्व में बने रहने के लिए, पूर्ण रूपेण मतिभ्रम (Hallucinations) के आधार पर र्का करने या केवल अपने आवेगों के अनुरूप कार्य करना सम्भव नहीं है। हमें वास्तविकता से सम्बन्ध रखना सीखना पड़ता है। उदाहरण के लिए, एक छोटा बच्चा जल्दी ही सीख जाताहै कि जो कुछ सामने दिख रहा है वे सब खाद्य पदार्थ नहीं खाए जा सकते हैं। वह जान जाता है कि यदि वह किसी बड़े बच्चे की चॉकलेट को खा लेगा तो वह पिट भी सकता है। वह अभिकरण

जो तात्कालिकआवेगों को टालना सिखाता है और वास्तविकता को समझना सिखाता है वह अहम् (ego) कहलाता है।

फ्रायड के अनुसार जहाँएक ओर इदम् अनियंत्रित (untamed)आवेग है वहीं अहम् तर्क तथा लाभदायक समझ (reason and good sense) पर आधारित होता है। अहम् वास्तविकता का ध्यान रखता है अत: यह 'वास्तविकता सिद्धान्त' (reality principle) का अनुसरण करता है। अंग्रेजी भाषा का 'ईगो' का दैनिक जीवन में उपयोग कुछ अलग तरीके से होता है। हम सुनते हैं कि उसका ईगो बहुत बड़ा है – big ego, जिसका तात्पर्य है कि उसकी स्वधारणा (self-image) आडम्बरपूर्ण है। वास्तव में 'अहम्' (ego) कुछ निश्चित कार्यों से प्रदर्शित होता है जैसे- वास्तविकता का सही अनुमान लगाना, आवेगों को नियंत्रित करना। 'स्वधारणा'व्यक्ति की उसके द्वारा बनाई गई छवि है और यह 'अहम्' से भिन्न है।

यद्यपि 'अहम्'अपने कार्य 'इदम्' से स्वतंत्र रहकर करता है, यह अपनी समस्त ऊर्जा 'इदम्' से ही प्राप्त करता है। फ्रायड ने 'अहम्'से 'इदम्'का सम्बन्ध घुड़सवार और घोड़े जैसा बताया है। घोड़ा इंजन ऊर्जा (locomotive energy) की आपूर्तिकरता है तथा घुड़सवार को अधिकार प्राप्त होता है कि वह यात्रा के लक्ष्य को निर्धारित करे तथा घोड़े को उसी ओर ले जाए। लेकिन कभी-कभी यह भी होताहै कि घुड़सवार की तमाम कोशिशों के बाद भी घोड़ा अपनी मर्जी से ही चलता है।

iii. परम अहम् (super ego) - परम अहम् को व्यक्तित्व के 'नियन्त्रण व्यवस्थाओं' (control systems) में से एक का जाता है। अहम् का कार्य इदम् के प्रचण्ड आवेगों को नियन्त्रित कर प्राणी को नुकसानसे बचाना है। एक छोटा बच्चा खाद्य पदार्थ को छीनकर खाने से पहले ठीक तरह से सुनिश्चित कर लेता है कि ऐसा करना वास्तव में सुरक्षित है या नहीं। लेकिन हम ऐसा केवल खतरे से बचने के लिए ही नहीं करते हैं, हम कुछ अन्य कारणों से भी ऐसा करते हैं। हम दूसरोंकी चीजों को इसलिएभी नहीं छीनते हैं कि ऐसा करना हमें अनैतिक लगता है। हमारे अच्छे और बुरे के बारे में निर्णय लेने के मानकहमारे द्वितीय 'नियन्त्रण व्यवस्था' से निर्मित होते हैं। जिसे परम अहम् (super ego) कहा जाता है।

फ्रायड ने परम अहम् की विवेचना दो भागों में की है –

प्रथम भाग – विवेक (conscience)- यह परम अहम् का दण्डात्मक (punitive), ऋणात्मक (Negative) तथा आलोचनात्मक(critical) भाग है। यह व्यक्ति को बताता है कि उसे क्या नहीं करना चाहिए तथा उस स्थिति में व्यक्ति को अपरोध – बोध से दण्डित करता है जब व्यक्ति इस भाग की मांगकी अवहेलना करता है।

द्वितीय भाग – अहम् आदर्श (Ego ideal) -इस भाग में धनात्मक अभिलाषाएं (positive aspirations) सन्निहित रहती हैं। इसमें व्यक्ति के धनात्मक आदर्श, जैसे दयालू तथा निर्भीक बनने की इच्छाएं या न्याय तथा स्वतंत्रता के सिद्धांतों के प्रति समर्पण समाहित रहते हैं। तारूण्य

अवस्था में ऐतिहासिक महापुरूषों जैसा बननेकी ईच्छा, अन्याय -असामानता के प्रति विद्रोह की भावना इसी भाग से संचालित होती है।

1.5 मन के तीन अभिकरणों के बोध के स्तर (Levels of Awareness of the Three Agencies of the Mind)

इदम्, अहम् तथा परम अहम् बोध के भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते है।

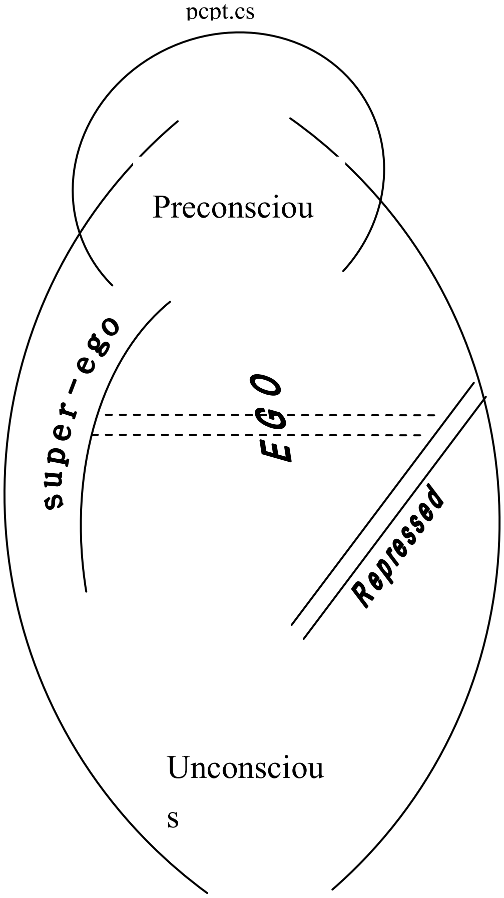
pcpt.cs
Preconsciou
super-ego
EGO
Repressed
Unconsciou
s

Freud’s sketch of the personality structure
(Source: Crain, W.C., p.139, 1980)
फ्रायड का व्यक्तिव संरचना का रेखाचित्र

इस रेखाचित्र के तल में इदम् है । यह ‘pcpt.cs’ द्वारा अंकित क्षेत्र-चेतना तथा वास्तविकता के प्रत्यक्षज्ञान/अवबोधन से पूर्णरूपेण पृथक है। इदम् सम्पूर्णत: अचेतन है। इसका तात्पर्य यह है कि इसकी कार्यप्रणाली को चेतन स्तर पर लाना अत्यधिक कठिन है।

अहम् चेतन और वास्तविकता तक विस्तरित है। यह इदम् का वह भाग है जो बाह्य जगत से सम्बन्ध रखने के लिए विकसित होता है । यह रेखाचित्र प्रदर्शित करता है कि अहम् ‘preconscious’ द्वारा अंकित क्षेत्र में अधिकांशत: निवास करता है। इससे ज्ञात होता है कि अहम् की कार्यप्रणाली चेतन स्तर से नीचे है लेकिन इसे चेतन स्तर पर अपेक्षतया कम प्रयास से लायाजा सकता है। अहम् भी अंशत: अचेतन है – यह वर्जित/निषिद्ध विचारों को पूर्णत: अचेतन ढंग से दमित कर देता है।

परम अहम् को अहम के ऊपर चित्रित किया गया है। यह इसकी उस भूमिका को दर्शाता है। जिसमें यह ऊपर से अहम् की आलोचना करता है । परम अहम् भी अंशत: अचेतन है । व्यक्ति अपने नैतिक मानदण्डों के प्रति सजग रहते हैं , तथापि ये हमें अनेक बार अचेतन ढंग से भी प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, हम कभी-कभी अचानक ही उदास हो जाते हैं बगैर यह जाने कि ऐसा क्यों होता है। सम्भवत: हमारा परम अहम हमें अपने वर्जित/निषिद्धविचारों के लिए दण्डित करता है।

अहम् की केन्द्रीय भूमिका (The Central Role of The Ego)

जिन्दगी जीने की हमारी योग्यता – हमारा मानसिक संतुलन – हमारे अहम की विभिनन दबाओं को झेलने की योग्यता पर निर्भर करता है । स्पष्ट रूप से कहा जाए जो अहम् एक कार्यकारी अभिकरण (executiveagency)है जिसे ऐन-केन प्रकारेण तीन ‘निरंकुश स्वामियों’ (tyramrical masters) – इदम्, वास्तविकता तथा परम अहम् की सेवा करनी होती है – उनके आदेशों का पालन करना होता है।

अहम को इदम्की दैहिक मांगों की पूर्ति करनी होती है लेकिन इस तरह कि वह बाह्य जगत की वास्तविकताओं का आदर भी करे तथा जिससे परम अहम के नियमों (precepts) का उल्लंघन भी न हो। यह कार्य कठिन है क्योंकि ‘अहम्’वस्तुत: कमजोर है। इसके पास अपनी ऊर्जा/ शक्ति नहीं है वरन् इसे यह ऊर्जा ‘इदम्’से उधार में लेनी होती है। परिणामत: अहम् चिंता प्रवृत (prone to anxiety) रहता है – उसे भ्य रहता है कि कहीं वह अपने तीन स्वामियों में से किसी एक को संतुष्ट न कर सके।सर्वप्रथम,‘अहम्’को ‘न्यूरोटिक चिंता’ (neurotic anxiety) का अनुभव होता है जब उसे लगता है कि वह ‘इदम्’के आवेगों को दबा नहीं लगता है, तब जब एक खतरनाक दमित इच्छा पुन: प्रकट होने के लिए डराती है या तब जब वह एक बुनियादी दैहिक आवश्यकता की पूर्ति करने में अपने का असहाय पाता है। दूसरी बार ‘अहम्’‘नैतिक चिंता’(moral anxiety)का अनुभव करता है जब वह ‘परम अहम्’से दण्ड का पूर्वानुमान करता है। और तीसरी कर,‘अहम्’‘वास्तविक चिंता’ (realistic anxiety) से बाह्य जगत के खतरों के कारण ग्रसित होता है।

इस प्रकार 'इदम् से चालित, परम अहम से सीमित, वास्तविकता से नकारित अहम् इन शक्तियों के मध्य तथा इनके उस पर प्रभावों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए संघर्षरत रहता है, तब हम समझ सकते हैं कि हम अपनी उस चीख को कई बार क्यों नहीं दबा पाते हैं जिसमें हम चिल्ला उठते हैं :जिन्दगी आसान नहीं है' । (फ्रायड, 1933,p.78)

1.6 शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications)

फ्रायड बीसवीं शताब्दी के महान चिंतकों में से एक थे। यह सत्य है। साथ ही यह भी सत्य है कि किसी अन्य मनोवैज्ञानिक की तुलना में फ्रायड की सर्वाधिक कटु आलोचना भी हुई है। आज के दिन भी कई विद्वान फ्रायड के विचारों को कलंकर /लज्जाजनक (Scandalous) मानते हैं।

फ्रायड के विचारों ने जीवन के कई क्षेत्रों यथा विधि व्यवसाय, कला, साहित्य, धर्म तथा शिक्षा को प्रभावित किया है। फ्रायड के शिक्षा सम्बन्धी विचार उतने अतिवादी नहीं हैं जितना कभी-कभी बताया जाता है। फ्रायड का विश्वास था सामाजिक व्यवस्थाएं कुछ मूलप्रवृतयात्मक व्यवहारों पर बलपूर्वक यथोचित नियन्त्रण का आग्रह अवश्य करेंगी। उन्होंने कहा था कि बच्चों को बाह्यजगत में जो कुछ वे करना चाहें करनेकी छूट नहीं दी जा सकती है। परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि अनुशासन सामान्यतया अतयधिक होता है, इससे बच्चे अपने शरीर से तथा उससे सम्बन्धित प्राकृतिक क्रियाओं से अनावश्यक रूप से शर्म और अपराध बोध का अनुभव करने लगते हैं। उनकीसंस्तुति थी कि काम-शिक्षा (sex education) प्रदान करनेका कार्य विद्यालय द्वारा किया जाना चाहिए जहाँ प्रकृति तथा जानवरों से सम्बन्धित पाठों द्वारा बच्चे प्रजनन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकें। इससे बच्चे अपने बारे में आवश्यक निष्कर्ष स्व्यं निकाल लेंगे। कुछ जोखिम भरे प्रयोगों को यदि छोड़ दियाजाए जो फ्रायड का प्रभाव शिक्षकों के विद्यार्थियों के प्रतिसामान्य दृष्टिकोंणों से परिलक्षित होता है ।विद्यार्थी के अवांछितव्यवहार को यन्यवत् अनुशासित करने के स्थान पर इस प्राकर के व्यवहारके सांवेगिक कारणों को समझने के प्रयत्न करना शिक्षकोंपर फ्रायड का प्रभाव माना जा सकता है। जब शिक्षक एक विद्यार्थी के जीवन पर गहराई से विचार करते हैं तो वे जान सकते हैं कि एक क्रोधित या चिड़चिड़ा बच्चा शिक्षक से गुस्से में नहीं है वरन् वह अपने घर/परिवार की किसी स्थिति जैसे माता या पिता से अवहेलना के कारण कुण्ठितहै।

शिक्षक यह भी जान सकते हैं कि किसी एक बच्चे का अत्यधिक शर्मीले होन का कारण बच्चे को कई वर्षों से वयस्कों की उपस्थिति में कमतरी का अहसास दिलाना रहा है। शिक्षक को यह भी पता चल सकता है कि आलसी किशोर वास्तव में काम (sex) के प्रतिया सामाजिक असफलता के प्रति अन्तहीन तरीके से विचारमग्न हो – या चिन्ता कर रहा है।

इस प्रकार की समस्याओं के समाधान में शिक्षक सदैव सफल नहीं भी हो सकते हैं या वे यह भी सोच सकते हैं कि इस सन्दर्भ में बच्चों से विचार-विमर्श करने में सावधानी बरती जानीचाहिए क्योंकिकुछ मामलों में विद्यार्थियों को गोपनीयता की आवश्यकता भी हो सकती है। लेकिन विद्यार्थियों को समझने की बात से शिक्षक को मदद मिल सकती है। इससे शिक्षकों के पास विद्यार्थियों की तुरन्त आलोचना करनेया उन्हें तुरन्त दण्डित करने के बजाय धैर्ययुक्त तथा उत्साहित करने वाली अभिवृत्ति निर्मित करने के लिए एक कारण मिल सकता है।

1.7 सारांश

मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक सिगमन्ड फ्रायड हैं। यह सिद्धान्त मानव मन की आन्तरिक अनुभुतियों (Feelings), आवेगों (impulses) तथा स्वप्न-चित्रों (Fantasies) को समझने का प्रयास है। सिगमंड फ्रायड का मानना था कि बच्चे के विकास की प्रत्येक अवस्था का सीधा संबंध विशिष्ट आवश्यकताओं और माँगों से होता है, प्रत्येक अवस्था शरीर के एक विशेष हिस्से पर आधारित होती है और सभी यौन आधारित होती हैं। फ्रायड ने मानव व्यवहार के लिए गतिशील और मनोसामाजिक स्पष्टीकरण दिया। उन्होंने विकास के मनो-यौन अवस्थाओं का संप्रत्यय दिया। फ्रायड का मानना था कि प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकता होती है और प्रत्येक अवस्था के दौरान उन आवश्यकताओं की संतुष्टि महत्वपूर्ण है।

फ्रायड के सिद्धान्त में 'सामान्य कामुक ऊर्जा' (general sexual energy) को 'लिबिडो' कहा गया है और शरीर के जिस हिस्से में यह ऊर्जा केन्द्रित होती है उसे कामोत्तेजक भाग (erogenous zone) कहा जाता है। शरीर का कोई भी हिस्सा कामोत्तेजक भाग बन सकता है लेकिन बाल्यावस्था में मुँह, गुदा तथा जननांग (the mouth, the anus, and the genital area) तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग हैं। बालक/बालिका की काम सम्बन्धी रूचियाँ इन कामोत्तेजक भागों में एक निश्चित अवस्था क्रम (specific stage sequence) से केन्द्रित रहती हैं। बच्चे की प्रथम काम सम्बन्धी रूचि 'मुँह' पर केन्द्रित रहती है। इसके बाद यह रूचि 'गुदा' केन्द्रित हो जाती है और अन्ततः 'जननांग' पर केन्द्रित होती है।

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
2. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
3. सिंह , अरूण कुमार (.2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

4. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
5. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra Vinod Pustak Mandir.

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास के मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
2. सिगमंड फ्रायड दके सिद्धांत के अनुसार मन के अभिकरणों का वर्णन कीजिए।
3.
4. निम्नलिखित की व्याख्या खोज करके लिखें-
    i. ओड़ीपस कॉम्पलेक्स
    ii. इलेक्ट्रा कॉम्पलेक्स
    iii. कास्ट्रोशन कॉप्लेक्स
    iv. पैनिस एन्वी

इकाई 2 - शिक्षण और अधिगम के सन्दर्भ में पियाजे के संज्ञानात्मक विकास स्तर सिद्धांत के माध्यम से विकास को समझना

Understanding 'Growing-up' through Piaget's Cognitive Development Stage Theory in the Context of Teaching and Learning

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का परिचय
2.4 संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया
2.5 पियाजे द्वारा वर्णित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ
2.6 संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का शिक्षकों के लिए निहितार्थ
2.7 पियाजे के सिद्धांत की सीमाएं
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

1950 के दशक में स्विस मनोवैज्ञानिक ज्याँ पियाजे ने एक मॉडल दिया जो संज्ञानात्मक विकास का एक स्तर सिद्धांत है। 1950 के दशक में दिया यह सिद्धांत आज भी मान्य है। पियाजे द्वारा दिया यह सिद्धांत विश्लेषणात्मक ना होकर समग्रतावादी है। पियाजे के अनुसार विकास की प्रक्रिया में व्यक्ति की बौद्धिक संरचना में परिवर्तन होता है और यह जीव की संरचना और वातावरण की संरचना के आपस में प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होता है। पियाजे ने अपने सिद्धांत में क्रमिक विकास की चार अवस्थाएं बताई हैं

जिनमें एक के पश्चात् दूसरे स्तर पर व्यक्ति जाता है और इस प्रकार उसका संज्ञानात्मक विकास होता है। प्रस्तुत अध्याय में बालक के शिक्षण और अधिगम के क्षेत्र में होने वाले विकास को पियाजे द्वारा दिए गए सिद्धांत के द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे।
2. पियाजे द्वारा दिए सिद्धांत के स्तरों को बता सकेंगे।
3. पियाजे द्वारा वर्णित पदों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं में कक्षा में दिए जाने वाले ज्ञान के स्वरुप की व्याख्या कर सकेंगे।
5. पियाजे द्वारा दिए सिद्धांत के अनुशंसाओं का वर्णन कर सकेंगे।
6. पियाजे द्वारा दिए सिद्धांत का शिक्षण के दौरान उपयोग कर सकेंगे।

2.3 संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का परिचय

1950 के दशक में स्विस मनोवैज्ञानिक ज्याँ पियाजे ने एक मॉडल दिया जो संज्ञानात्मक विकास या बौद्धिक विकास की अवस्थाओं से सम्बंधित है। ज्याँ पियाजे (1896-1980) द्वारा दिये गए इस सिद्धांत की वर्तमान समय में भी सबसे प्रभावशाली सिद्धांत के रूप में लिया जाता है। पियाजे की सिद्धांत इस आधारवाक्य पर आधारित है कि बालक एक वैज्ञानिक है। कम उम्र में बालक की वैज्ञानिक खोज उसकी संज्ञानात्मक क्षमताओं के कारण सीमित होती हैं क्योंकि उनमें विकास अभी तक होना होता है परन्तु हरेक अवस्था में बच्चे सक्रिय रूप से इस संसार को खोजने का प्रयास करते हैं।

पियाजे का यह सिद्धांत संज्ञानात्मक विकास का एक स्तर (क्रमिक) सिद्धांत है जो कि क्रमबद्ध स्तरों पर संयं में गुणात्मक परिवर्तनों को स्पष्ट करता है। यद्यपि बालक की निपुणता का विकास प्रत्येक स्तर पर उसके पिछले स्तर के आधार पर ही चित्रित होती है अर्थात जिस तरह का विकास पिछले स्तर पर हुआ है, नए स्तर का विकास उसी आधारशिला पर होता है अर्थात पिछले स्तर का विकास नए निपुणता के लिए के लिए आधारशिला का कार्य करती है। साथ ही ये विशेषतायें उन विशेषताओं से भिन्न होती हैं जो कि बालक के पिछले स्तर पर प्रदर्शित और प्रामाणित की हैं। अतः वे व्यक्ति जो इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं वे यह विश्वास करते हैं कि शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक ल्शाम्ताओं के विकास में अचानक अंकुरित होने वाले परिवर्तनों की अपेक्षा रखनी चाहिए न किंवारत और निर्बाध विकास की। पियाजे का सिद्धांत विस्तृत रूप से क्षेत्र प्रधान भी है जो इस बात ककी भविष्यवाणी करता है कि वे बच्चे जो एक क्षेत्र में संज्ञानात्मक विकास दिखाते हैं उन्हें तुल्निग्रूप से दूसरे क्षेत्रों में भी संज्ञानात्मक विकास को प्रकट करना चाहिए।

हालांकि बच्चे सभी क्षमताओं पर समान रूप से दक्षता प्राप्त करते प्रतीत नहीं होते। इसके लिए पियाजे प्रस्तावित करते हैं कि यद्यपि सभी क्षेत्रों में योग्यताये सामान्यतः साथ-साथ विकसित होती हैं फिर भी एक योग्यता का विस्तार विभिन्न क्षेत्रों में होने और इसके बाद इसका प्रदर्शन अन्य क्षेत्र में होने में समय लगता है। पियाजे इस संकल्पना को horizontal decalage का नाम देते हैं- प्रदर्शन के स्तरों पर अस्थायी अंतर जो कि एक बालक विभिन्न संज्ञानात्मक क्षेत्रों (cognitive domains) या गतिविधियों में किसी एक विकास के स्तर पर प्रदर्शित होता है। दूसरे शब्दों में विकास प्रायः क्षेत्र सामान्य होता है। एक बच्चा जिसमें गणित और भाषादोनों में तुलनीय स्तर पर प्रदर्शन करने की क्षमता है फिर भी इन दोनों में से किसी एक विषय में कुछ हद तक उस स्तर के प्रदर्शन में कुछ विलम्ब हो सकता है जब तक कि विकसित योग्यता पूरी तरह पकड़ नहीं बना लेती। अतः शिक्षक विद्यार्थियों से एक समय में कई क्षेत्रों में समान प्रदर्शन की अपेक्षा नहीं रख सकते जो भले ही समान संज्ञानात्मक स्तर पर उपस्थित होती है।

पियाजे के सिद्धांत में कुछ संकल्पनाएँ दी गयी हैं। यहाँ चार संकल्पनाएँ वर्णित की जाएँगी जो कि संज्ञानात्मक विकास की विशिष्ट प्रक्रिया हैं' वे हैं- अनुकूलन (adaptation), आत्मसात्करण (assimilation), समंजन/सामंजस्य (accomodation) और समतुल्यन (equilibration)।

अनुकूलन: मनोवैज्ञानिक संरचनाओं को व्यवस्थित करने की प्रवृत्ति के क्रम में बालक (वयस्क भी) का वातावरण के अनुसार मानसिक संरचना को रूपांतरित करने कि प्रवृति को प्राप्त करते हैं. दूसरे शब्दों में बालक और उसके वातावरण के मध्य चलने वाली यह परस्पर क्रिया के द्वारा प्राप्त समतुल्यन को पियाजे ने अनुकूलन का नाम दिया है। अनुकूलन कि प्रक्रिया में दो मूल प्रक्रियायें सम्मिलित रहती हैं- आत्मसातकरण और समंजन/सामंजस्य।

i. **आत्मसातकरण:** आत्मसातकरण तब होता है जब लोग अपनी मौजूदा बौद्धिक संरचना का प्रयोग संसार बाह्य जगत को समझने के लिए करते हैं। आत्मसातकरण में किसी नयी चीज़ को समझने का प्रयास पूर्व धारित ज्ञान के आधार पर किया जाता है। इसमें नयी सूचनाओं को मौजूदा बौद्धिक संरचना से जोड़ने का प्रयास किया जाता है।

ii. **समंजन:** समंजन तब प्रारंभ होता है जब व्यक्ति अपनी पूर्वधारित मानसिक पद्धति को नए वातावरण के साथ संतुलन स्थापित करने के लिए परिवर्तित करता है। यह नयी सूचनाओं के साथ मौजूदा मानसिक पद्धतियों में बदलाव या फिर नयी पद्धति के निर्माण से सम्बंधित है। व्यक्ति द्वारा अपनी बौद्धिक संरचना में वातावरण की आवश्यकता के अनुसार समायोजन या परिवर्तन करना समंजन है।

iii. **समतुल्यन:** पियाजे के अनुसार व्यवस्थीकरण, आत्मसातीकरण और समन्जीकरण को एक जटिल संतुलन स्थापित करने वाले कार्य के रूप में देखा जा सकता है। इस सिद्धांत में चिंतन में वास्तविक परिवर्तन समतुल्यन की प्रक्रिया से होती है। समतुल्यन उस क्रिया को कहते हैं जो संतुलन स्थापित करने करने का प्रयास करती है। यह आत्मसात्करण और समंजन की प्रक्रियाओं में संतुलन की स्थापना से सम्बंधित है।

अभ्यास प्रश्न

1. पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत कब दिया था?
2. अनुकूलन कि प्रक्रिया में किन दो मूल प्रक्रियायें सम्मिलित किया जाता है?

2.4 संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया

पियाजे के अनुसार वह मुख्य प्रक्रिया जिसके द्वारा संज्ञानात्मक विकास होता है, सामी धारण कहा जाता है जो कि संज्ञानात्मक संरचना में वातावरण की माँग के साथ संतुलन स्थापित करता है। बच्चे जैसे बाह्य जगत के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं, तब वे नयी स्थितियों को अपनी पूर्ववधारित धारणाओं, विचारों जो बाह्य जगत के विषय में होती है या यह बाह्य जगत उसके अनुसार जैसा होना चाहिए , उसके समान नहीं पाते हैं तो संज्ञानात्मक संरचना में असंतुलन हो जाता है और वह फिर बौद्धिक संरचना में संतुलन लाने का प्रयास करता है। नवीन ज्ञान की प्राप्ति इसी बौद्धिक संतुलन, असंतुलन और पुनः संतुलन की प्रक्रिया है। जैसे- एक वयस्क उस जीव के लिए बिल्ली शब्द का प्रयोग करता है जिसे बच्चा कुत्ता समझता है। क्योंकि वयस्क की पूर्व धारणाओं से वह जीव बिल्ली से मिलता है जबकि बच्चे की धारणाओं में वह विशेषता कुत्ते की होती है। यहाँ वयस्क द्वारा बिल्ली बताने पर बौद्धिक संरचना में असंतुलन हो जाता है परन्तु वयस्क के अनुकरण के माध्यम से आत्मसातीकरण करते हुए बच्चा संतुलन का प्रयास करता है और अपनी बौद्धिक संरचना में बिल्ली की विशेषतायें आत्मसात करते हुए पुनः संतुलन स्थापित करता है। हर नए ज्ञान के लिए यही क्रम चलता है।

अभ्यास प्रश्न

3. नवीन ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार होती है ?

2.5 पियाजे द्वारा वर्णित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ

पियाजे ने अपने सिद्धांत में संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ दी हैं (तालिका संख्या. 1)।

तालिका संख्या 1

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के स्तर

स्तर	**अनुमानित आयु**
संवेदी पेशीय अवस्था	0-2 वर्ष
पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था	2-7 वर्ष
मूर्त- संक्रियात्मक अवस्था	7-11 वर्ष
औपचारिक-संक्रियात्मक अवस्था	11 वर्ष से वयस्क होने तक

1. **संवेदी पेशीय अवस्था (0-2 वर्ष):** संवेदी पेशीय अवस्था शैशावाकालीन अवस्था है जो जन्म के साथ ही प्रारंभ होकर 2 वर्ष तक कि आयु से तक रहती है. जन्म के पश्चात् शिशु की कुछ सहज क्रियाएं होती हैं और उन क्रियाओं की एक क्रिया प्रणाली होती है. यह उन सहज क्रियाओं से प्रारंभ होकर वातावरण में आने वाली नयी चीजों के साथ जटिल क्रियाओं की और बढती है. दैनिक जीवन में हम सभी के समक्ष प्रतिदिन कुछ नयी परिस्थितियां आती रहती हैं. जन्म के पश्चात् बालक के लिए नयी परिस्थितियों की आवृति कुछ अधिक ही होती है क्योंकि वातावरण के साथ उनकी पारस्परिक क्रियायें अभी कम ही हुई रहती हैं. अतः बालक का मस्तिष्क वातावरण में कई नयी स्थितियों का सामना करता है और इस परस्पर प्रक्रिया के साथ बालक का संज्ञानात्मक विकास शैशवावस्था में होने लगता है. इस अवस्था के प्रारंभ में वस्तु स्थायित्व नहीं रहता है. इस अवस्था में out of sight, out of mind की स्थिति रहती है अर्थात जिस वस्तु को बालक देख नहीं पाता या जिस वस्तु को बालक के सामने से हटा लिया जाता है वह वस्तु उसके लिए अस्तित्व नहीं रखती है. शिशु प्रत्यक्ष में जिन वस्तुओं को देख पता है उन्हीं के प्रति अपने व्यवहार का प्रदर्शन कर पता है. उदाहरंस्वरूप यदि एक शिशु को कोई खिलौना दिखाया जाता है तो वह उस खिलौने के लिए चेष्टा करता है परन्तु वह खिलौना छिपा दिया जाए तो शिशु की कोई प्रतिक्रिया या चेष्टा उस खिलौने के लिए नहीं होती है क्योंकि वह खिलौना अब उसके लिए अस्तित्व नहीं रखता है. इस अवस्था में शिशु का schema इस रूप में विकसित नहीं होता कि वह प्रत्यक्षीकरण क्षेत्र से बाहर की वस्तुओं के प्रति अपनी बौधिक क्षमता का प्रदर्शन करे. परन्तु संवेदी पेशीय अवस्था के उत्तरार्ध में बालक में वस्तु स्थायित्व का विकास हो जाता है और वह प्रत्यक्षीकरण सीमा के बाहर के वस्तुओं के लिए भी चेष्टा करता है. उदाहरंतः: यदि डेढ़ साल के बच्चे का कोई खिलौना यदि छिपा दिया जाए तो बालक उस खिलौने के लिए चेष्टा करता है, रोता है.

   इस अवस्था के प्रारंभिक समयमे शिशु में कार्य-कारण सम्बन्ध,स्थान,समय,व्यवहार आदि संप्रत्ययों का अभाव होता है. उदाहरणतः शिशु दिन-रात या सुबह-शाम का संप्रत्यय नहीं समझ पता,उसमें भेद नहीं कर पाता परन्तु अवस्था के बढ़ने के साथ ही यह सभी संप्रत्यय उसमें विकसित होने लगते हैं और यह उसके व्यवहार से परिलक्षित होते हैं.

2. **पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (2-7 वर्ष):** पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था की अवधि दो से सात वर्ष की आयु तक होती है. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था को दो अवस्थाओं में बांटा जा सकता है. प्रथम,पूर्व सम्प्रत्यात्मक विचार अवस्था जो 2-4 वर्ष तक चलती है और द्वितीय अन्तः:प्रज्ञात्मक विचार अवस्था जिसका काल 4-7 वर्ष तक होता है। इसमें पहली अवस्था पूर्व बाल्यावस्था से सम्बंधित है और दूसरी अवस्था बाल्यावस्था से सम्बंधित है। संवेदी पेशीय अवस्था का अंत होते-होते बालक कई सारे क्रियाशील पद्धतियों का प्रयोग करने लगता है। जब तक यह सभी पद्धतियाँ (schemes) शारीरिक क्रियाओं के साथ जुड़ी होती हैं तब तक बालक उनसे वह

अतीत को दोहराने, सूचनाओं को खोजने और और योजनाओं को काम में नहीं ले पाता है। इसके लिए बच्चों को उन क्रियाओं की आवश्यकता होती है जो शारीरिक के स्थान पर मानसिक रूप से निष्पादित और आरक्षित की जाती हैं और इसे पियाजे ने संक्रिया का नाम दिया है। संवेदी पेशीय अवस्था के बाद की इस अवस्था को इसलिए पूर्व संक्रियात्मक अवस्था कहा जाता है क्योंकि बच्चे इस अवस्था में विभिन्न मानसिक क्रियाओं में प्रवीणता अभी उन्हें प्राप्त नहीं हुई होती है बल्कि निपुणता प्राप्त करने की स्थिति में अग्रसर होते हैं।

चित्र संख्या-1

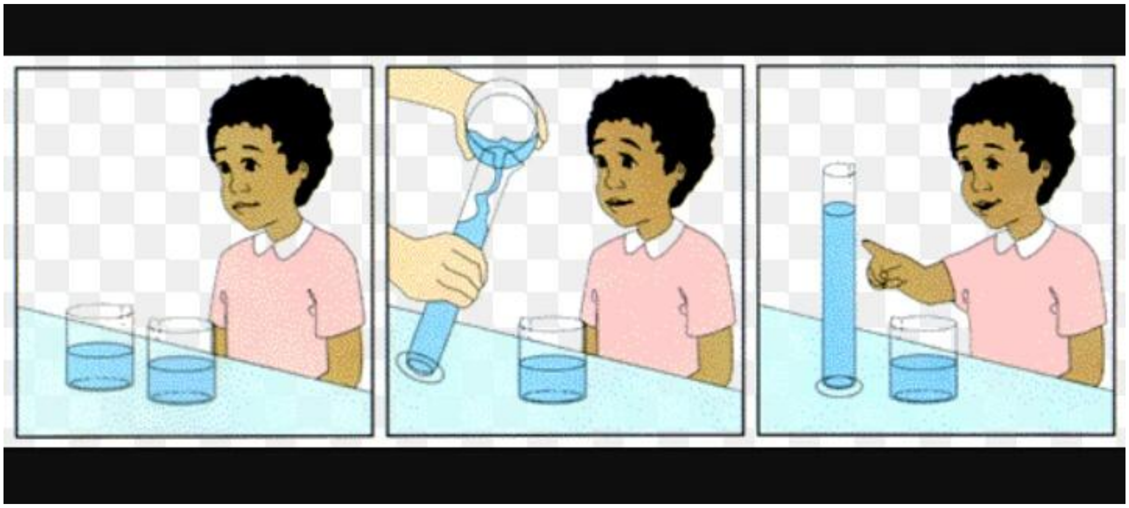

पियाजे द्वारा वर्णित संरक्षण कार्य

(i) **पूर्व सम्प्रत्यात्मक विचार अवस्था (2-4 वर्ष):** यह वह अवस्था है जिसमें बालक खेल कक्षाओं या किंडरगार्टन कक्षाओं में जाना शुरू करता है। इस विशेष अवस्था में बालक के अन्दर भाषा का विकास होने लगता है। हालांकि इसकी शुरुआत इसके पहले की अवस्था में ही हो जाती है परन्तु इस अवस्था के पूर्व तक बालक कुछ शब्दों को ही बोल पाता है अथवा बिमा व्याकरण वाली भाषा का प्रयोग करता है। भाषा का विकास होने के परिणामस्वरूप बाह्य वातावरण में आने वाली वस्तुयें बालक के मस्तिष्क में प्रतीकात्मक स्वरुप ग्रहण करने लगती हैं। इस अवस्था की विशेष विशेषताओं में एक यह है कि बालक विशिष्ट सामान्य संप्रत्ययों में अन्तर स्थापित नहीं कर पाता है। इस अवस्था की विशेषता यह है कि इसमें बालक के अन्दर संरक्षण की संकल्पना विकसित नहीं हुई होती है। संरक्षण का आशय है कि यदि वस्तु के आकार या आकृति में परिवर्तन कर दिया जाए और इसमे कुछ भी जोड़ा या घटाया ना जाए तो इसकी मात्रा या संख्या में अंतर नहीं आता है। इस अवस्था के बच्चे के सामने यदि दो बराबर आकार के ग्लास में समान मात्रा में कोई द्रव हो (चित्र संख्या-1) और एक ग्लास के द्रव को किसी संकरे बर्तन में उड़ेल दिया जाए तो बालक संकरे बर्तन वाले द्रव को अधिक बताएगा। इसके साथ ही

प्रतिकुलन के संप्रत्यय का भी विकास नहीं हुआ रहता है। यदि बालक को समझाया जाए कि अ=ब है तो यह समझ नहीं पाते कि ब=अ होगा।

(ii) **अन्तः प्रज्ञात्मक विचार अवस्था (4-7 वर्ष):** इस अवस्था में बालक प्रारंभिक वर्षों में होता है। इस अवस्था में बालक पूर्व सम्प्रत्यात्मक विचार अवस्था से अन्तः प्रज्ञात्मक विचार अवस्था में आ जाता है। इस अवस्था में बालक में वह तर्क क्षमता उत्पन्न हो जाती है जो संरक्षण से सम्बंधित है। अब बालक समझने लगता है कि यदि दो समान ग्लास हैं और एक ग्लास के द्रव को किसी संकरे बर्तन में उड़ेल दिया जा रहा है तो द्रव की मात्रा उतनी ही रहेगी। इस अवस्था में संरक्षण के साथ ही घटनाओं की तारतम्यता समझने लगता है। पर अभी भी बालक के निष्कर्ष तर्क पर आधारित न हिकार अन्तःप्रज्ञा पर आधारित होते हैं। इस अवस्था में बालक के अन्दर अहमकेन्द्रितता तथा जीवत्वारोपितता की प्रमुखता होती है। बालक किसी भी चीज़ को अपने दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करता है। वह यह नही मानता कि किसी अन्य का कोई और दृष्टिकोण भी हो सकता है। जिसे वह सही समझता है उसे अन्य या पूरी दुनिया वैसा ही समझती है। यही अहमकेन्द्रितता है जो बाद में वयस्कों और अपने समूह क्र बच्चों के साथ परस्पर क्रिया के फलस्वरूप कम होती जाती है। जीवत्वारोपितता में बालक मानता है कि हर गति करती वस्तु में जीवन होता है। वह सूर्य, चाँद, कार बस इत्यादि में मानता है कि जीवन होता है।

3. **मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (7-11 वर्ष):** बच्चों में इस अवस्था को मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के नाम से भी जानते हैं। पियाजे ने 'मूर्त संक्रिया' पद को व्यावहारिक और क्रियाशील चिंतन वाले इस स्तर की व्याख्या के लिए प्रतिपादित किया। इस स्तर की मूल विशेषताओं में से एक भौतिक संसार की तार्किक स्थिरता की पहचान है अर्थात किसी भी वस्तु का रूप/या तत्वों का रूप बदला जात है तो उनकी कई विशेषताएं उसी रूप में रहती हैं और इस स्थिति में उनके पहले रूप की पुनर्प्राप्ति संभव है। सरल शब्दों में देखा जाए तो इस अवस्था में बच्चों में यह समझ विकसित हो जाती है कि कुछ स्थितियों में किसी वस्तु की मूल विशेषताएं संरक्षित रहती हैं और वस्तु का रूप परिवर्तन करके पुनः उस रूप में प्राप्त किया जा सकता है। पियाजे के अनुसार किसी बच्चे की संरक्षण पर आधारित समस्या को समाधान कर सकने की योग्यता

तार्किकता के तीन मूल पहलूओं की समझ पर आधारित है; पहली- पहचान या समस्या के साथ तादात्म्य स्थापित करना, दूसरी क्षतिपूरण और तीसरी प्रतिवर्त्यता। समस्या की पहचान में प्रवीणता के पश्चात् विद्यार्थी यह जानता है कि यदि किसी चीज़ में कुछ जोड़ा या घटाया नहीं जाता है तो वह चीज़ उतनी ही रहती है। क्षतिपूरण की समझ विकसित होने के बाद विद्यार्थी जानता है एक दिशा में एक स्पष्ट परिवर्तन का क्षतिपूरण उसी की दूसरी दिशा में परिवर्तन करके किया जा सकता है। वह इस प्रकार की यदि कोई द्रव किसी ग्लास से दूसरे ग्लास में डाला जा रहा है और वह पिछले ग्लास की तुलना में ज्यादा ऊपर तक आ रहा है इसका अर्थ है कि दूसरा ग्लास पहले ग्लास की तुलना में संकरा है (चित्र संख्या-1)। तीसरी संकल्पना प्रतिवर्त्यता है

जिसकी समझ उत्पन्न होने के बाद विद्यार्थी हुए परिवर्तन को अपने मानसिक स्तर पर ही निरस्त कर सकते हैं । एक अन्य संक्रिया जिसमें इस अवस्था के बच्चे दक्षता प्राप्त करते हैं, वह वर्गीकरण की संकल्पना है । वर्गीकरण का अर्थ है किसी एक विशेषता के आधार पर समूह में सम्मिलित वस्तुओं को बांटना । अर्थात बच्चे किसी समूह में एक वस्तु की विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित करते हैं और उस समूह की प्रत्येक वस्तु को उनकी विशेषता के आधार पर अलग-अलग समूहों में विभाजित कर सकने की योग्यता अर्जित कर लेते हैं । जैसे एक समूह में 15 वस्तुएं हैं जो गोल, त्रिकोण और घन के आकार की हैं साथ ही वह लाल, नीले और पीले रंग की हैं । रंग और आकार के कोई सम्बन्ध नहीं है तो अब बच्चों से जब उन्हें समूह में विभाजित करने को कहा जाता है तो वह आकृति के आधार पर या रंग के आधार पर वर्गीकरण करते हुए समूह बना सकता है। यह उस बच्चे पर निर्भर है कि उसने आकृति सम्बन्धी विशेषता को देखते हुए वर्गीकृत किया है अथवा रंग सम्बन्धी विशेषता के आधार पर । इस स्तर पर वर्गीकरण के विषय में यह भी समझ आ जाती है एक वर्ग दूसरे वर्ग में आ सकता है । वर्गीकरण परिवर्त्यता से भी सम्बंधित है । जैसे एक लाल रंग का वृत्त रंग के आधार पर लाल रंग के घनाभ के साथ जा सकता है या एक वृत्त होने कि गुण के कारण पीले रंग के वृत्त के साथ हो सकता है । इसके साथ ही यह । हर एक वर्ग दूसरे वर्ग में समाहित होता है । क्रमिकरण (Seriation)वह प्रक्रिया है जिसमें बड़े से छोटे या इसके विपरीत व्यस्थापन को सुव्यवस्थित किया जाता है जैसे 1,2,3, 4,5 या इसके विपरीत 5,4,3,2,1 । पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के विपरीत मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में यह धारणा समझ में आ जाती है कि अ ब से बड़ा हो सकता है और स से छोटा हो सकता है।

विद्यार्थी संबंधों के साथ-साथ संबंधों के पदानुक्रम को समझने लगता है । जैसे- सांप-सरीसृप-जीवधारी।

तो इस अवस्था में विद्यार्थी संरक्षण, वर्गीकरण और क्रमिकरण जैसे संक्रियाओं को करना सीख जाता है । मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में विद्यार्थी चिंतन की पूर्ण और तार्किक क्रमबद्धता को विकसित कर लेता है । यह चिंतन की प्रणाली फिर भी भौतिक सच्चाई से जुड़ी हुई है । यह तार्किकता मूर्त परिस्थितियों पर आधारित है जो व्यवस्थित, वर्गीकृत और जोड़-तोड़ से सम्बंधित है । इस अवस्था का बालक फिर भी अमूर्त, परिकल्पनीय समस्याओं और संकल्पनाओं पर तर्क करने में असमर्थ होते हैं।

4. **औपचारिक-संक्रियात्मक अवस्था (11 वर्ष से वयस्क होने तक):** औपचारिक-संक्रियात्मक अवस्था में बालक 11वर्ष से लेकर परिपक्व होने तक रहता है. भारत समेत अन्य देशों में भी यह वह अवस्था होती है जब विद्यार्थी अपनी जूनियर या सीनियर हाई स्कूल की कक्षाओं में होते हैं. ११ वर्ष की अवस्था में बच्चेकक्षा 6-7 में प्रवेश करते हैं और इस अवस्था का अंत होते-होते वह हाई स्कूल में या सीनियर सेकेंडरी कक्षाओं में होते हैं.

परन्तु कुछ बच्चे अपने विद्यालयी जीवन के पूरे समय तक मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में ही रहते हैं और कई बार तो यह भी होता है कि सम्पूर्ण जीवन काल में वह इसी अवस्था में रहते

हैं, औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था में नहीं जा पाते हैं. हालांकि विद्यालय में विद्यार्थियों को कुछ नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं जिनका समाधान करने में विद्यार्थी ठोस या मूर्त संक्रियाओं को प्रयुक्त करते हुए नहीं कर सकते हैं, और ऐसा करते हुए वे अन्तोगत्वा असफल रहते हैं. प्रयोगशाला में प्रयोगों के दौरान जब एक वक़्त पर जब कई सारे चर एक साथ परस्पर क्रिया करते हैं तो क्या होता है, ऐसी स्थिति में कुछ नियंत्रित चर और कुछ कार्यरत और कुछ प्रयोगात्मक चरों के समूह को हेरफेर करते हुए संचालित किया जाता है ताकि संभावित परिणाम प्राप्त हो सकें. पियाजे ने इसी प्रकार की मानसिक संक्रिया को औपचारिक संक्रिया का नाम दिया है.

औपचारिक संक्रियात्मक स्तर पर पूर्व की सभी संक्रियायें और क्षमतायें पूर्ण शक्ति एवं वेग में जारी रहती हैं. व्यक्ति में आतंरिक, परिवर्तनीय और संगठित औपचारिक चिंतन चलता है. व्यक्ति में यह योग्यता विकसित हो जाति है कि वह “क्या है” से “क्या हो सकता है” के विषय में चिंतन कर सकता है. विद्यार्थी उन स्थितियों के बारे में भी चिंतन कर सकता है जिसे उसने अपने वास्तविक जीवन में महसूस नहीं किया हुआ हो. एक उदाहरण के रूप में इन कक्षाओं में कुछ निबंध पूछे जाते हैं जैसे “यदि मैं प्रधानमंत्री बन जाऊं तो” या “यदि मैं कलम होता तो”. इन चीजों को विद्यार्थी अपने वास्तविक जीवन में कभी अनुभव नहीं किया होता है पर इस अवस्था में यदि उससे इन विषयों परनिबंध लिखने को कहा जाए तो विद्यार्थी कल्पना करते हुए इन विषयों पर निबंध लिख सकता है. यही निबंध वे विद्यार्थिनाही लिख सकते जो मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में हैं. विद्यार्थी इन चीजों के लिए परिकल्पनीय-निगमनात्मक-तर्कशक्ति का प्रयोग करने लगते हैं. उनके अन्दर अमूर्त चिंतन की योग्यता विकसित हो जाति है. यदि किसी छोटे बच्चे से प्रश्न किया जाए कि यदि सूर्य निकलना बंद हो जाए तो क्या होगा?उस छोटे बच्चे का यही उत्तर होगा कि तब हमेशा रात रहेगी. परन्तु यही प्रश्न जब ऐसे विद्यार्थी से किया जाए जो इस अवस्था में प्रवेश कर चुका है तो वह सूर्य न निकलने के बाद होने वाले सारे परिणामों पर विचार करेगा जैसे- प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बंद हो जाएगी, ऑक्सीजन नहीं बन पाएगा, ठंढ बढती जाएगी, वाष्पोत्सर्जन एवं वाष्पीकरण बंद हो जाएगा,बारिश बंद हो जाएगी और अंततः पृथ्वी से जीवन ख़त्म हो जाएगा. औपचारिक चिन्तक एक परिकल्पनीय स्थिति और उसके बाद उसके परिणामों को निगमनात्मक रूप से समझ सकते हैं. सिर्फ निगानात्मक ही नहीं बल्कि इस अवस्था के विद्यार्थी आगमनात्मक रूप से भी चिंतन कर सकते हैं या किसी विशिष्ट वस्तु से सामान्य नियमों का बोध कर सकते हैं.

परिकल्पित रूप से सोच पाने की योग्यता विकल्पों पर विचार करती है और सभी संभावित संयोगों की पहचान करती है और स्वयं के विचारों का विश्लेषण करती है। किशोरावस्था में विद्यार्थी उन चीजों के विषय में भी परिकल्पना कर लेते हैं जो वास्तव में है ही नहीं। इस अवस्था की एक और विशेषता किशोर अहमकेंद्रण है जो पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के अहमकेंद्रण से काफी अलग होती है। पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के बच्चों की तरह किशोर यह मानाने से इंकार

नहीं कर देते कि किसी अन्य का अल्स्ग दृष्टिकोण, अलग मान्यता या अलग विश्वास हो सकता है बल्कि किशोर अपने विचारों पर बहुत अधिक ध्यान देते हैं और केन्द्रित होते हैं। वे अपनी अभिवृत्ति और विश्वास को विश्लेषित करते हैं। उनकी एक श्रोता समूह या दर्शक वर्ग की एक कल्पना होती है और उन्हें लगता है कि सब उन्हें सुन रहे हैं और देख रहे हैं। जैसे उन्हें लगता है कि कक्षा में उसका उत्तर सही नहीं था जिसके लिए कक्षा के सभी विद्यार्थी मुझे बेवकूफ समझ रहे हैं या मैं आज देखने में अच्छी नहीं लग रही जिससे सब मुझे अजीब सी नज़रों से देख तहे हैं या इसके विपरीत भी।

अभ्यास प्रश्न

4. संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ कौन कौन सी हैं?
5. संवेदी पेशीय अवस्था कब से कब तक रहती है ?
6. जीवत्वारोपितता क्या है?

2.6 संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का शिक्षकों के लिए निहितार्थ

उपर्युक्त चार स्तरों के वर्णन के साथ यह प्रश्न उठता है कि क्या हम सभी चौथे स्तर तक पहुँचते हैं?हमने अभी-अभी इस बात का अध्ययन किया कि अधिकांश मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि सोच का स्तर मूर्त संक्रियात्मक के स्थान पर गूढ़ या जटिल होता है. पर जब प्रश्न यह है कि सार्वभौमिक औपचारिक संक्रियात्मक सोच कैसी है यहाँ तक कि वयस्कों में यह किस प्रकार की है तो यह वाद-विवाद का विषय है. Neimark (1975) के अनुसार पियाजे के सिद्धांत के प्रथम तीन स्तर अधिकांश लोगों में भौतिक वास्तविकताओं (बाह्य वातावरण) के द्वारा व्यक्ति में उदभिद होते हैं वहीँ पर औपचारिक संक्रियायें उतनी नजदीकी तरह से भौतिक वातावरण पर निर्भर नहीं करती हैं. ये अनुभवों का उत्पाद हैं।

पियाजे ने भी यह सुझाव दिया है कि अधिकांश वयस्क कुछ ही क्षेत्रों में अपने औपचारिक संक्रियात्मक विचारों को प्रयोग में ला पाते हैं और ये वह क्षेत्र हैं जो उनके रूचि से सम्बंधित होते हैं या फिर जहाँ उन्हें अच्छा अनुभव प्राप्त होता है. अनुभव या रूचि क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जब समस्या उत्पन्न होती है तो ऐसी स्थिति में वे औपचारिक संक्रियात्मक विचारों को प्रयुक्त करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं. अतः एक शिक्षक के रूप में जब आप अपनी कक्षाओं में जायें तो हर एक विद्यार्थी से अपने द्वारा दी गयी समस्याओं पर वे परिकल्पित रूप से विचार कर सकेंगे यह उम्मीद न करें.

पियाजे ने अपने सिद्धांत में किसी प्रकार की कोई अनुशंसा नहीं की है. वह बच्चों के चिंतन को समझने पर ज्यादा ध्यान दिया है. हालांकि उन्होंने शिक्षा के दर्शन से सम्बंधित कुछ सामान्य विचारों पर बल दिया है। उनका विश्वास था कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चों को यह सीखना होना चाहिए कि वो किस प्रकार सीख सकते हैं और शिक्षा को विद्यार्थियों को सीखने की तरफ प्रेरित करना चाहिए न कि कही बातों को भरना चाहिए। यद्यपि पियाजे ने अपने विचारों के आधार पर कोई शिक्षण विधि या शिक्षण कार्यक्रम नहीं

दिया है पर उनके अनुनाईयों में से कई ने इसे प्रस्तावित किया है। पियाजे का इस दिशा में योगदान बहुत अधिक है कि उन्होंने यह समझाया है कि बच्चे ध्यानपूर्वक सुनकर कैसे चिंतन कर सकते हैं या ध्यानपूर्वक अवलोकन से किस प्रकार समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। पियाजे के सिद्धांत के निहितार्थ निम्नवत है।

- एक शिक्षक के रूप में कक्षा में आपको कई प्रकार के विद्यार्थी मिलेंगे। एक विद्यार्थी स्वयं में भी अपने संज्ञानात्मक विकास और विषय ज्ञान में काफी अलग होगा। एक शिक्षक के रूप में यह जानना आवश्यक हैं कि ऐसा उसके चिंतन योग्यताओं की कमी के कारन है या फिर उसे सामान्य तथ्य ही नहीं पता हैं। इसके लिए शिक्षक को छात्रों को तब ध्यान से देखना चाहिए कि वह किस प्रकार से समस्या को समाधानित करने का प्रयास कर रहे हैं। वह किसी एक पहलु पर ध्यान दे रहे हैं या फिर पूरी समस्या पर, किस प्रकार की तार्किकता का प्रयोग कर रहे हैं, वह वास्तव में समस्या समाधान का प्रयास कर रहे हैं या दिखावा कर रहे हैं इत्यादि। इसके साथ पियाजे के सिद्धांत की मुख्य अनुशंसा बौद्धिक असंतुलन से सम्बंधित है। तो उनकी मानसिक स्तर के अनुसार नए विषयों को उनके समक्ष लाकर बौद्धिक असंतुलन लाना चाहिए जिससे वे संतुलन स्थापित करने हेतु परिवर्तन करेंगे।
- पियाजे की यह भी अनुशंसा है कि विद्यार्थी स्वयं अपनी समझ का निर्माण करें। सीखना एक रचनात्मक प्रक्रिया है। इसमें केवल भौतिक रूप से हेर-फेर कर के ही ना सीखाया जाए बल्कि मानसिक हेर-फेर भी किया जाए। इसके लिए योजनाओं और प्रयोगों का सहारा लिया जा सकता है।
- इसके साथ ही विद्यार्थी अपने शिक्षक और कक्षा के अन्य विद्यार्थियों से भी किसी समस्या के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करें क्योंकि इसके द्वारा उनके विचारों को चुनौती दी जा सकते है, विचारों का मूल्याङ्कन हो सकता है और इस प्रकार वह एक पृष्ठपोषण प्राप्त कर सकते हैं।
- खेल का उपयोग बच्चों को सीखने में बहुत उपयोगी है। जो भी हम सीखते हैं उसमे अनुकरण का बहुत बड़ा योगदान होता है और मष्तिष्क के विकास में भी खेल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ऐसे में खेल हर एक आयु में अनुकरण की ओर प्रेरित करता है। इस हेतु हर एक आयु में उनकी मानसिक योग्यता के अनुसार खेल की प्रकृति होनी चाहिए।
- बच्चों को दिए जाने वाले निर्देश स्पष्ट होने चाहिए जिससे वह यह समझ सकें कि उनसे क्या अपेक्षाएं हैं और तब वह उसी प्रकार से कार्य का निष्पादन करेंगे।
- विद्यार्थियों का शिक्षण उनकी आयु के अनुसार होनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

7. खेल सीखने हेतु किस प्रकार उपयोगी है?

2.7 पियाजे के सिद्धांत की सीमाएं

- पियाजे के सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि अपने सिद्धांत में पियाजे ने बालक के संज्ञानात्मक विकास में उसकी संस्कृति और सामाजिक समूह या वर्ग जिसमें वह रहता है को नज़रअंदाज़ किया है जबकि ये दोनों बालक के संज्ञानात्मक विकास के हर एक स्तर को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं. जैसे एक समाज जो तकनीकी और वैज्ञानिक रूप से समर्थ है उस समाज के बच्चे वैज्ञानिक एवं औपचारिक संक्रियाओं में उन बच्चों से बेहतर होंगे जो इसके विपरीत समाज में रहते हैं क्योंकि उन बच्चों को तुलनात्मक रूप से ऐसा वातावरण ही नहीं मिला है जिसमें उनका संज्ञानात्मक विकास उस स्तर तक इस दिशा में हो सके। यदि हम अपने देश के सन्दर्भ में ही देखें तो बालक के विकास पर उसके निवास क्षेत्र का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। शहरी क्षेत्र में रहने वाले बच्चे का ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों की तुलना में वैज्ञानिक चिंतन और तकनीकी के क्षेत्र में विकास अधिक तेज़ी से होता है।
- कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन के चार पृथक स्तरों पर प्रश्नचिह्न लगाया है यद्यपि वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि जैसा पियाजे ने वर्णित किया है उन परिवर्तनों से बच्चे गुजरते हैं. स्तर मॉडल प्रतिमान से साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि बच्चों के द्वारा किए जाने वाले चिंतन में सात्यता या संगतता का अभाव है। यहाँ विचार योग्य बात यह है कि हमें पियाजे द्वारा बाद के समय में किए गए कार्य को ध्यानगत रखना चाहिए जहाँ पियाजे ने स्वयं ही संज्ञानात्मक विकास के चरणों पर कम बल दिया है और समतुल्यन के द्वारा चिंतन में किस तरह परिवर्तन आता है पर ज्यादा ध्यान दिया है.
- एक आलोचना पियाजे के सिद्धांत की यह है कि उन्होंने बच्चों के संज्ञात्मक विकास को कम कर के आँका है, विशेषकर छोटे बच्चों को. अपने प्रयोग के दौरान उन्होंने छोटे बच्चों को जो समस्याएं दी वह बहुत ही कठिन थीं और साथ ही निर्देश भी बहुत उलझनपूर्ण या अस्पष्ट था. उनके प्रतिक्रियादाता जैसा उन्होंने इन समस्याओं में प्रदर्शित किया उससे बेहतर समझ सकते थे. बाद के मनोवैज्ञानिकों के द्वारा किए गए प्रयोगों से यह बात स्पष्ट भी होती है. यदि कोई विषय उस बच्चे का विशेषज्ञता का क्षेत्र हो तो किसी वयस्क की तुलना में वह बच्चा बेहतर प्रदर्शन करेगा।

अभ्यास प्रश्न

8. तकनीकी और वैज्ञानिक चिंतन के क्षेत्र में ग्रामीण बच्चों की तुलना में शहरी बच्चों का विकास क्यों तीव्र गति से होता है ?
9. पियाजे द्वारा दिए गए संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत की दो सीमाएं बताएं।

2.8 सारांश

1950 के दशक में स्विस मनोवैज्ञानिक ज्याँ पियाजे ने एक मॉडल दिया जो संज्ञानात्मक विकास या बौद्धिक विकास की अवस्थाओं से सम्बंधित है। ज्याँ पियाजे (1896-1980) द्वारा दिये गए इस सिद्धांत की वर्तमान समय में भी सबसे प्रभावशाली सिद्धांत के रूप में लिया जाता है। पियाजे की सिद्धांत इस आधारवाक्य पर आधारित है कि बालक एक वैज्ञानिक है। कम उम्र में बालक की वैज्ञानिक खोज उसकी संज्ञानात्मक क्षमताओं के कारण सीमित होती हैं क्योंकि उनमें विकास अभी तक होना होता है परन्तु हरेक अवस्था में बच्चे सक्रिय रूप से इस संसार को खोजने का प्रयास करते हैं।

पियाजे का यह सिद्धांत संज्ञानात्मक विकास का एक स्तर (क्रमिक) सिद्धांत है जो कि क्रमबद्ध स्तरों पर संयं में गुणात्मक परिवर्तनों को स्पष्ट करता है। यद्यपि बालक की निपुणता का विकास प्रत्येक स्तर पर उसके पिछले स्तर के आधार पर ही चित्रित होती है अर्थात जिस तरह का विकास पिछले स्तर पर हुआ है, नए स्तर का विकास उसी आधारशिला पर होता है अर्थात पिछले स्तर का विकास नए निपुणता के लिए के लिए आधारशिला का कार्य करती है। साथ ही ये विशेषतायें उन विशेषताओं से भिन्न होती हैं जो कि बालक के पिछले स्तर पर प्रदर्शित और प्रामाणित की हैं। पियाजे का सिद्धांत विस्तृत रूप से क्षेत्र प्रधान भी है जो इस बात ककी भविष्यवाणी करता है कि वे बच्चे जो एक क्षेत्र में संज्ञानात्मक विकास दिखाते हैं उन्हें तुल्निग्रूप से दूसरे क्षेत्रों में भी संज्ञानात्मक विकास को प्रकट करना चाहिए।

जहाँ तक इस सिद्धांत की बात है तो यह सिद्धांत कुछ सन्दर्भो में अपूर्ण है और कुछ सन्दर्भो में इसे अपूर्ण दर्शाया गया है। अपनी कमियों के बावजूद यह सबसे पूर्ण सिद्धांत है। यह सिद्धांत विद्यार्थी में संरचनात्मकता से सम्बंधित है जिसे आज प्रत्येक कक्षा में लेन का प्रयास किया जाता है।

2.9 शब्दावली

1. **अनुकूलन-**बालक और उसके वातावरण के मध्य चलने वाली यह परस्पर क्रिया के द्वारा प्राप्त समतुल्यन को पियाजे ने अनुकूलन का नाम दिया है।
2. **आत्मसातकरण-**आत्मसातकरण तब होता है जब लोग अपनी मौजूदा बौद्धिक संरचना का प्रयोग संसार बाह्य जगत को समझने के लिए करते हैं। आत्मसातकरण में किसी नयी चीज़ को समझने का प्रयास पूर्व धारित ज्ञान के आधार पर किया जाता है। इसमें नयी सूचनाओं को मौजूदा बौद्धिक संरचना से जोड़ने का प्रयास किया जाता है।
3. **समंजन-**समंजन तब प्रारंभ होता है जब व्यक्ति अपनी पूर्वधारित मानसिक पद्धति को नए वातावरण के साथ संतुलन स्थापित करने के लिए परिवर्तित करता है। यह नयी सूचनाओं के साथ मौजूदा मानसिक पद्धतियों में बदलाव या फिर नयी पद्धति के निर्माण से सम्बंधित है।
4. **समतुल्यन-** समतुल्यन उस क्रिया को कहते हैं जो संतुलन स्थापित करने करने का प्रयास करती है। यह आत्मसात्करण और समंजन की प्रक्रियाओं में संतुलन की स्थापना से सम्बंधित है।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत 1950 के दशक में दिया था।
2. अनुकूलन कि प्रक्रिया में दो मूल प्रक्रियायें सम्मिलित रहती हैं- आत्मसातकरण और समंजन/सामंजस्य।
3. बच्चे जैसे बाह्य जगत के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं, तब वे नयी स्थितियों को अपनी पूर्ववधारित धारणाओं, विचारों जो बाह्य जगत के विषय में होती है या यह बाह्य जगत उसके अनुसार जैसा होना चाहिए , उसके समान नहीं पाते हैं तो संज्ञानात्मक संरचना में असंतुलन हो जाता है और वह फिर बौद्धिक संरचना में संतुलन लाने का प्रयास करता है। नवीन ज्ञान की प्राप्ति इसी बौद्धिक संतुलन, असंतुलन और पुनः संतुलन की प्रक्रिया है।
4. संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ- संवेदी पेशीय अवस्था, पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था, मूर्त-संक्रियात्मक अवस्था और औपचारिक-संक्रियात्मक अवस्था हैं।
5. जन्म से दो वर्ष तक।
6. जीवत्वारोपितता में बालक मानता है कि हर गति करती वस्तु में जीवन होता है इस प्रकार वह निर्जीव वस्तुओं में भी जीवन देखता है।
7. जो भी हम सीखते हैं उसमे अनुकरण का बहुत बड़ा योगदान होता है और मष्तिष्क के विकास में भी खेल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ऐसे में खेल हर एक आयु में अनुकरण की ओर प्रेरित करता है।
8. संस्कृति और सामाजिक समूह के प्रभाव के कारण क्योंकि उनके वातावरण में उन्हें वैज्ञानिक चिंतन और तकनीकी सुविधाएँ हैं शहरी क्षेत्र में रहने वाले बच्चे का ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों की तुलना में वैज्ञानिक चिंतन और तकनीकी के क्षेत्र में विकास अधिक तेज़ी से होता है।
9. संस्कृति के प्रभाव को नज़रअंदाज़ करना और बच्चों के द्वारा किए जाने वाले चिंतन में सात्यता या संगतता का अभाव पियाजे द्वारा दिए गए संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत की सीमाएं हैं।

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Sternberg, R.J. & Williams, M.W. (2002).Educational Psychology. Bostan: Allyn & Bacon.
2. पाण्डेय, कल्पलता, & श्रीवास्तव, एस. एस. (2007). शिक्षा मनोविज्ञान भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि. नयी दिल्ली: टाटा मैकग्रा-हिल पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड.
3. सिंह, अरुण, कुमार (2006). शिक्षा मनोविज्ञान. पटना: भारती भवन पब्लिकेशन & डिस्ट्रीब्यूशन.

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पियाजे के विकासात्मक सिद्धांत के स्तरों की व्याख्या करें।
2. एक अध्यापक के रूप में पियाजे द्वारा दिए गए संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत को आप कक्षा में किस प्रकार प्रयोग में लाएंगे? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
3. पियाजे के विकासात्मक सिद्धांत की आलोचनात्मक विवेचना करें।

इकाई 3 -शिक्षण एवं अधिगम के सन्दर्भ में ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त के आधार पर विकास को समझना

Understanding 'Growing –Up' through Bruner's Theory of Cognitive Development in the context of Teaching and Learning

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवं संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
3.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूलभूत आयाम
3.5 जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त
3.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
3.7 सारांश
3.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भग्रन्थ सूची
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वृद्धि एवं विकास, दोनों पद किसी व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के परिवर्तन को इंगित करते हैं। विकास, संरचनात्मक एवं क्रियात्मक, सम्पूर्ण परिवर्तन से संबन्धित है। विकास का बहुत ही विस्तृत अर्थ है तथा यह व्यक्तिके जीवन विस्तार की कालावधि की विभिन्न विमाओं से शारीरिक विकास, चलन क्रिया विकास, संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक विकास, भावात्मक विकासऔर नैतिक विकास में परिवर्तनों की सामान्य प्रवृत्ति का वर्णन करता है। जैसा कि किसी व्यक्ति के गुणात्मक एवं मात्रात्मक विकास क्रियात्मक एवं संरचनात्मक दोनोंपक्षों को शामिल करता है एक प्रक्रिया है जो किसी जीव या जीवन के अति प्रारम्भिक अवस्था से प्रारम्भ होती है। समय के अनुसार (साथ-साथ) जीव अपनी वृद्धि

एवं विकास के चरम, जिसे परिपक्वता कहते हैं, को प्राप्त करता है। विकास की प्रक्रिया की सामान्य प्रवृत्ति का अन्वेषण विभिन्न विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसकी वास्तविक गतिकी को जानने हेतु किया गया। परिणामस्वरूप, निश्चित विकासात्मक अवस्था किसी के व्यक्तित्व के एक या अन्य विमाओं में होने वाली विकासात्मक प्रक्रिया को जानने हेतु विभिन्न सिद्धान्तों का अविर्भाव हुआ। संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में, ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, आसुबेल का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, वाईगोत्सकी का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त और जे0एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त कुछ प्रमुख सिद्धान्त हैं। संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न पक्षों को जानने हेतु हम यहाँ जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न पहलूओं पर चर्चा करेंगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:-

1. संज्ञान के अर्थों को जानने में सक्षम होंगे।
2. संज्ञानात्मक विकास की प्रकृति का वर्णन करने में सक्षम होंगे।
3. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवयवों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
5. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ को सोदाहरण स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।

3.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवं संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त Jerome S. Bruner and his Theory of Cognitive Development

कोई भी विषय विकास की किसी भी अवस्था में इस प्रकार से सिखाया जा सकता है कि वह बालक के संज्ञानात्मक क्षमताओं में स्थापित होता हो। (जे0एस0ब्रूनर)

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जिरोम सेमौर ब्रूनर (जन्म 1915) ने प्रत्यक्षण , संज्ञान एवं शिक्षा के अध्ययन में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने अमेरिका एवं इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालयों में अध्ययन कार्य कियातथा शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक के रूप में जाने जाते हैं।

जिरोम सेमौर ब्रूनर का जन्म अप्रवासी माता-पिता हरमन एवं रोज ब्रूनर से 1 अक्टूबर, 1951 को हुआ था। वे जन्मान्ध थे और शैशवास्था में ही मोतियाबिन्द के दो आपरेशनके बाद भी रोशनी प्राप्त न कर सके। उन्होंने सर्वाजनिक विद्यालयो में दाखिला लिया। उसके बाद उच्च विद्यालय से 1933 में स्नातक हुए और

ड्यूक विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की। उन्होंने1973 में ड्यूक विश्वविद्यालय से बी0ए0 एवं 1941 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय से गार्डन अलपोर्ट के दिशा-निर्देशन में की पी-एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। वे द्वितीय विश्व- युद्ध के समय सुप्रीम हेडक्वार्टरस एलायड इक्सेपेडीशनरी कोर्स यूरोप के मनोवैज्ञानिक युद्ध विभाग में कार्यरत जनरल आईसेन हावर के सानिध्य में सेवारत रहे। युद्धोपरान्त उन्होंने1945 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान संकाय से सेवारम्भ की।

ब्रूनर, जिन्होंने बालकों के संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया, ने बालकों की बाहरी दुनिया के संज्ञानात्मक प्रदर्शन (प्रस्तुतीकरण) से संबंन्धित एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। ब्रूनर का सिद्धान्त वर्गीकरण पर आधारित है। वर्गीकरण हेतु प्रत्यक्षीकरण, वर्गीकरण हेतु संप्रत्ययीकरण, वर्ग बनाने हेतु अध्ययन, वर्गीकरण हेतु निर्णय लेनाब्रूनर मानते हैं लोग दुनिया को उसकी समानताओं एवं विषमताओं के पदो में व्याख्यायित करते हैं।

वे दो प्रकार के चिन्तन के प्राथमिक तरीकों, कथन माध्यम एवं रूपदर्शन माध्यम, का सुझाव देते हैं। कथन चिन्तन में मस्तिष्क क्रमागत , क्रिया - उन्मुख एवं विवरण प्रेरित विचार में व्यस्त होता है।

रूप दर्शन चिन्तन(Paradigmatic Thinking) में मन व्यवस्थित व वर्गीकृत संज्ञान को प्राप्त करने हेतु विशिष्टताओं का अतिक्रमण करता है। प्रथम स्थिति में चिन्तन कहानी एव ग्रीपिंग ड्रामा का रूप लेता है। बाद वाली स्थिति में चिन्तन तार्किक प्रवर्तकों (Logical operators) से जुड़े कथनों (Propositons) के रूप में संरचित है।

बालकों के विकास पर अपने अनुसंधान (1966) में ब्रूनर ने प्रस्तुतीकरण के तीन तरीको को प्रस्तावित किया सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित), दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा- आधारित) एवं सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित) । ये प्रस्तुतीकरण के तीनों तरीके आपस में समाकलित होते हैं तथा केवल स्वतंत्रता पूर्वक क्रमिक होते हैं जिससे कि वे परस्पर अनुवादित हो सकें। सांकेतिक प्रस्तुतीकरण का अन्तिम तरीका है। ब्रूनर के सिद्धान्त के अनुसार, यह तब प्रभावी होती है जब ये पदार्थ का सामना सक्रिया से दृश्य प्रतिमा, दृश्य प्रतिमा से सांकेतिक प्रस्तुतीकरण की एक श्रेणी का अनुसरण करता है। यही क्रम वयस्क विद्यार्थियों के लिए भी सत्य है। एक सही अनुदेशनात्मक चित्रकार ब्रूनर का कार्य यह भी सुझाव देता है कि एक विद्यार्थी (चाहे व बहुत ही कम उम्र का हो) किसी भी पाठ को सीखने में सक्षम होता है जब तक कि अनुदेशन उचित प्रकार से संगठित है। (पियाजे को मान्यताओं तथा दूसरे अवस्था के सिद्धान्तकारों के विपरीत) ब्लूम टैक्सोनामी की तरह एक कूट कृत करने का तन्त्र जिसमें लोग सम्बन्धित वर्गों की एक निश्चित क्रम में व्यवस्था बनाते हैं का सुझाव देते हैं। वर्गों का प्रत्येक उच्चतर अनुक्रमिक स्तर अधिक विशिष्ट बन जाता है प्रतिध्वनित बेन्जामीन ब्लूम टैक्सोनॉमी की ज्ञान प्राप्ति की समझ जैसे कि अनुदेशनात्मक स्कैफोल्डिंग से संबन्धित विचार। सीखने की इसी समझ के साथ, ब्रूनर एक चक्राकार पाठ्यचर्या, का प्रस्ताव करते हैं। एक अध्यापन उपागम जिससे प्रत्येक विषय या कौशल क्षेत्र का निश्चित समयान्तरालों पर प्रत्येक बार अधिक सतर्कता पूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। 1987 में

आपको बालजन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह सम्मान आपके मानव मनोविज्ञान की प्रमुख समस्याओं पर किए गए शोध के लिए दिया गया। आपने अपने प्रत्येक शोध में मानव की मनोवैज्ञानिक संकायों के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक मूल्यों के विकास में मूल एवं वास्तविक योगदान दिया है।

जे0एस0 ब्रूनर द्वारा विकसित संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विस्तरण से पहले हमें संज्ञान एवं संज्ञानात्मक विकास के सही संप्रत्यय को जानना आवश्यक है।

संज्ञान (Cognition) उच्चतर स्तर का अधिगम है और इसमें यह प्रत्यक्षण, संग्रहीकरण एवं इन्द्रियों द्वारा संग्रहीत सूचनाओं की प्रक्रिया आदि सम्मिलित हैं यह उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को शामिल करता है जिससे स्वयं के, दूसरों के एवं वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है एवं प्राप्त ज्ञान व्याख्यायित होता है। मानवीय चिन्तन प्रक्रियाएँ (प्रत्यक्षीकरण, तर्कणा तथा स्मरण) संज्ञान के उत्पाद हैं। संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ वह प्रक्रियाएँ हैं जो ज्ञान एवं जागरूकता के लिए उत्तरदायी हैं। वे अनुभव, प्रत्यक्षणा और स्मृति (स्मरण) तथा ठीक वैसे ही प्रकट शाब्दिक चिन्तन की प्रक्रियाओं को साम्मिलित करते हैं। यह मस्तिष्क की आंतरिक संरचनाओं एवं उसकी क्रियाओं से सम्बन्धित है। ये आन्तरिक संरचनायें और प्रक्रियाएँ संवेदन प्रत्यक्षणा, अवधान, अधिगम , स्मरण, भाषा, चिन्तन तथा तर्कणा को शामिल करते हुए ज्ञानार्जन एवं ज्ञान की उपयोगिता में साम्मिलित रहती हैं। ये सभी संज्ञान के विभिन्न पक्ष हैं। एक जीव के विशेष परिस्थितियों में प्रकट व्यवहार पर आधारित संज्ञान के क्रियात्मक अवयवों के बारे में सिद्धान्तों का संज्ञानात्मक वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं तथा प्रस्तावित करते हैं।सम्पूर्ण जीवन में संज्ञान की व्यापक व्याख्या, ज्ञान-प्रेरित एवं ज्ञानेन्द्रिय प्रक्रियाओं तथा नियन्त्रित एवं स्वचालित प्रक्रियाओं के मध्य अन्तः क्रिया के रूप में की जा सकती है।

संज्ञानात्मक विकास (Cognitive development) बाल्यावस्था से किशोरवस्था, किशोरावस्था से वयस्कता तक स्मरण योग्यता, समस्या समाधान और निर्णय-लेने की योग्यता को सम्मिलित करते हुए चिन्तन प्रक्रियाओं की संरचना से सम्बंधित है।

एक समय यह भी विश्वास किया जाता था कि शिशुओं में चिन्तन या जटिल विचारों को बनाने की क्षमता, में कमी होती है और जब तक वे भाषा नहीं सीख लेते तब तक बिना संज्ञान के होते हैं। अब यह ज्ञात हुआ है कि बच्चे जन्म से ही अपने वातावरण के प्रति जागरूक होते हैं तथा सम्बन्धित गवेषणा में रूचि रखते हैं। जन्म से ही शिशु सक्रिय रूप से अधिगम करना शुरू कर देते हैं। वे ऐसा प्रत्यक्षणा एवं चिन्तन कौशल के विकास हेतु प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग करकेअपनी चारो तरफ की सूचनाओं को एकत्रित करते हैं, छटनी करते हैं एवं प्रक्रिया करते हैं।

इस प्रकार, संज्ञानात्मक विकास, एक व्यक्ति कैसे प्रत्यक्षण करता है, कैसे समझ चिन्तन करता है और अनुवांशिक एवं अधिगमित कारकों से अन्तःक्रिया के द्वारा प्राप्त अपनी दुनिया की समझ कैसेप्राप्त करता

है, को निर्देशित करता है। सूचना की प्रक्रिया , बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. ब्रूनर का सिद्धान्त _______ पर आधारित है।
2. बालकों के विकास पर अनुसंधान में ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीकों के नाम लिखिए।
3. सूचना की प्रक्रिया,बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति __________ के क्षेत्र हैं।

3.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूलभूत आयाम Fundamental Aspects of Bruner's Theory of Cognitive Development

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की सटीक गतिकी को समझने हेतु निम्नलिखित कारक प्रमुख स्थान रखते हैं:-

वर्गीकरण (Categorization)

ब्रूनर के विचार वर्गीकरण पर आधारितहैं “वर्गीकरण के लिए प्रत्यक्षण, वर्गीकरण के लिए संप्रत्यायीकरण , वर्गीकरण करने हेतु अधिगम, वर्गीकरण के लिए निर्णयीकर”। मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है। ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रों की संरचना में सूचनाओं के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया। उनका विश्वास है कि प्रत्यक्षण, संप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णयीकरण और अनुमानीकरण ये सभी वर्गीकरण में सम्मिलित होते हैं।

संगठन (Organization)

संगठन से तात्पर्य सूचनाओं को कूटकृत तन्त्र में व्यवस्थित करने से है। कूट-कृत तन्त्र संवेदी निवेश को पहचानने हेतु प्रेषित वर्ग होते हैं। ये उच्चतर संज्ञानात्मक क्रियाएँ , प्रमुख संगठनात्मक चर होते हैं। इससे परे तात्कालिक संवेदी आँकड़े संबन्धित वर्गों के आधार पर अनुमान लगाने में सम्मिलित हैं। संबंन्धित वर्ग एक कूट-कृत तन्त्र बनाते हैं। ये संबन्धित वर्गों की क्रमबद्धित व्यवस्थाएँ हैं। ब्रूनर ने एक कूट-कृत तंत्र का सुझाव दिया जिसमें लोग संबन्धित वर्गों की श्रेणी बद्ध व्यवस्था बनाते हैं। प्रख्यात बेन्जामीन ब्लूम की

ज्ञानार्जन की समक्ष एँ व अनुदेशानात्मक स्कैफोल्डिंग से सम्बन्धित विचार के प्रत्येक क्रमागत उच्चतर स्तर और भी विशेष हो जाते हैं।(ब्लूम टैक्सोनॉमी)

मानसिक प्रदर्शन के माध्यम (Modes of Mental Representations)

ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम है- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक। बच्चे आन्तरिक सूचना संसाधन एवं संग्रहण तंत्र द्वारा बाहरी वास्तविकता के मानसिक प्रदर्शन का विकास करते हैं। मानसिक प्रदर्शन हेतु भाषा बहुत सहायक होती है।

भाषा (Language)

ब्रूनर के तर्क के अनुसार संज्ञानात्मक प्रदर्शन के आयाम भाषा से मदद प्राप्त करते हैं। उन्होंने भाषा-ज्ञान में सामाजिक व्यवस्था के महत्व पर जोर दिया इनके विचार पियाजे के विचारों के समान हैं, परन्तु वे विकास के सामाजिक प्रभावों पर ज्यादा जोर देते हैं। भाषा प्रतीकों का तंत्र है जो संज्ञानात्मक विकास या वृद्धि के विकास में मुख्य स्थान रखती है। यह आन्तरिक संप्रत्ययों के संचार में सहायक होती है।

शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य अन्तःक्रिया (Interaction Between Teacher and Taught)

शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य प्रगाढ़ अन्तःक्रिया, शिक्षार्थी के संज्ञानात्मक विकास में सार्थक अन्तर स्थापित करती है। समाज का कोई भी सदस्य शिक्षक हो सकता है। माता, पिता, मित्र या वह कोई जो कुछ सीखा सकता है, शिक्षक हो सकता है।

अधिगमकर्त्ता का अभिप्रेरण (Motivation of Learner)

ब्रूनर, पियाजे के बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के विचारों से प्रभावित थे। 1940 के दशक के दौरान उनके प्रारम्भिक कार्य आवश्यकता, अभिप्रेरण एवं प्रत्याशा (मानसिक प्रवृत्ति) और उनके प्रत्यक्षण पर प्रभाव पर केन्द्रित रहे। उन्होंने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि बच्चे सक्रिय समाधानकर्ता होते है तथा 'कठिन विषयों' के अन्वेषण में सक्षम होते हैं जैसा कि बच्चे आन्तरिक अभिप्रेरणा से ओत-प्रोत होते हैं। उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के एक फलन के रूप में अधिगम हेतु अभिप्रेरणा का अन्वेषण किया। उन्होंने महसूस किया कि आदर्शतः विषय वस्तु में रूचि, अधिगम हेतु सबसे उपयुक्त (अच्छी) उद्दीपक है। ब्रूनर श्रेणी अथवा कक्षा श्रेणी-क्रम जैसे बाहरी प्रतिस्पर्धात्मक उद्देश्यों (goals) को प्रसन्द नहीं करते थे।

संरचनावादी प्रक्रिया की तरह अधिगम (Learning as Constructivist Process)

अधिगम वास्तविकताओं/ को संरचित करने की प्रक्रिया है जो कि अन्ततः संज्ञानात्मक विकास में जुड़ जाती है। ब्रूनर का सैद्धान्तिक ढाँचा इस विषय-वस्तु पर आधारित है कि अधिगमकर्त्ता विद्यमान ज्ञान के आधार पर नए विचार या संप्रत्यय संरचित करते हैं। अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के आयामों में सूचनाओं का चयन एवं रूपान्तरण, निर्णयीकरण, परिकल्पनाएँ बनाना और सूचनाओं एवं अनुभवों से अर्थ निकालना सम्मिलित है।

सूझपूर्ण एवं विशलेषणात्मक चिन्तन (Intuitive and Analytic Thinking)

ब्रूनर का विश्वास है कि सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक दोनों चिन्तन प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किए जाने चाहिए। उनका विश्वास था कि सूझपूर्ण (अर्न्तज्ञात) कौशलों को कम-बल दिया जाता था और वे प्रत्येक क्षेत्र में सूझ पूर्ण छलांग (कदम) हेतु विशेषज्ञों की क्षमताओं पर चिन्तन करते हैं। यह एक बिना विश्लेषणात्मक कदम के मुक्तिपूर्ण लेकिन तात्कालिक प्रतिपादन पर पहुँचने की बृद्धिपूर्ण तकनीकी है जिससे इस तरह के प्रतिपादन वैध या अवैध निष्कर्ष पाए जाएँगे। (दण्डपाणी, 2001) सूझपूर्ण चिन्तन बृद्धि पूर्ण अनुमान, अटकलों आदि से प्रदर्शित होता है।

खोज-अधिगम (Discovery learning)

खोज अधिगम संज्ञान की क्रियात्मक क्षमता को बढ़ाता है। ब्रूनर में 'खोज-अधिगम'को विख्यात किया। खोज-अधिगम एक पूछ-ताछ आधारित संरचनावादी अधिगम सिद्धान्त है जो कि समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है जहाँ अधिगमकर्त्ता अपने स्वयं की अनुभूतियों एवं विद्यमान ज्ञान के प्रयोग से तथ्यों, उनके सम्बन्धों एवं नए सत्यों को सीखने हेतु खोजता है। शिक्षार्थी वस्तुओं के जोड़-तोड़ एवं अन्वेषण से एवं वाद-विवाद से जूझकर या प्रयोगों को सम्पन्न करके (वातावरण) से अन्तःक्रिया करता है। परिणामस्वरूप, शिक्षार्थी स्वयं द्वारा अन्वेषित ज्ञान एवं संप्रत्ययों को आसानी से स्मरित कर सकेंगे (अन्तरणवादी प्रतिमान के विपरित)। प्रतिमान जो खोज-अधिगम पर आधारित है- निर्देशित- खोज , समस्या आधारित अधिगम, अनुकरण आधारित अधिगम, स्थिति आधारित अधिगम, अनुषंगिक अधिगम आदि को सम्मिलित करता है।

इस सिद्धान्त के प्रस्तावकों का विश्वास है कि खोज अधिगम के निम्नलिखित सहित कई लाभ हैं -

- सक्रिय विनियोजन को प्रोत्साहित करना।
- संज्ञानात्मक कौशलों को बढ़ावा देना।
- संज्ञानात्मक विकास की प्रगति को त्वरित करना।
- प्रेरण को प्रोत्साहित करना।
- स्वायत्तता, जिम्मेदारी, स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन देना।
- समस्या-समाधान कौशलों एवं सृजनात्मकता का विकास करना।
- उचित अधिगम अनुभव

खोज अधिगम से हानियाँ भी हो सकती है जो कि निम्नवत हैं :

- संज्ञानात्मक अतिभार उत्पन्न होना।
- बड़े समूहों व मन्द अधिगमकर्त्ता ओं के लिए इसका कठिन अधिगम प्रक्रिया हो सकना

- सम्भावित भ्रान्त धारणाएँ
- समस्याओं एवं भ्रान्त धारणाओं को चिन्हित करने में शिक्षक असफल हो सकते हैं।

अनुभवजन्य अधिगम (Experientiol Learning)

अनुभवजन्य अधिगम बौद्धिक विकास में बहुत सहायक होता है। यह आगमनात्मक, अधिगमकर्त्ता - केन्द्रित एवं क्रिया-कलाप उन्नमुखित होता है। अनुभव के बारे में वैयक्तिक चिन्तन और दूसरी परिस्थितियों में अधिगमित ज्ञान का प्रयोग करने में योजनाओं का प्रतिपादन (सुत्रीकरण) प्रभावी अनुभवजन्य अधिगम के लिए क्रान्तिक (विवेचनात्मक) कारण है। अनुभवजन्य अधिगम में अधिगम के प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है न कि अधिगम के उत्पाद पर संज्ञानात्मक विकास पर अधिगम की प्रक्रिया का अत्याधिक (अवश्य) प्रभाव होता है। अनुभवजन्य अधिगम को उन पाँच चरणों वाले चक्र के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सभी चरण आवश्यक हैं:-

- अनुभव करना (क्रिया कलाप का होना)
- साझा करना या प्रकाशित करना (प्रतिक्रियाएँ एवं प्रेक्षण साझा किए जाते हैं)
- विश्लेषण करना या प्रक्रिया करना (ढाँचा एवं गति की निश्चित होती है।)
- निष्कर्ष निकालना या सामान्यीकरण करना। (सिद्धान्त व्युत्पन्न होते हैं),तथा
- विनियोग करना (applying) (नई परिस्थितियों में अधिगम के प्रयोग हेतु योजनाएँ बनती हैं।)

अभ्यास प्रश्न

4. वर्गीकरण क्या है?
5. ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रों की संरचना में ________ के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया।
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम कौन से हैं?

3.5 जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त (J.S. Bruner's Theroy of the Stages of Cognitive Development)

जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरित) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य कारकों को महत्व देता है। ब्रूनर सुझावित करते है कि बुद्धि का प्रयोग जैसे-2 किया जाता है चरण-दर-चरण परिवर्तनों की अवस्था में बौद्धिक क्षमता विकसित होती है। ब्रूनर का चिन्तन उत्तरोत्तर लेव वाइगोत्सकी जैसे लेखकों द्वारा प्रभावित हुआ और वे

अन्त:वैयक्तिक केन्द्र, जो कि उनका विषय रहा पर और अधिक विश्लेषणात्मक हुए और सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों पर कम ध्यान दिया।

प्रक्रिया सिद्धान्तवादी जिरोम ब्रूनर (1973) संज्ञानात्मक विकास को आंशिक रूप से आन्तरिक प्रदर्शनों के बढ़ते हुए विश्वास के रूप में देखते हैं। ब्रूनर के अनुसार शिशुओं के पास बुद्धि का उच्चतम क्रिया उन्नमुखित रूप होता है। वे किसी वस्तु को केवल उस स्तर तक जानते हैं जिससे कि वे उस पर क्रिया कर सकें। नवजात शिशु किसी वस्तु को उसके प्रत्यक्षण द्वारा जानते हैं और परिणामस्वरूप वे वस्तुओं घटनाओं के सुस्पष्ट प्रत्यक्षणात्मक विशेषताओं द्वारा दृढ़तापूर्वक प्रभावित होते हैं। बड़े बच्चे व किशोर वस्तुओं को अन्तरतः तथा प्रतिमानों के द्वारा जानते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे इन मानसिक प्रतिमाओं को दिमाग (बुद्धि) (Mind) में रखने हेतु वस्तुओं एवं क्रियाओं के आन्तरिक प्रतिमाओं एवं प्रदर्शनों को विभाजित करने में सक्षम होते हैं। ब्रूनर बालक की बढ़ती हुई क्षमताएँ वातावरण से कैसे प्रभावित होती है विशेषतया-प्रोत्साहन एवं दण्ड, जिसे लोग विशेष बुद्धि को विशेष प्रकार से प्रयोग करने हेतु प्राप्त करते है, में रूचि रखते हैं। ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाओं को बताया।

प्रथम अवस्था को उन्होंने 'सक्रियता' (Enactive) नाम दिया। सक्रियता एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओं के उत्पादों के द्वारा वातावरण को समझता है। द्वितीय अवस्था "दृश्य प्रतिमा (Iconic)" कहलाई जिसमें प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।

अन्तिम अवस्था "सांकेतिक" (Symbolic) अवस्था थी जिसमें अधिगमकर्त्ता अमूर्त पदों में चिन्तन करने की क्षमता का विकास करता है। इस त्रि-अवस्थीय मत के आधार पर ब्रूनर ने मूर्त, चित्रात्मक और फिर सांकेतिक क्रियाओं जो कि अधिक प्रभावी अधिगम को अग्रसर होगी, के संगठनात्मक प्रयोग की अनुशंसा की।

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से अत्यधिक साम्य रखता है परन्तु कुछ महत्वपूर्ण एवं स्पष्टतया मूल अन्तर भी हैं। पियाजे का कार्य 'क्या होता है'की व्याख्या से अत्याधिक संबंधित है। वे उस क्रिया विधि पर विचार करते हैं जिसमें मुख्यतः व्याख्याओं को स्पष्ट करने के क्रम में बुद्धि का विकास होता है। दूसरी तरफ ब्रूनर संज्ञानात्मक विकास "कैसे" और "क्यों" होता है के प्रश्नों से अपने आप को ज्यादा संबंधित रखते हैं। जबकि पियाजे वयस्कता प्रक्रियाओं को सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण कारकों और संस्कृति एवं शिक्षा को परिष्कारित कारकों के रूप में महत्व देते हैं। ब्रूनर इन अन्तिम दो को ज्यादा महत्व देते हैं । वे पियाजे के इस विचार से असहमत है कि महत्वपूर्ण अभिप्रेरक या बौद्धिक विकास में प्रभाव, जैविक हैं और दावा करते हैं कि यदि जैविक विकास व्यक्ति को अधिक सामजस्यपूर्ण व्यवहार की ओर 'धकेलता' है तो वातावारण उसी दिशा में "खींचता"है। यहाँ ब्रूनर जोर दे रहे हैं कि बालक का अध्ययन केवल उसके अनुभव एवं वातावरण के परीक्षण के बिना एक अपूर्ण चित्र देने की सीमा है। जहाँ पियाजे केवल यह कहते है कि संज्ञानात्मक विकास व्यक्ति और वातावरण के मध्य एक अन्तःक्रिया महत्व को देता है वहीं ब्रूनर इस बिन्दु पर जोर देते हैं और महत्व देते हैं कि बालक का वातावरण ध्वनिक्षेपक की तरह हो जिससे बालक की क्षमताओं का विस्तार हो।

जबकि पियाजे की ही तरह ब्रूनर का मानना है कि विकासशील बालक अपने विकास में स्वयं सक्रिय भागीदारी निभाता है यद्यपि कि परिवार, शैक्षिक तन्त्र एवं बालक के मित्र भी। उदाहरण के लिए विकास को महत्व देने हेतु बालक अपनी स्वयं की दुनिया की समझ बनाता है। प्रत्यक्षण एक सक्रिय, संरचनात्मक प्रक्रिया है, हम कच्चे (अपरिष्कृत) संवेदी सूचनाओं से अनुमान लगाते हैं तथा निर्णय लेते हैं कि वास्तव में वहाँ क्या है। ठीक उसी तरह हम उद्दीपकों की प्रक्रिया करते हैं और हम अपने स्वयं के निष्कर्ष बनाते हैं, इसलिए ब्रूनर विचार करते हैं कि हम अवश्य ही समझने और अपने वातावरण से अधिक सफलता पूर्वक अन्तःक्रिया करने के क्रम में अपनी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करते हैं।

अपने वातावरण पर नियन्त्रण के योग्य होने के लिए हमें इसकी भविष्यवाणी करना सीखना होगा, अतः हमें अपने अनुभवों को प्रदर्शित करना और अन्तरतः संगठन करना सीखना होगा। जो कि पूर्णतः जो वाह्य वास्तविकताएँ बनाते हैं उसके मानसिक प्रदर्शनों के प्रकारों (प्रतीकों) पर निर्भर करता है।

हम अपने वातावरण को प्रदर्शित करने की क्षमता का अन्तरतः विकास किस प्रकार से करते हैं और भविष्य में जो कुछ घटित होगा उसकी भविष्यवाणी करने में इन सूचनाओं का प्रयोग कैसे करते हैं, में ब्रूनर रूचि लेते रहे। इन्होंने तीन प्रकार के प्रदर्शनों को चिन्हित किया जो कि उनके विश्वास में संज्ञानात्मक विकास के आधार हैं। जिस क्रम में ये मनुष्य में प्रकट होते हैं उसी क्रम में ये व्याख्यायित होंगे। इनकी तुलना पियाजे की विकासात्मक अवस्थाओं से की जानी चाहिए। पियाजे की प्रस्तावित अवस्थाएँ , जैविक रूप से बालक स्वयं जितना कार्य करने की क्षमता रखता है, की व्याख्या करती हैं। जबकि ब्रूनर के प्रदर्शन के प्रकार व्यक्ति के वातावरण का उसका निष्कर्षण तथा भविष्यवाणी में होने वाले परिवर्तनों से अधिक सम्बन्धित है।

सक्रियता प्रदर्शन (Enactive Representation) बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने 'सक्रियताप्रदर्शन' (Enactive representations) का नाम दिया है। 'चलन' या 'पेशीय स्मरण'के लिए यह प्रथम प्रकार उपयोगी चिन्तन का तरीका है। भूत-अनुभवों को सांकेतिक रूप में संग्रहित नहीं किया जा सकता है। एक शिशु अपने भूत-अनुभवों को केवल पेशीय ढाँचे(Motor Pattern) के रूप में व्यक्त (Represent) कर सकता है।

It might, for example, at one time have a string of rattling beads strung across its cot, and be able to make them rattle by hitting them with its hands. You might notice that when they are taken away it continues to move its hands as if to hit them. It seems to show that it has some form of internal representations of its experience with the beads, and indicates this in motor form by repeating the motor patterns associated with them. No images of the beads need to be involved; this earliest form of internal representation does not seem to require the use of visual images.

प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations) दूसरे प्रकार के प्रकट होने वाले प्रदर्शन को प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations)नाम दिया गया। प्रतिमा का अंग्रेजी पर्याय आइकॉनिक (Iconic) है जो कि आइकन शब्द से बना है जिसका अर्थ है समानता या साम्य। ज्ञानेन्द्रियों तक पहुँचने वाले उद्दीपकों के विश्वसनीय प्रदर्शन के रूप में अब बालक दृश्य-श्रवण या स्पर्श-प्रतिमाओं को याद करने की क्षमता का विकास करता है। यह विधि वातावरण के बारे में सूचनाओं के संग्रहित करने की सबसे अच्छी विधि है। वे बच्चे जो प्रतिमा प्रदर्शन (Imaging)का प्रयोग करते हैं, चित्र व नामांकन के सुस्पष्ट विश्वसनीय प्रदर्शन बनाने में और आवश्यकतानुसार प्रत्यास्मरित करने में सक्षम होते हैं। दूसरी तरफ वे बच्चे जो प्रमिता नहीं बना पाते या प्रतिमा बनाने में बहुत कमजोर होते हैं नामांकन को याद करने में तथा इसे सही चित्र में स्थापित (Fit) करने में कठिनाई महसूस करते हैं क्योंकि शब्द अपने आप में किंचित इंगित नहीं कर पाते कि वे किस चित्र में स्थापित होंगे। प्रतिमा-कल्पना इतनी अपरिवर्तनीय (कठोर) है कि यह बालक को प्रायः वातावरण के भागों के केवल विशेष चित्रों को सीखने के लिए स्वीकृत करती है और वस्तुओं में निहित साम्यता को निष्कर्षित करना कठिन बना देती है। अतः प्रतिमा कल्पना करने वाले बच्चों को प्रतिमा-कल्पना न करने वाले बच्चों की अपेक्षा वस्तुओं का वर्गीकरण करने में अधिक कठिनाई होती है।

सांकेतिक प्रदर्शन (Symbolic Representation)सक्रियता (Enactive) तथा प्रतिमा (Iconic) दोनों प्रदर्शनों के साथ यह समस्या है कि ये सापेक्ष तथा कठोर (अपरिवर्तनीय) हैं, सक्रियता प्रदर्शन बालक को केवल पेशीय तरीके के रूप में वातावारण को निष्कार्षित करने में सक्षम बनाता है, जबकि प्रतिमा प्रदर्शन उसे केवल चित्र के रूप में वातावरण को प्रदर्शित करने में सक्षम बनाता है। चूंकि वातावरण निरन्तर परिवर्तनशील है, इसलिए केवल ये दोनों रूप सक्रियता तथा प्रतिमा, वातावरण की सभी सूचनाओं को प्रभावी रूप में कूट-कृत नहीं कर सकते एवं भविष्यवावणी करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

सांकेतिक प्रदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है समस्या का समाधान प्रतीकों के प्रयोग द्वारा करते हैं। एक प्रतीक कुछ अतिरिक्त को प्रदर्शित करता है, उदाहरण के लिए दो व्यक्तियों का हाथ मिलाना यह प्रदर्शित करता है कि वे एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे(हम प्रायः दाहिने हाथ को मिलाते हैं जिससे युद्ध की स्थिति में हथियार उठाए जाते हैं।) अतः ब्रूनर का विश्वास है कि मानव भाषा-शब्द एवं वाक्यों के रूप में प्रतीकोंका एक क्रम, जिससे इस निरन्तर परिर्वतनशील वातावरण की सूचनाओं को प्रदर्शित एवं संग्रहित किया जा सकता है। 'सब्जीयाँ' शब्द कागज पर टंकित एक शब्द विन्यास मात्र हो सकता है किन्तु जब आप इसे पढ़ते हैं तथा इसके अर्थ को निष्कर्षित करते हैं तो यह एक बड़ी मात्रा की सूचना का प्रत्यास्मरण करता है। वास्तव में ब्रूनर सांकेतिक प्रदर्शन के विकास में भाषा को एक महत्वपूर्ण सहायक उपकरण मानते हैं क्योंकि भाषा वर्गीकरण एवं क्रम निश्चित करने में हमें सक्षम बनाती है।ब्रूनर द्वारा

प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का आरेखी प्रदर्शन यहाँ इस प्रकार से किया जा रहा है कि इसके निश्चित क्रम की सही कल्पना की जा सके।

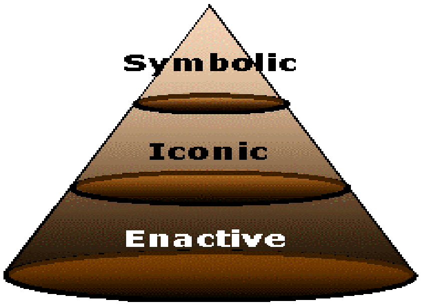

चित्र.1- संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाएँ (ब्रूनर)

- सक्रियता **(Enactive)**जहाँ एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा वातावरण के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा **(Iconic)**जहाँ अधिगम प्रतिमानों एवं प्रतिमाओं के द्वारा होता है।
- सांकेतिक **(Symbolic)**जो अमूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

पियाजे एवं ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्तों में कुछ उभयनिष्ठ कारक हैं। अवस्थाओं के पदों में दोनों सिद्धान्तों के लिए तुलनात्मक तालिका निम्नवत दी गई है।

पियाजे एवं ब्रूनर के सिद्धान्त के तुलान्तमक स्तर को प्रदर्शित करती तालिका:-

पियाजे के सिद्धान्त की अवस्थाएँ	**ब्रूनर के सिद्धान्त की अवस्थाएँ**
संवेदी पेशीय अवस्था	सक्रियता प्रदर्शन
प्राक् संक्रियात्मक अवस्था	प्रतिमा प्रदर्शन
ठोस संक्रिया की अवस्था	
औपचारिक संक्रिया की अवस्था	सांकेतिक प्रदर्शन

अभ्यास प्रश्न

7. जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में _____________ का सिद्धान्त विकसित किया।
8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम लिखिए।
9. सक्रियता अवस्था क्या है?
10. ______________ अवस्था में प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।
11. बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने___________का नाम दिया है।

3.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक निहितार्थ

जिरोम ब्रूनर ने शिक्षा की प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका कार्य औपचारिक, निरौपचारिक, अनौपचारिक शिक्षकों तथा उन सभी जीवन पर्यन्त अधिगम (LLL) से सम्बन्धित लोगों के लिए महत्वपूर्ण पाठों पर प्रकाश डालता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के संगठन एवं इसे जारी रखने हेतु ब्रूनर का सिद्धान्त बहुत ही सहायक है। ब्रूनर सिद्धान्त के पदानुक्रमानुसार प्रभावी अधिगम-उत्पाद हेतु अधिगम अनुभवों को सक्रियता (Enactive) प्रतिमा (Iconic)सांकेतिक (Symbolic) क्रम में रखा जाना चाहिए। ठीक यही गुणार्थ, एक प्राचीन चीनी लोकोत्ति से भी संप्रेषित होती है।

> "जो मैं सुनता हूँ,भूल जाता हूँ , (सांकेतिक प्रदर्शन)
> जो मैं देखता हूँ , याद हो जाती है, (प्रतिमा प्रदर्शन)
> जिसे मैं करता हूँ , समझ जाता हूँ"। (सक्रियता प्रदर्शन)

अतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किसी भी अधिगम-पाठ को उचित तरीके से समझने हेतु "करके सीखना (Learning by doing)" विधि को प्राथमिकता देनी चाहिए।

यह एक स्थापित तथ्य भी है कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को, किए गए कार्य द्वारा सीखना (सक्रियता अधिगम माध्यम) दूसरे सीखने के तरीकों की तुलना में अधिक स्थाई होता है, को बल प्रदान करता है। लोगों को 10 प्रतिशत जो वे पढ़ते हैं, 20 प्रतिशत जो वे सुनते हैं, 30 प्रतिशत जो वे देखते हैं, 50 प्रतिशत जो वे देखते और सुनते हैं, 70 प्रतिशत जो वे कहते हैं या लिखिते हैं तथा 90 प्रतिशत वे किसी कार्य को करकेहैं, याद रहता है। यह प्रतिशतता चित्र-2 में चित्रित की गई है। यह अनुसंधान परिणाम शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की योजना बनाने व उसके क्रियान्वयन में बहुत सहायक होगी जो कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को बल प्रदान करती है।

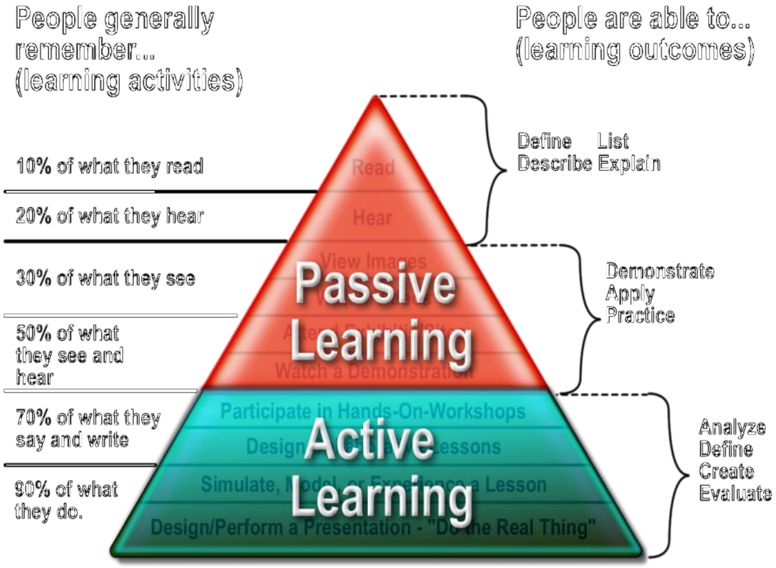
People generally remember... (learning activities)
People are able to... (learning outcomes)
10% of what they read
20% of what they hear
30% of what they see
50% of what they see and hear
70% of what they say and write
90% of what they do.
Read
Hear
View Images
Passive Learning
Watch a Demonstration
Participate in Hands-On-Workshops
Active Learning
Simulate, Model, or Experience a Lesson
Design/Perform a Presentation - "Do the Real Thing"
Define List
Describe Explain
Demonstrate
Apply
Practice
Analyze
Define
Create
Evaluate

चित्र.2 अधिगम के माध्यम से उसकी प्रभाविता को प्रदर्शित करता चित्र

एडगर डेल द्वारा विभाजित "अनुभव शंकु" भी ब्रूनर के सिद्धान्त का ही उत्पाद है। मानसिक प्रदर्शनों की प्रकृति के अनुसार एडगर डेल ने शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया परिस्थितियों में प्रयोग आने वाली दृश्य-श्रव्य सामग्रियों को वर्गीकृत किया। जब डेल ने अधिगम और शिक्षण विधियों पर अनुसंधान किया तो पाया कि हम जो प्राप्त करते हैं उनमें से ज्यादातर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभवों के सत्य होते हैं। इन्हें 'सूची स्तम्भ (Pyramid) या 'चित्रीय यंत्र' के रूप में संक्षिप्त किया जा सकता है जिसे डेल ने "अधिगम शंकु"कहा। उन्होंने कहा कि "शंकु-यंत्र"अधिगम अनुभव का एक दृश्य-रूपक है जिसमें विभिन्न प्रकार के दृश्य-श्रव्य सामग्रीयाँ प्रत्यक्ष अनुभव से शुरू करके अमूर्तता के क्रम में व्यवस्थित होती हैं।

डेल की पुस्तक ''आडियो विजुवल मेथड्स इन टीचिंग"-1957 मूल नामांकन के दस वर्ग (अनुभवों के माध्यम) प्रत्यक्ष (Direct), सोद्देश्य अनुभव (Purposeful Experiences), आविष्कारित अनुभव (Contrived Experiences) नाटकीय सहभागिता (Dramatic Participation), प्रदर्शन (Demonstration), क्षेत्र भ्रमण (Field Trips), प्रदर्शनी चल चित्र (Motion Picture), रेडियो, ध्वन्यालेखन (Recordings) स्थिर चित्र, दृश्य संकेत (Visual Symbol) तथा शाब्दिक संकेत (Verbal Symbols) हैं। ये सभी ब्रूनर द्वारा अन्वेषित मानसिक प्रदर्शनों के उप वर्ग हैं। मध्यस्थ अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लिए डेल का वर्गीकरण तंत्र जो कि प्रभावी शिक्षण हेतु बहुत सहायक है, यहाँ प्रस्तुत है।

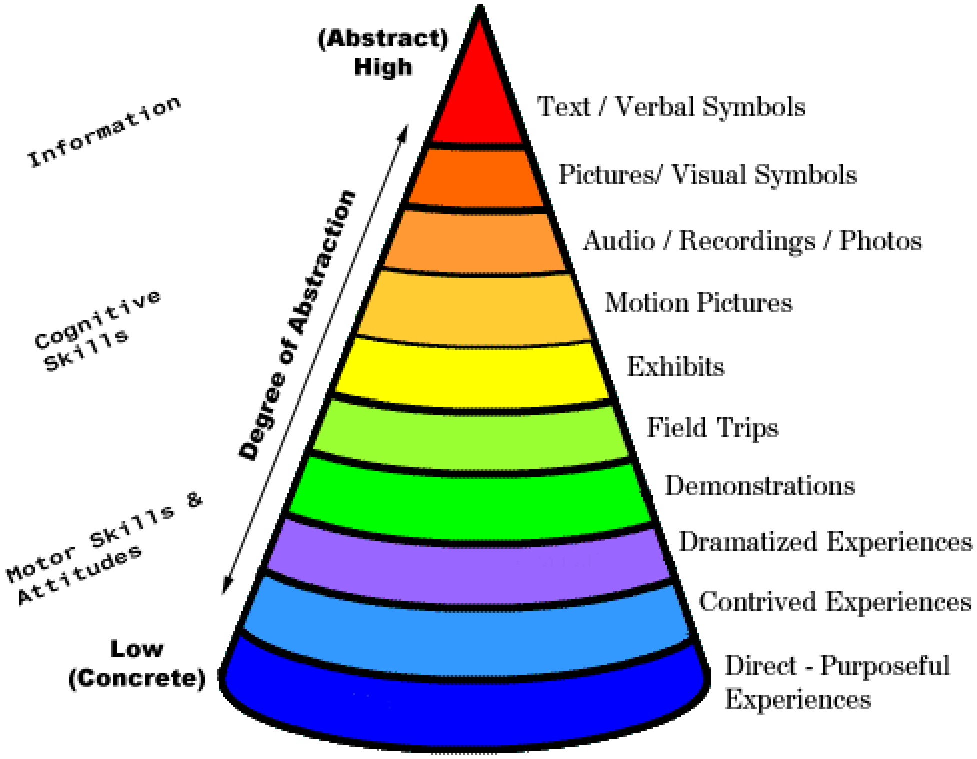
(Abstract) High
Information
Cognitive Skills
Motor Skills & Attitudes
Degree of Abstraction
Low (Concrete)
Text / Verbal Symbols
Pictures/ Visual Symbols
Audio / Recordings / Photos
Motion Pictures
Exhibits
Field Trips
Demonstrations
Dramatized Experiences
Contrived Experiences
Direct - Purposeful Experiences

Graphic courtesy of Edward L. Counts, Jr.

चित्र3 अध्यस्थ अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लिए डेल का वर्गीकरण

कुण्डली पाठ्यचर्या Spiral Curriculum

शिक्षण-अधिगम की प्रभावशीलता बढ़ाने हेतु पाठ्यचर्या संगठन के माध्यम इसके बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू हैं। इसके लिए ब्रूनर ने ‘कुण्डली पाठ्यचर्या का संप्रत्यय दिया। कुण्डली पाठ्यचर्या से तात्पर्य विचारों को बार-बार दुहराने का विचार, उस पर निर्माण और पूर्ण समझ तथा निपुणता के स्तर के विस्तार से है।‘कुण्डली पाठ्यचर्या’ -एक पाठ्यचर्या है जैसा कि यह विकास करती है, बारम्बार इस मूल विचार को दुहराया जाना चाहिए, उस पर तब तक निर्माण करती है जबतक कि छात्र पढ़ेगए पाठ के औपचारिक यंत्र को पूर्णरूपेण सीख नहीं लेता है। अतः एक विषय की पाठ्यचर्या उस विषय को संरचना प्रदान करने वाले निहित सिद्धान्तों को प्राप्त कर सकने वाले अत्याधिक मूल समझ द्वारा ज्ञात होनी चाहिए (ब्रूनर, 1960) उत्तरोत्तर जटिल स्तरों पर किसी विषय के सिद्धान्त को सरल स्तर से शुरू करना और तत्पश्चात अधिक जटिल स्तर तक प्रकरणों को दुहराना समझा जा सकता है।

ब्रूनर ने अपनी दो पुस्तकों- “दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन (1966)”तथा “दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन (1971)”में अपने विकसित विचारों के उन तरीकों के बारे में वातावरण के मानसिक प्रतिमानों, जिन्हें शिक्षार्थी निर्मित करते हैं,उसकी व्याख्या करते हैं तथा स्थानान्तरण करते हैं को प्रभावित करते हैं को सम्मुख रखा। अनुदेशनात्मक कौशल जे0एस0ब्रूनर का मुख्य योगदान है। इसलिए शिक्षा प्रक्रिया की प्रभावी उत्पादकता हेत ब्रूनर का सिद्धान्त एक विशेष अध्याय ही है। किसी को अनुदेशित करनाध्यान देने योग्य परिणामों को प्राप्त करने का विषय नहीं है। इसके बावजूद यह ज्ञान की स्थापना को सम्भव बनाने वाली प्रक्रिया में सहभागिता करना सीखाता है। हम किसी विषय को छोटी-मोटी जीवन्त पुस्तकालय बनाने हेतु नहीं सीखाते अपितु इसलिए सीखाते हैं कि एक छात्र गणितीय तरीके से चिन्तन करे, इतिहासकारों की तरह मुद्दो पर विचार करे और ज्ञान-प्राप्त करने की प्रक्रिया में भाग ले । जानना एक प्रक्रिया है न कि उत्पाद। (1966-72)

ब्रूनर के सिद्धान्त का कूटकृत तन्त्र, यह विचार कि लोग वातावरण (दुनिया) को अधिकांशतः साम्यता व अन्तर के पदों में निष्कर्षित करते हैं, प्रस्तुत करता है। यह संप्रत्यय उन शिक्षकों के लिए बहुत सहायक है, जो संप्रत्ययीकरण के सही गतिकी को जानना चाहते हैं।

ब्रूनर कीका मानना है कि प्रत्यक्षणा, सप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णय-लेना तथा निष्कर्षण ये सभी वर्गीकरण को सम्मिलित करते हैं। शिक्षकों को अपने अनुदेशन के दौरान वर्गीकरण की प्रक्रिया पर केन्द्रित होना चाहिए जिससे कि संज्ञानात्मक प्रक्रिया प्रभावी बने।

ब्रूनर के अनुसार छात्रों के संज्ञानात्मक कौशलों का विकास करने के लिए विचारों के सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक चिन्तन, दोनों को प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

शिक्षण और अधिगम के लिए ब्रूनर का निहित सिद्धान्त जो कि मूर्त, चित्रात्मक तथा फिर सांकेतिक क्रियाकलापों का एक संयोग है, अधिक प्रभावी अधिगम की ओर ले जाता है। यह मूर्त अनुभवों से शुरू होकर चित्रों तक फिर अन्ततः सांकेतिक प्रदर्शनों का प्रयोग करने का एक क्रम (श्रेणी) है।

पियाजे के विपरीत ब्रूनर का प्रस्ताव यह है कि शिक्षकों को छात्रों के नए स्कीमा (Schemas) बनाने के सहायतार्थ सक्रियतापूर्वक हस्तक्षेप करना चाहिए। शिक्षकों को केवल तथ्य ही नहींअपितु संरचना, अभिदिशा, परामर्श तथा अवलम्ब प्रदान करना चाहिए।

वाइगोत्सकी की तरह ही ब्रूनर भी शिक्षकों द्वारा प्रदत्त स्कैफोल्डिंग(Scaffolding) या अवलम्ब के प्रयोग को प्रस्तावित करते हैं। अवलम्ब क प्रयोग बालक को समझ के उच्च स्तर तक पहुँचने में सहायता करता है । यह इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि अवलम्ब के प्रयोग से कार्य सरल, लक्ष्य युक्त, अभिप्रेरित, प्रोत्साहित हो जाता है। साथ ही इससे इस कार्य के सामान कार्यो का प्रदर्शन या प्रतिमान मिलना संभव हो पाता है ।

ब्रूनर एक विषय में सक्रिय समस्या समाधान प्रक्रिया के द्वारा श्रेणी पर जोर देते हैं । ब्रूनर कहते हैं कि शिक्षक सिर्फ तथ्यों को प्रस्तुत करने के बजाए निहित सिद्धान्तों एवं संप्रत्ययों को प्रस्तुत करते हैं। यह अधिगमकर्त्ता ओं को प्रदत्त सूचनाओं के परे जाने एवं स्वयं के विचार विकसित करने में सक्षम बनाता है। अतः शिक्षकों को अधिगमकर्त्ता ओं में विषय के अन्दर एवं विषयों के मध्य कड़ियाँ (Links) बनाने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम लिखिए।

3.7 सारांश

जिरोम एस0 ब्रूनर शिक्षा पर अत्यधिक प्रभाव रखते रहे हैं। 1960 के दशक में ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरीत) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य करकों को देखता है। ब्रूनर ने सुझाव दिया कि बुद्धि का प्रयोग जैसे -2 होता है बौद्धिक क्षमता चरण-दर-चरण परिवर्तनों के द्वारा स्तरों में विकसित होती हैं। ब्रूनर के बौद्धिक विकास के सिद्धान्त के तीन चरण निम्नवत हैं -

- सक्रियता (Enactive) जहाँ एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा दुनिया के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा (Iconic) जहाँ प्रतिमानों एवं चित्रों के माध्यम से अधिगम होता है।
- सांकतिक (Symbolic)जो मूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

परिणामस्वरूप, जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की विशेषताओं को निम्नवत गिनाया जा सकता है।

- जिरोम ब्रूनर सामाजिक संदर्भ में मस्तिष्क में ज्ञान की संरचना के रूप में संज्ञानात्मक विकास पर जोर देते हैं।
- ब्रूनर के प्रेक्षणानुसार इस दुनिया के ज्ञान को संरचित करने की प्रक्रिया एकान्त में नहीं होती अपितु सामाजिक संदर्भ में होती है।
- बालक एक सामाजिक प्राणी है और, इस सामाजिक जीवन द्वारा वह अनुभवों के निष्कर्षीकरण के लिए एक ढ़ाँचा तैयार करता है।

- ब्रूनर के अनुसार सभी अधिगमकर्त्ता ओं के लिए कोई एक अद्वितीय क्रम नहीं है और किसी विशेष अवस्था में अनुकूल वातावरण, भूत-अनुभव, विकास की अवस्था, पदार्थ की प्रकृति और वैयक्तिक विभिन्ता को सम्मिलित करते हुए विभिन्न करकों पर निर्भर करेगी।
- प्रभावी पाठ्यचर्याबच्चों के लिए बहुत से अवसर एवं विकल्प प्रदान करती है और इसलिए संज्ञानात्मक विकास में सहायक है।
- बहु-उम्र व्यवस्था में बच्चों को अपने अधिगम- अनुभवों को चुनने का अवसर मिलता है।
- इसके अतिरिक्त , बहु-उम्र व्यवस्था में प्रयुक्त विभिन्न शिक्षण विधियाँ बच्चों को कई तरीकों से ज्ञान प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती हैं।

ब्रूनर का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से बहुत साम्यता रखता है। पियाजे की तरह ब्रूनर का सिद्धान्त भी बच्चे के शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में अधिक प्रयोज्य है। ब्रूनर के अनुसार शिक्षकों को बच्चे के शैक्षिक उद्देश्यों के लिए उसके आन्तरिक कल्पना विकास का उपयोग करना चाहिए। बच्चे को यह मानसिक कल्पना उसे उसके अनुभवों के संरक्षण एवं नए अनुभवों के साथ अग्रसर होने में सक्षम बनाएगी। इस तरह, यह सिद्धान्त शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर विशाल प्रभाव छोड़ता है। ब्रूनर के सिद्धान्त के व्यावहारिक पहलू को जानने हेतु इसके शैक्षिक निहितार्थ की चर्चा विस्तृत रूप में की गई।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वर्गीकरण
2. ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीके निम्न हैं-
    i. सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित)
    ii. दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा- आधारित)
    iii. सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित)
3. संज्ञानात्मक विकास
4. मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है।
5. सूचनाओं
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम हैं- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक।
7. संज्ञानात्मक विकास
8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम हैं-
    i. सक्रियता अवस्था (Enactive)
    ii. दृश्य प्रतिमा अवस्था (Iconic)
    iii. सांकेतिक अवस्था (Symbolic)

9. सक्रियता अवस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओंके उत्पादों के द्वारा वातावरण को समझता है।
10. दृश्य प्रतिमा
11. सक्रियताप्रदर्शन
12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम हैं –
    i. दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन
    ii. दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन

3.9 सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. ब्रूनर , जे0 (1960). दी प्रॉसेकस ऑफ एजूकेशन कैम्ब्रीज, एमएः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस हार्ले, 1995.
2. ब्रूनर , जे0 एस0 (1966). टूवर्डस् अ थीयरी ऑफ इन्स्ट्रक्शन, कैम्ब्रीज, मास0 वेल्काप्प प्रेस 176 + x ग पेजेज.
3. ब्रूनर , जे0 एस0 (1971). दी रेलीवेन्स ऑफ एजूकेशन , न्यूयार्कः नार्टन,
4. ब्रूनर , जे0 (1996). दी कल्चर ऑफ एजूकेशन, कैम्ब्रीज, मास0◌ः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 224 + xvi पेजेज.
5. ब्रूनर , जे0 (1973). गोइंग बियॉन्ड दी इन्फार्मेशन गीवेन, न्यूयार्क: नार्टन.
6. ब्रूनर , जे0 (1983). चाइल्ड्स टॉक: लर्निंग टू यूस लैंग्वेज, न्यूर्याक: नार्टन.
7. ब्रूनर , जे0 (1986). एक्चुअल माइन्ड्स, पॉसिबल वल्ड्स, कैम्ब्रीज, एम एः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

3.10निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञान’ से आप क्या समझते हैं ? संज्ञानात्मक प्रक्रिया के पाँच उदाहरण लिखिए।
2. आप यह कैसे कह सकते है कि संज्ञान में परिवर्तन मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों होता है? उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।
3. अधिगम और बौद्धिक विकास में वर्गीकरण कैसे सहायक है?
4. आप मानसिक प्रदर्शन से क्या समझते हैं? सभी तीन प्रकार के मानसिक प्रदर्शनों केलिए उपर्युक्त उदाहरण दीजिए।
5. ज्ञान की क्रियात्मक क्षमता की वृद्धि में खोज अधिगम कैसे सहायक है?
6. क्या आप इस कथन से सहमत है कि “अधिगम प्रक्रिया अनुभवों की पुनर्रचना है”? सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

7. सांकेतिक अवस्था (जो केवल सक्रियता एवं प्रतिमा अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात आती है) को प्राप्त करना संज्ञानात्मक विकास का उच्चतम स्तर है, को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
8. एक शिक्षक या अनुदेशक के रूप में आप ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को कैसे प्रयोग कर सकेंगें?

खण्ड -3

Block- 3

इकाई 1- जनसंचार माध्यम की खबर/आवाज, जनसंचार माध्यम का विश्लेषण, जनसंचार माध्यम की टिप्पणी और जनसंचार माध्यम वाद-विवाद के द्वारा दर्शाए गए बचपन और कार्य का विचार

Children as Wage Earners/Domestic Helpers(श्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चे) -Looking at idea of work and childhood as depicted in media reports ,media analysis ,media comments and panel discussion.

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 श्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चों की परिभाषा तथा अर्थ
    1.3.1 बाल श्रम या बाल मजदूरी
    1.3.2 श्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चों के अधिकार
1.4 श्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चों कीश्रेणी, बाल मजदूरी कारण तथा भारत में बाल श्रम कानून
    1.4.1 बाल मजदूरी को 3 श्रेणीयां
    1.4.2 बाल मजदूरी के बढ़ने के कारण
    1.4.3 भारत में बाल श्रम कानून
1.5 बाल श्रम समाज के लिए एक अभिशाप
1.6 भारत में बाल श्रम के खिलाफ राष्ट्रीय कानून और नीतियां
1.7 बाल मजदूरी की समस्या में स्वैछिक संस्थाओं की भूमिका
1.8 अशिक्षा और बाल मजदूर
1.9 सारांश
1.10 शब्दाबली
1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1प्रस्तावना

बाल-श्रम का मतलब ऐसे कार्य से है जिसमे की कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से छोटा होता है। इस प्रथा को कई देशों और अंतर्राष्ट्रीय संघटनों ने शोषित करने वाली माना है। अतीत में बाल श्रम का कई प्रकार से उपयोग किया जाता था, लेकिन सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा के साथ औद्योगीकरण, काम करने की स्थिति में परिवर्तन तथा कामगारों श्रम अधिकार और बच्चों अधिकार की अवधारणाओं के चलते इसमे जनविवाद प्रवेश कर गया। बाल श्रम अभी भी कुछ देशों में आम है।लोकसम्पर्क या जनसम्पर्क या जनसंचार (Mass communication) से तात्पर्य उन सभी साधनों के अध्ययन एवं विश्लेषण से है जो एक साथ बहुत बड़ी जनसंख्या के साथ संचार सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं। प्रायः इसका अर्थ सम्मिलित रूप से समाचार पत्र,पत्रिकाएँ,रेडियो,दूरदर्शन,चलचित्र से लिया जाता है जो समाचार एवं विज्ञापन दोनो के प्रसारण के लिये प्रयुक्त होते हैं।जनसंचार माध्यम में संचार शब्द की उत्पति संस्कृत के 'चर'धातु से हुई है जिसका अर्थ है चलना। अब यह स्पष्ट है कि लोकसंपर्क की दृष्टि से वर्तमान युग में समाचारपत्रों, संवाद समितियों, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म तथा इसी प्रकार से अन्य साधनों का विशेष महत्व है। यह स्थिति केवल भारत में ही नहीं है बल्कि, विदेशों में है। लोकसंपर्क की दृष्टि से वहाँ इन साधनों का खूब उपयोग किया जाता है।किसी भी क्षेत्र में बच्चों द्वारा अपने बचपन में दी गई सेवा को बाल मजदूरी कहतेहै। इसे गैर-जिम्मेदार माता-पिता की वजह से, या कम लागत में निवेश पर अपने फायदे कोबढ़ाने के लिये मालिकों द्वारा जबरजस्ती बनाए गए दबाव की वजह से जीवन जीने के लियेजरुरी संसाधनों की कमी के चलते ये बच्चों द्वारा स्वत: किया जाता है, इसका कारणमायने नहीं रखता क्योंकि सभी कारकों की वजह से बच्चे बिना बचपन के अपना जीवन जीनेको मजबूर होते है। बचपन सभी के जीवन में विशेष और सबसे खुशी का पल होता है जिसमेंबच्चे प्रकृति, प्रियजनों और अपने माता-पिता से जीवन जीने का तरीका सीखते है।सामाजिक, बौद्धिक, शारीरिक, और मानसिक सभी दृष्टीकोण से बाल मजदूरी बच्चों कीवृद्धि और विकास में अवरोध का काम करता है।इसकी वजह से बच्चे बचपन के प्यारे लम्हों से दूर हो जाते है, जो हर एक के जीवनका सबसे यादगार और खुशनुमा पल होता है। ये किसी बच्चे के नियमित स्कूल जाने कीक्षमता को बाधित करता है जो इन्हें समाजिक रुप से देश का खतरनाक और नुकसान दायकनागरिक बनाता है। बाल मजदूरी को पूरी तरह से रोकने के लिये ढ़ेरों नियम-कानून बनानेके बावजूद भी ये गैर-कानूनी कृत्य दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है।भयंकर गरीबी और खराब स्कूली मौके की वजह से बहुत सारे विकासशील देशों में बालमजदूरी बेहद आम बात है। बाल मजदूरी की उच्च दर अभी भी 50 प्रतिशत से अधिक है जिसमें 5 से 14साल तक के बच्चे विकासशील देशों में काम कर रहे है। कृषि क्षेत्र में बालमजदूरी की दर सबसे उच्च है जो ज्यादातर ग्रामीण और अनियमित शहरी अर्थव्यवस्था मेंदिखाई देती है जहाँ कि अधिकतर बच्चे अपने दोस्तों के साथ खेलने और स्कूल भेजने केबजाए प्रमुखता से अपने माता-पिता के द्वारा कृषि कार्यों में लगाये गये है।

1.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. श्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चों की परिभाषा तथा अर्थ समझने में सक्षम होंगे।
2. बाल मजदूरी कीश्रेणीयों, बाल मजदूरी के बढ़ने के कारणों तथा भारत में बाल श्रम कानून की व्याख्या कर सकेंगे।
3. बाल मजदूरी को देश और समाज के लिए एक अभिशाप समझने में सक्षम होंगे।
4. राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के तहत शामिल नीति को समझने में सक्षम होंगे।
5. भारत में बाल श्रम के खिलाफ राष्ट्रीय कानून और नीतियां को समझने में सक्षम होंगे।
6. बाल मजदूरी की समस्या में स्वैछिक संस्थाओं की भूमिका कीव्याख्या कर सकेंगे।
7. अशिक्षा औरश्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चों के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

1.3श्रमजीवी/घरेलू सहायक बचों की परिभाषा तथा अर्थ

बाल मजदूरी बच्चों से लिया जाने वाला काम है जो किसी भी क्षेत्र में उनकेमालिकों द्वारा करवाया जाता है। ये एक दबावपूर्ण व्यवहार है जो अभिवावक या मालिकोंद्वारा किया जाता है। बचपन सभी बच्चों का जन्म सिद्ध अधिकार है जो माता-पिता केप्यार और देख-रेख में सभी को मिलना चाहिए, ये गैरकानूनी कृत्य बच्चों को बड़ों कीतरह जीने पर मजबूर करता है। इसके कारण बच्चों के जीवन में कई सारी जरुरी चीजों कीकमी हो जाती है जैसे- उचित शारीरिक वृद्धि और विकास, दिमाग का अनुपयुक्त विकास, सामाजिक और बौद्धिक रुप से अस्वास्थ्यकर आदि।

इसकी वजह से बच्चे बचपन के प्यारे लम्हों से दूर हो जाते है, जो हर एक के जीवनका सबसे यादगार और खुशनुमा पल होता है। ये किसी बच्चे के नियमित स्कूल जाने कीक्षमता को बाधित करता है जो इन्हें समाजिक रुप से देश का खतरनाक और नुकसान दायकनागरिक बनाता है। बाल मजदूरी को पूरी तरह से रोकने के लिये ढ़ेरों नियम-कानून बनानेके बावजूद भी ये गैर-कानूनी कृत्य दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। वेश्यावृत्ति या उत्खनन, कृषि, माता पिता के व्यापार में मदद, अपना स्वयं का लघु व्यवसाय (जैसे खाने पीने की चीजे बेचना), या अन्य छोटे मोटे काम हो सकते हैं कुछ बच्चे पर्यटकों के गाइड के रूप में काम करते हैं, कभी-कभी उन्हें दुकान और रेस्तरां (जहाँ वे वेटर के रूप में भी काम करते हैं) के काम में लगा दिया जाता है। अन्य बच्चों से बलपूर्वक परिश्रम-साध्य और दोहराव वाले काम लेते हैं जैसे :बक्से को बनाना, जूते पॉलिश, स्टोर के उत्पादों को भंडारण करना और साफ-सफाई करना. हालांकि, कारखानों और मिठाई की दूकान, के अलावा अधिकांश बच्चे अनौपचारिक क्षेत्र में काम करते हैं, जैसे "सड़कों पर कई चीज़ें बेचना, पटाकों के कारखानों में, कृषि में काम करना या [बच्चों का घरेलू कार्य, घरों में छिप कर काम करना] - ये कार्य सरकारी श्रम निरीक्षकों और मीडिया की जांच की पहुँच से दूर रहते है। "और ये सभी काम सभी प्रकार के मौसम में तथा न्यूनतम वेतन के लिए किया गया था यूनिसेफ के अनुसार, दुनिया में लगभग २.५ करोड बच्चे, जिनकी आयु २-17 साल के बीच है वे बाल-श्रम में लिप्त हैं, जबकि इसमें

घरेलू श्रम शामिल नही है। सबसे व्यापक अस्वीकार कर देने वाले बाल-श्रम के रूप हैं जिनमे [बच्चों का सैन्य उपयोग|बच्चों के सैन्य उपयोग] साथ ही बाल वेश्यावृत्ति . शामिल है। कम विवादास्पद और कुछ प्रतिबंधों के साथ कानूनी रूप से मान्य कुछ काम है जैसे बाल अभिनेता और बाल गायक, साथ ही साथ स्कूलवर्ष (सीजनल कार्य) के बाद का कार्य और अपन कोई व्यापार जो स्कूल के घंटों के बाद होने काम आदि शामिल है।

अभ्यास प्रश्न

1. _________से तात्पर्य उन सभी साधनों के अध्ययन एवं विश्लेषण से है जो एक साथ बहुत बड़ी जनसंख्या के साथ संचार सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं।

1.3.1बाल श्रम या बाल मजदूरी

बाल श्रम आमतौर पर मजदूरी के भुगतान के बिना या भुगतान के साथ बच्चों से शारीरिककार्य कराना है। बाल श्रम केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, ये एक वैश्विक घटनाहै।
जहां तक भारत का संबंध है, ये मुद्दा बहुत ही पेचीदा है क्योंकि भारत में बच्चेपुराने समय से ही अपना माता-पिता के साथ खेतों में और अन्य प्रारम्भिक कार्यों मेंमदद कराते हैं। एक इससे ही संबंधित अन्य अवधारणा जिसकी इस समय व्याख्या करने कीजरुरत है, वो है बंधुआ मजदूरी, जो शोषण का सबसे सामान्य रुप है। बंधुआ मजदूरी काअर्थ, माता-पिता द्वारा अत्यधिक ब्याज की दरों की अदायेगी के कारण, कर्ज के भुगतानके लिये बच्चों को मजदूरों के रुप में कार्य करने के लिये मजबूर करना है।

बंधुआ मजदूर की अवधारणा से जुड़ी अवधारणा शहरी बाल मजदूर अवधारणा है जहां मजदूरगली के बच्चे होते हैं जो अपना लगभग पूरा बचपन गलियों में मजदूरी करते हुये व्यतीतकर देते हैं।

अभ्यास प्रश्न

2. बाल श्रम आमतौर पर मजदूरी के भुगतान के बिना या भुगतान के साथ बच्चों से_________कार्य कराना है।

1.3.2 श्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चों के अधिकार

यह अनुचित या शोषित माना जाता है यदि निश्चित उम्र से कम में कोई बच्चा घर के काम या स्कूल के काम को छोड़कर कोई अन्य काम करता है। किसी भी नियोक्ता को एक निश्चित आयु से कम के बच्चे को किराए पर रखने की अनुमति नहीं है। न्यूनतम आयु देश पर निर्भर करता है; जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में

बाल श्रम कानून ने किसी प्रतिष्ठान में बिना माता पिता की सहमति के न्यूनतम उम्र १६ वर्ष निर्धारित किया है।

औद्योगिक क्रांति में चार साल के कम उम्र के बच्चों को कई बार घातक और खतरनाक काम की स्थितियों के साथ उत्पादन वाले कारखाने में कार्यरत थे। *अंग्रेजी श्रमिक वर्ग का बनना*, (पेंगुइन, १६८), पीपी. अब अमीर देशों ने मज़दूरों के रूप में बच्चों के इस्तेमाल को समझा है और इस आधार पर इसे मानव अधिकार का उल्लंघन माना हैं और इसे गैरकानूनी घोषित किया है जबकि कुछ गरीब देशों ने इसे बर्दाश्त या अनुमति दिया है।

1990 के दशक में दुनिया के प्रत्येक देश ने सोमालिया और संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर बाल अधिकार के सम्मेलन, . के दौरान हस्ताक्षर किए. सबसे ताकतवर अंतरराष्ट्रीय कानूनी भाषा है जो अवैध बाल श्रम पर रोक लगाता है, हालाँकि यह बाल श्रम को अवैध नहीं मानता है।

बहुत से गरीब परिवार अपने बच्चों के मजदूरी के सहारे हैं। कभी कभी ये ही उनके आय के स्रोत है। इस प्रकार का कार्य अक्सर दूर छिप कर होता है क्योंकि अक्सर ये कार्य औद्योगिक क्षेत्र में नहीं होतें है। बाल श्रम कृषि निर्वाह और शहरो के अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत है, बच्चों के घरेलू काम में योगदान भी महत्वपूर्ण है। बच्चो को लाभ मुहैया कराने के लिए, बाल श्रम निषेध को दोनों अल्पावधि आय और दीर्घावधि संभावनाओं के साथ दोहरी चुनौती से निपटने के लिए काम करना है। कुछ युवाओं के अधिकार के समूहों यद्यपि, एक निश्चित आयु से नीचे के बच्चे को काम करने से रोक कर, बच्चों के विकल्प कम करने को मानव अधिकारों का उल्लंघन मानते है ।

1.4 श्रमजीवी/घरेलू सहायक बच्चों कीश्रेणी, बाल मजदूरी कारण तथा भारत में बाल श्रम कानून

बाल मजदूरी भारत में बड़ा सामाजिक मुद्दा बनता जा रहा है जिसे नियमित आधार पर हलकरना चाहिए। ये केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं है बल्कि इसे सभी सामाजिक संगठनों, मालिकों, और अभिभावकों द्वारा भी समाधित करना चाहिए। ये मुद्दा सभी के लिये है जोकिव्यक्तिगत तौर पर सुलझाना चाहिए, क्योंकि ये किसी के भी बच्चे के साथ हो सकताहै।

1.4.1 बाल मजदूरी को 3 श्रेणीयां

यूनीसेफ ने बाल मजदूरी को 3 श्रेणी में विभाजित किया है:

i. **परिवार के साथ** –बच्चे घर के कार्यों में बिना किसी वेतन केलगे होते हैं।
ii. **परिवार के साथ पर घर के बाहर** –उदाहरण के लिए, कृषि मजदूर, घरेलू मजदूर, सीमान्त मजदूर आदि।

iii. **परिवार से बाहर** –उदाहरण के रुप में, व्यवसायिक दुकानों जैसे:होटलों में बच्चों से कार्य कराना, चाय बेचने का कार्य कराना, वैश्यावृति आदि।

अभ्यास प्रश्न

---

3. यूनीसेफ ने बाल मजदूरी को_____________श्रेणी में विभाजित किया है।

1.4.2बाल मजदूरी के बढ़ने के कारण

अत्यधिक जनसंख्या, अशिक्षा, गरीबी, ऋण जाल आदि सामान्य कारण हैं जो इस मुद्दे केप्रमुख यंत्र है। अत्यधिक ऋण जाल से ग्रस्त माता-पिता, सामान्य बचपन के महत्व को अपनी परेशानियोंके दबाव के कारण समझने में असफल होते हैं और इस प्रकार ये बच्चों के मस्तिष्क काघटिया भावनात्मक और मानसिक संतुलन को नेतृत्व करता है जो कठिन क्षेत्रों या घरेलूकार्यों को करने के लिये तैयार नहीं होते। राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी कपड़ों के उद्योग में अधिक काम और कमवेतन के भुगतान के लिये बच्चों को भर्ती करती है जो बिल्कुल अनैतिक है।

1.4.3भारत में बाल श्रम कानून

भारत में बाल मजदूरी की समस्या सभी के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही एकचिन्ता का विषय बन गयी है। भारत के संविधान की प्रारुप समिति इस संबंध में बिनाकिसी अन्य देश की सिफारिशों के आधार पर, अपने दम पर कानून तैयार करना चाहती थी। जिससमय भारत ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण के अधीन था, उसने केवल यही बोध कराया किप्रावधान शोषणकारी मजदूरी के रुप को ध्यान में रखकर बनाये गये है और भारत शोषणकारीनृशंस शासन व्यवस्था के बीच है।

भारत में बाल मजदूरी को रोकने के लिये बनाये गये प्रारम्भिक कानून जब बना तब बालरोजगार अधिनियम ।938 पारित हुआ। ये अधिनियम बड़े दुखान्त अंत के साथ असफल हुआ। इसकेअसफल होने का सबसे बड़ा कारण गरीबी का होना था क्योंकि निर्धनता बच्चों को मजदूरीकरने के लिये मजबूर करती है।

भारतीय संसद ने बाल श्रम या मजदूरी से बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लियेसमय-समय पर कानून और अधिनियम पारित किये हैं। 14साल की आयु से कम के बच्चों कोकिसी फैक्ट्री या खदानों में या खतरनाक रोजगारों (जहाँ जान जाने का ज्यादा जोखिमहो) में बाल मजदूरी को निषेध करने के लिये हमारे संविधान में अनुच्छेद 24 केअन्तर्गत मौलिक अधिकारों को स्थापित किया गया है। इसके अलावा, अनुच्छेद 21कोअन्तर्गत, ये भी प्रावधान किया गया है कि, एक राज्य 6 से 14साल तक के बच्चे के लिएमुफ्त शिक्षा के लिये सभी आधारिक संरचना और संसाधन उपलब्ध करायेगा।

संविधान के तहत बच्चों की बाल श्रम से सुरक्षा का नियमन करने के वाले कानूनों काएक समूह मौजूद है। कारखाना अधिनियम 1948, 14साल तक की आयु वाले बच्चोंको कारखानेमें काम करने से रोकता है। खदान अधिनियम 1986, 18 साल से कम आयु वाले बच्चों काखदानों में काम करना निषेध करता है। बाल श्रम अधिनियम (निषेध एवं नियमन) ।986, 14साल से कम आयु वाले बच्चों को जीवन को जोखिम में डालने वाले व्यवसायों में, जिन्हेंकानून द्वारा निर्धारित की गयी सूची में शामिल किया गया है, में काम करना निषेधकरता है। इसके अलावा, बच्चों का किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2000 नेबच्चों के रोजगार को एक दंडनीय अपराध बना दिया है।

1.5 बाल श्रम समाज के लिए एक अभिशाप

November 20, 2009May 26, 2014सौमित्र मोहन1,977 (Comments)

यह माना जाता है कि भारत में 14 साल के बच्चों की आबादी पूरी अमेरिकी आबादी से भी ज़्यादा है।भारत में कुल श्रम शक्ति का लगभग 3.6 फीसदी हिस्सा 14 साल से कम उम्र के बच्चों का है. हमारे देश में हर दस बच्चों में से 9 काम करते हैं. ये बच्चे लगभग 85 फीसदी पारंपरिक कृषि गतिविधियों में कार्यरत हैं, जबकि 9 फीसदी से कम उत्पादन, सेवा और मरम्मती कार्यों में लगे हैं।सिर्फ 0.8 फीसदी कारखानों में काम करते हैं।

आमतौर पर बाल मज़दूरी अविकसित देशों में व्याप्त विविध समस्याओं का नतीजा है।भारत सरकार दूसरे राज्यों के सहयोग से बाल मज़दूरी ख़त्म करने की दिशा में तेज़ी से प्रयासरत है। इस लक्ष्य को हासिल

करने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (एनसीएलपी) जैसे महत्वपूर्ण क़दम उठाए हैं।आज यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस परियोजना ने इस मामले में काफ़ी अहम कार्य किए हैं।इस परियोजना के तहत हज़ारों बच्चों को सुरक्षित बचाया गया है। साथ ही इस परियोजना के तहत चलाए जा रहे विशेष स्कूलों में उनका पुनर्वास भी किया गया है।इन स्कूलों के पाठ्यक्रम भी विशिष्ट होते हैं, ताकि आगे चलकर इन बच्चों को मुख्यधारा के विद्यालयों में प्रवेश लेने में किसी तरह की परेशानी न हो।ये बच्चे इन विशेष विद्यालयों में न सिर्फ़ बुनियादी शिक्षा हासिल करते हैं, बल्कि उनकी रुचि के मुताबिक़ व्यवसायिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है।राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के तहत इन बच्चों के लिए नियमित रूप से खानपान और चिकित्सकीय सहायता की व्यवस्था है।साथ ही इन्हें एक सौ रुपये मासिक वजीफ़ा दिया जाता है।

ग़ैर सरकारी संगठनों या स्थानीय निकायों द्वारा चलाए जा रहे ऐसे स्कूल इस परियोजना के अंतर्गत अपना काम भलीभांति कर रहे हैं।हज़ारों बच्चे मुख्य धारा में शामिल हो चुके हैं, लेकिन अभी भी कई बच्चे बाल मज़दूर की ज़िंदगी जीने को मजबूर हैं।समाज की बेहतरी के लिए इस बीमारी को जड़ से उखाड़ना बहुत ज़रूरी है।एनसीएलपी जैसी परियोजनाओं के सामने कई तरह की समस्याएं हैं. यदि हम सभी इन समस्यायों का मूल समाधान चाहते हैं तो हमें इन पर गहनता से विचार करने की ज़रूरत है।इस संदर्भ में सबसे पहली ज़रूरत है 14 साल से कम उम्र के बाल मज़दूरों की पहचान करना।आख़िर वे कौन से मापदंड हैं, जिनसे हम 14 साल तक के बाल मज़दूरों की पहचान करते हैं और जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्य हों? क्या हमारा तात्पर्य यह होता है कि जब बच्चा 14 साल का हो जाए तो उसकी देखभाल की जिम्मेदारी राज्य की हो जाती है? हम जानते हैं कि ग़रीबी में अपना गुज़र-बसर कर रहे बच्चों कोपरवरिश की ज़रूरत है।कोई बच्चा जब 14 साल का हो जाता है और ऐसे में सरकार अपना सहयोग बंद कर दे तो मुमकिन है कि वह एक बार फिर बाल मज़दूरी के दलदल में फंस जाए।यदि सरकार ऐसा करती है तो यह समस्या बनी रह सकती है और बच्चे इस दलदल भरी ज़िंदगी से कभी बाहर ही नहीं निकल पाएंगे। कुछ लोगों का मानना है और उन्होंने यह प्रस्ताव भी रखा है कि बाल मज़दूरों की पहचान की न्यूनतम आयु बढ़ाकर ।8 साल कर देनी चाहिए. साथ ही सभी सरकारी सहायताओं मसलन मासिक वजीफ़ा, चिकित्सा सुविधा और खानपान का सहयोग तब तक जारी रखना चाहिए, जब तक कि बच्चा ।8 साल का न हो जाए।

भारत में बाल श्रम मजदूरों का आंकड़ा

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार दुनिया भर में 21 करोड़ से अधिक बच्चों से मजदूरी करवाई जाती है. भारत में सबसे ज्यादा होता है बाल श्रम।

© Debarati Mukherji
© Debarati Mukherji

दुनिया में ऐसे 71 देश हैं जहां बच्चों से मजदूरी करवाई जाती है।अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) की नई रिपोर्ट में 140 देशों का आंकलन किया गया है।'फाइंडिंग्स ऑन द वर्स्ट फॉर्म्स ऑफ चाइल्ड लेबर' नाम की इस रिपोर्ट में ऐसी 130 चीजों की सूची बनाई गई है जिन्हें बनाने के लिए बच्चों से काम करवाया जाता है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि ईंटें तैयार करने से ले कर मोबाइल फोन के पुर्जे बनाने तक के कई काम बच्चों से लिए जाते है।

आईएलओ का कहना है कि दुनिया में एक तिहाई देशों ने अब तक ऐसी सूची बनाई ही नहीं है जिस से वे तय कर सकें कि कौन से काम बच्चों के लिए हानिकारक हो सकते हैं।कई देशों में काम करने की कोई न्यूनतम उम्र तय नहीं की गई है, और उन देशों में जहां बाल श्रम के खिलाफ कानून हैं वहां इनका ठीक तरह से पालन नहीं किया जाता।विकासशील देशों में बाल श्रमिकों की संख्या सब से ज्यादा है।अफ्रीका और एशिया के कई देशों में यह एक बड़ी समस्या है।

सूची में बताए गए उत्पादों में से बीस ऐसे हैं जो भारत में बनाए जाते हैं।यह सबसे ज्यादा है. इनमें बीड़ी, पटाखे, माचिस, ईंटें, जूते, कांच की चूड़ियां, ताले, इत्र और फुटबॉल शामिल हैं. साथ ही बच्चों से कालीन बनवाए जाते हैं, कढ़ाई करवाई जाती है और रेशम के कपड़े भी उन्हीं से बनवाए जाते हैं।ये काम बारीक होते हैं, इसलिए बच्चों के नन्हें हाथों की जरूरत पड़ती है।रेशम के तार खराब ना हो जाएं इसलिए बच्चों से कपड़े बनवाए जाते हैं।

भारत के बाद बांग्लादेश और फिलीपीन्स के नाम इस सूची में दिए गए हैं. बांग्लादेश में 14 उत्पादों का जिक्र किया गया है जो भारत में बनने वाले उत्पादों जैसे ही हैं।इन में स्टील का फर्नीचर बनाना और चमड़े का काम भी शामिल है. वहीं फिलीपीन्स में बच्चों से खेती का काम कराया जाता है। केला, नारियल, भुट्टा, चावल, गन्ना और तम्बाकू - इन सब की खेती में बच्चों से मजदूरी करवाई जाती है।साथ ही गहने और अश्लील फिल्मों के लिए इस्तेमाल होने वाला समान भी उनसे बनवाया जाता है।

भारत की स्थिति

अमेरिका की श्रम मंत्री हिल्डा सोलीस ने इस पर खेद जताते हुए कहा, "मेरा मानना है कि भगवान ने हम सब को कोई ना कोई खूबी दी है...हमारा फर्ज बनता है कि हम हर बच्चे को उसके सपने पूरे करने में मदद करें।" श्रम विभाग में अंतरराष्ट्रीय मामलों पर नजर रखने वाली सेंड्रा पुलास्की ने भारत का बचाव करते हुए कहा कि भारत का नाम सूची में सबसे ऊपर होने का मतलब यह नहीं है कि उसने अपनी आंखों पर पट्टी बांधी हुई है, बल्कि इसकी वजह यह है कि भारत की आबादी बहुत ज्यादा है, "भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है. देश जितना बड़ा होगा और वहां जितनी ज्यादा गरीबी होगी, यह सब उतना ही ज्यादा देखने को मिलेगा।" 2010 में भारत में बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य करने पर पुलास्की ने भारत को बधाई देते हुए कहा, "भारत सरकार का खुद यह कहना है कि उन्हें इस दिशा में अभी और बहुत काम करना है।"

1.6 भारत में बाल श्रम के खिलाफ राष्ट्रीय कानून और नीतियां

कानून

भारत का संविधान (26 जनवरी 1950) मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत की विभिन्न धाराओं के माध्यम से कहता है-

- 14 साल के कम उम्र का कोई भी बच्चा किसी फैक्टरी या खदान में काम करने के लिए नियुक्त नहीं किया जायेगा और न ही किसी अन्य खतरनाक नियोजन में नियुक्त किया जायेगा (धारा 24)।
- राज्य अपनी नीतियां इस तरह निर्धारित करेंगे कि श्रमिकों, पुरुषों और महिलाओं का स्वास्थ्य तथा उनकी क्षमता सुरक्षित रह सके और बच्चों की कम उम्र का शोषण न हो तथा वे अपनी उम्र व शक्ति के प्रतिकूल काम में आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रवेश करें (धारा 39-ई)।
- बच्चों को स्वस्थ तरीके से स्वतंत्र व सम्मानजनक स्थिति में विकास के अवसर तथा सुविधाएं दी जायेंगी और बचपन व जवानी को नैतिक व भौतिक दुरुपयोग से बचाया जायेगा (धारा 39-एफ)।
- संविधान लागू होने के 10 साल के भीतर राज्य 14 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करेंगे (धारा 45)।

सरकारी नीतियां और कार्यक्रम

भारत के विकास लक्ष्यों और रणनीतियों को जारी रखते हुए 1987 में एक राष्ट्रीय बाल श्रम नीति को अंगीकार किया गया1 राष्ट्रीय नीति भारत के संविधान में राज्य के नीति -निर्देशक नीतियों को दोहराती है। इसका संकल्प बच्चों के लाभ के लिए हरसंभव विकास कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करना और उन इलाकों में, जहां वेतन या अर्द्ध वेतन के लिए बाल श्रमिकों की संख्या अधिक हो, परियोजना आधारित कार्य योजना बनाने की है1 राष्ट्रीय बाल श्रम नीति (एनसीएलपी) को बाल श्रम (निषेध व नियमन) कानून, 1986 के लागू होने के बाद अंगीकार किया गया।

श्रम एवं नियोजन मंत्रालय बाल श्रमिकों के पुनर्वास के लिए 1988 से ही राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजनाओं के माध्यम से ही एनसीएलपी को कार्यान्वित कर रहा है। आरंभ में ये परियोजनाएं उद्योग विशेष पर केंद्रित थीं और इनका उद्देश्य बाल श्रमिकों के नियोजन के लिए पारंपरिक रूप से ख्यात उद्योगों में काम करनेवाले बच्चों का पुनर्वास था।

संवैधानिक व्यवस्थाओं को लागू करने के लिए नवीकृत संकल्प का परिणाम यह हुआ कि बाल श्रम के लिए ख्यात जिलों में खतरनाक काम में लगे बच्चों का पुनर्वास करने के लिए 1994 में एनसीएलपी का दायरा बढ़ाया गया।एनसीएलपी की रणनीति में अनौपचारिक शिक्षा तथा प्राक-व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए विशेष विद्यालय स्थापित करने, अतिरिक्त आमदनी और रोजगार

सृजन के अवसर पैदा करने, लोगों में जागरूकता पैदा करने और बाल श्रम के बारे में सर्वेक्षण तथा मूल्यांकन करने का काम शामिल है।

1.7बाल मजदूरी की समस्या में स्वैछिक संस्थाओं की भूमिका

हमारे समाज में चली आ रही शोषण परम्परा का बाल मजदूरी एक अभिन्न अंग बनता है, यह ऑद्योगिकरण की प्रक्रिया से उभरे मालिक – मजदूर समीकरण का विस्तार है। वैसे तो दुनिया के अन्य देशों में भी यह एक विकट समस्या का रूप ले चुका है। लिकिन भारत में इसका रूप कुछ और ही भयावह है। क्योंकि इसके चलते भावी भारत की तस्वीर सचमुच उस समय धुंधली दिखने लगती है जब हम यहाँ के लगभग पांच- छ: करोड़ बच्चों को मजदूरी के बोझ से दबा रहने को बाध्य पाते हैं। आज जहाँ उन्हें एक अच्छा नागरिक बनाने की ओर आगे कदम बढ़ाना चाहिए था, वहीं वे खेतों तथा कल – कारखानों में पसीने पोंछते दिखलाई देते हैं।

बाल मजदूरी की समस्या कहीं- कहीं गरीबी के मूल में दिखती है तो कहीं स्वयं गरीबी ही इसकी जड़ में समायी हुई है। कहीं बाल मजदूरों के माता पिता उनके शोषण के जिम्मेदार लगते हैं तो कहीं उत्पादक व ललक। कहीं समाज सुधारकों की टोलियाँ इस समस्या के निदान को लेकर जूझ रही हैं तो कहीं समाज के विचारक अलग- अलग समूहों में इसके कारणों का पता लगाने के लिए सिर खपा रहे हैं। यहाँ तक की विदेशी सहायता के लोभ में फंसकर कहीं गैर सरकारी संस्थाओं के लोगों की इजारेदारी दिखती है तो कहीं तथाकथित नेता इन बच्चों की मेहनत- मशक्कत की आंच में अपनी राजनीति की रोटी सेंकते रहते है।

वर्ष 1991 की जनगणना रिपोर्ट आ चुकी है। उसमे बाल मजदूरों का कहीं जिक्र नहीं है। सरकारी प्रवक्ता भी अपनी अक्षमता स्वीकार करते हैं। वैसे राष्ट्रीय श्रम संस्थान के मुताबिक चालू दशक के प्रारंभ में लगभग छ: करोड़ बच्चे मजदूरी कर रहे थे, जबकि उत्तर प्रदेश में उनकी संख्या लगभग 25 प्रतिशत मानी जाती है। सामन्यात: पूर्वाचल के कालीन उद्योग के अतिरिक्त, मुरादाबाद का पीतल उद्योग, खुर्जा का चीनी – मिट्टी, अलीगढ़ का ताला, फिरोजाबाद का कांच (चूड़ी) के उद्योगों उनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक बतलाई गयी है। विचारणीय विषय है की सन 1981 की जनगणना के बाद के वर्षों में राष्ट्रीय श्रम संस्थान द्वारा उत्तर प्रदेश के प्रमुख उद्योगों में बाल मजदूरी में लगे बच्चों की संख्या को लेकर विभिन्न स्तरों से अनेक सम्स्य का स्वरूप, जहाँ-तहाँ उनको शोषण से मुक्ति दिलाने का प्रयास अथवा उन्हें जीवन में पूनर्स्थापित कराने से सम्बन्धित मुद्दों को लेकर जो बाते उभरी हैं उनमे भी सभी लोग एक मत नहीं लगते1 सरकार ने भी इस ओर अभी तक कुछ अधिकृत व ठोस प्रयास प्रारंभ नहीं किये हैं। विभिन्न स्वैछिक प्रयासों के अर्न्तगत लोगों ने छिटपूट तरीके से जहाँ तहाँ जो आंकड़े तैयार किये हैं, उनमें एकरूपता नहीं दिखती। फलस्वरूप इस समस्या की सघनता के मापदंड (स्टैंडर्ड), उससे जूझने के प्रतिमान (पैरामीटर्स), तथा इसके निराकरण हेतु कहीं कोई संकेतक (इंडीकेटरस) निर्धारित नहीं किये जा सके। कूल मिलकर इस समस्या के प्रति हमारी नियति पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाली यह कमियाँ वास्तूत: चिंतनीय हैं, जिनकी अवहेलना करना घातक होगा। इस प्रकार सरकार, स्वैछिक संगठन, सामाजिक

विचारक तथा नियोजकों व प्रशासकों के बीच इस समस्या को लेकर जानकारी में जब एकरूपता में जब एकरूपता का अभाव है तो हम कैसे आशा कर सकते हैं की हम सबकी अपनी एक सही सोच (विचार शैली), राय और उपाय के प्रति कोई उपयुक्त दिशा हो सकेगी।

इस प्रकार की वैचारिक सोच की कमी तथा कार्यप्रणाली से सम्बन्धित भ्रांतियाँ के चलते "उपवन" जो बुनियादी तौर पर प्रदेश की स्वैछिक संस्थाओं का एक नेटवर्क संगठन है, का दायित्व हो जाता है की वह इस मुद्दे विभिन्न समस्याओं पर सही दृष्टिकोण तैयार करने की लिए सचेष्ट है । इस परिप्रेक्ष्य में इसके द्वारा राज्य स्तरीय सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

1.8अशिक्षा और बाल मजदूर

धारा – 45 में कहा गया है संविधान लागू होने के वर्षों के भीतर, राज्य ।4 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि: शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा।' निश्चय ही एक ऐसा श्रेष्ट आदर्श है जिस दिशा में राज्य को आगे बढ़ना चाहिए है । संविधान निर्माताओं को इसकी उम्मीद थी कि सातवें दशक के आरम्भिक वर्षों में राज्य के लिए संभव होगा कि वह सभी बच्चों के लिए स्कूलों की व्यवस्था कर दे । इस दशक के अंत तक कोई भी बच्चा ऐसा नहीं रह जायेगा जिसको शिक्षा न मिली हो । लेकिन संविधान निर्माताओं ने इसको मूलाधिकारों की कोटि में नहीं रखा था । यदि ऐसा होता तो वे राज्य को विवश करते । संविधान निर्माताओं को इस बात का अंदाजा लगाना संभव नहीं था कि राज्यों का विकास किस गति से होगा ।

गाँव				**शहर**			**कुल**		
शिक्षा स्तर	बालक	बालिका	कुल	बालक	बालिका	कुल	बालक	बालिका	कुल
1 निरक्षर	79.75	88.93	82.90	63.47	77.25	66.98	78.13	88.14	81.49
2 साक्षर बिना साक्षर	10.28	5.58	8.67	15.31	10.92	14.19	10.78	5.94	9.16
3 प्राथमिक शिक्षा	8.58	4.81	7.28	17.28	9.99	15.43	9.44	5.16	8.01
4 माध्यम शिक्षा	1.28	0.65	1.06	3.48	1.64	3.01	1.50	0.72	1.23
5 मैट्रिक/ सेकेंडरी	0.10	0.03	0.08	0.43	0.19	0.37	0.17	0.04	0.10
6 इंटर/ हायर सैकेंडरी	0.01	-	0.01	0.43	0.01	0.02	0.01	-	0.01
7 प्री. यूनिवर्सिटी	-	-	-	-	-	-	-	-	-
योग	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**	**100.00**
संख्या (दस लाख में)	**8.70**	**3.50**	**10.20**	**0.74**	**0.25**	**0.99**	**7.44**	**3.76**	**11.20**

स्रोत : रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, 1981,सेंसस

यदि राज्य शिक्षिका को 300, नान मैट्रिक शिक्षक को 250 रू. प्रदान किये जा रहे हैं। परंतु इन प्रयासों के बावजूद 6 से 14 वर्ष के आयु समूह के भारत में 16 करोड़ बच्चे निरक्षर हैं जो भारत की कूल निरक्षरता (48 प्रतिशत) का 40 प्रतिशत है इनमें से लगभग 50 प्रतिशत (6.50 करोड़) बच्चे पहली कक्षा से पाँचवी कक्षा तक पहुँचने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं 1 जो बच्चे पाँचवी कक्षा पूरी करते हैं उनका प्रतिशत 38 हैं, इसकी तुलना में चीन में 70, श्रीलंका में 91, सिंगापूर में 90 प्रतिशत है। यह बीमारी के देश के 4 हिंदी भाषी क्षेत्रों में विशेष है जिसे प्रो. आशीष बोस ने 'बीमारू क्षेत्र' का नाम दिया है ये राज्य हैं – बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश । जब 1 से 5वीं कक्षाओं में लड़कियों के दाखिला दर 1991-92 में पूरे देश में 88 प्रतिशत थी, तो इस बीमारू क्षेत्र में यह 50 प्रतिशत या इन बीमार क्षेत्र के गाँवों में साक्षरता की स्थिती और भी ख़राब है । जब पूरे देश की ग्रामीण जनसंख्या का 38 प्रतिशत बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में मिलता है, यहाँ के गांवों में महिला साक्षरता दर 10 प्रतिशत में भी कम है । वहीं यूनिसेफ के बिहार प्रदेश के प्रतिनिधि 'गोपीनाथ टी. मेनन' ने दिसम्बर 1997 में बताया कि अकेले बिहार में एक करोड़ बच्चे प्राथमिक शिक्षा से वंचित हैं और इनमें से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य कर देता तो उसे प्राथमिक या संभवत: मैट्रिक स्तर तक शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य करने के लिए कानून बनाने पड़ते जो निश्चित रूप से राज्यों की क्षमता से परे है। शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े राज्य आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, कश्मीर, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बंगाल में 4365 प्राथमिक बाल शिक्षा केन्द्रों के मध्यम से जो 180 स्वैच्छिक संगठन द्वारा संचालित 1 लाख से ऊपर बच्चों में शिक्षा का प्रसार दिया किया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य है 'ड्राप आउट' दर को कम करना। प्रत्येक इकाई को प्रति वर्ष लगभग 8 हजार रूपए दिए जाते हैं, जहाँ 1987-88 में 4365 इ.सी.ई. केंद्र को 246 लाख रूपयों की आर्थिक सहायता दी जाती थी वो 1995 – 96 में बढ़ कर 353 लाख रूपया हो गई। इसमें प्रतिमाह प्रति केंद्र 665 रू. मैट्रिकुलेट अधिकतर बच्चे बाल श्रमिक बनने की नियति के शिकार हैं। दुसरे इनका विचार था कि समाज के 90 प्रतिशत लोग बच्चों की स्थिति के बारे में नहीं जानते हैं। तीसरे यहाँ हर रोज लगभग 9000 बच्चे अत्यंत छोटे - छोटे कारणों से मौत के मुंह में जाने को अभिशप्त हैं, चौथे लगभग 92 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं, पांचवें बच्चों को महज चंद किताबें पढ़ा देने से उनका सही बौद्धिक विकास नहीं होगा वे उन्हें रोजगारोन्मूखी शिक्षा देनी होगी, छठे बच्चों के सही विकास के लिए हमें उनके ऊपर अपनी महत्वकांक्षा और लक्ष्यों को नहीं थोपना होगा। समस्या की गंभीरता को देखते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो. यशपाल ने तो यहाँ तक सुझाव दे डाला की विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को 1 वर्ष के लिए बंद कर दिया जाए, अध्यापकों और विद्यार्थियों को साक्षरता अभियान में लगा दिया जाना चाहिए।

इसका यह अर्थ नहीं कि हमारी कोई उपलब्धि नहीं है । स्वतंत्रता दिवस से लेकर आज की तिथि तक हमने कुछ कार्य अवश्य किए हैं, किन्तु वे सीमित हैं, अभी हमें बहुत कुछ करण है जहाँ कक्षा 1 से 5 तक में 6-11 वर्ष के आयु वाले विद्यार्थियों की संख्या 1950- 51 में 192 लाख थी, वो 1987 -88 में 930 लाख, तथा कक्षा 6 से 8 तक में 11-14 वर्ष के आयु वाले विद्यार्थियों की संख्या 1950 -51 में 31 लाख

थी, वो 1987-88 में 300 लाख हो गई, साथ ही साथ प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की संख्या 1950-51 में 5 लाख 38 हजार की जगह 1987- 88 में 16 लाख 17 हजार हो गई है, तथा 1991-92 में 16 लाख 37 हजार हो गई मिडिल स्कूलों में अध्यापकों की संख्या 86 हजार की जगह 1987-88 में 10 लाख 15 हजार हो गई, इसके अतिरिक्त 15 राज्यों एवं 6 केंद्र शासित प्रदेशों में निम्न माध्यमिक शिक्षा (कक्षा 10) तक की शिक्षा नि:शुल्क है 1 इसके अलावा मणिपुर, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में लड़कियों के लिए दूसरी कक्षा तक नि:शुल्क शिक्षा है जबकि अनूसूचित जातियों और जनजातियों के बच्चों के लिये सभी राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में इस स्तर तक शिक्षा नि:शुल्क है 1 इसके अतिरिक्त हमारे यहाँ प्राथमिक विद्यालयों में छात्र-छात्राओं का नामांकन 1951 में 1 करोड़ 92 लाख से बढ़ कर 1991 में 9 करोड़ 91 लाख हो गया। जहाँ 1950 -51 में सकल राष्ट्रिया उत्पादन का 1.2 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया गया, अब 4 प्रतिशत हो गया है 1 किन्तु यह अन्य देशों की तुलना में अब भी कम क्योंकि वार्षिक बजट का 20 प्रतिशत अमेरिका एवं जापान में, 17 प्रतिशत कनाडा में, 14 प्रतिशत इंग्लैंड में, 4 प्रतिशत श्रीलंका में, 10 प्रतिशत जर्मनी में शिक्षा पर व्यय किया जाता है। आंकड़े बताते हैं की शिक्षकों की संख्या में वृद्धि हुई व्यय किया जाता है। किन्तु शिक्षक एवं शिक्षार्थी अनुपात में कमी आई है जहाँ शिक्षक - शिक्षार्थी अनुपात 1950-51 में 1:36 था, वो 1990 - 95 में बिगड़कर 1:61 हो गई हैं। इसके अलावा यह तथ्य कम महत्वपूर्ण नहीं है की 1990 -95 के दौरान केंद्र सरकार के पूरे खर्च का मात्र 2 प्रतिशत स्वास्थ्य एवं मात्र 2 प्रतिशत शिक्षा पर किया गया, जबकि दूसरी ओर सेना पर 15 प्रतिशत।

अभ्यास प्रश्न

4. धारा – 45 में कहा गया है संविधान लागू होने के वर्षों के भीतर, राज्य 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए__________शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

1.9सारांश

भारत में बाल-श्रम की समस्या ,एक चुनौती बनी हुई है। सरकार ने जितने भी, इससे निबटने के लिए कानून बनायी, सभी बेअसर साबित हुए। सन 1979 में भारत सरकार नेइस विकट समस्या से निजात दिलाने हेतु उपाय सुझाने के लिए 'गुरूपद स्वामी समिति' बनाई। समिति विस्तार पूर्वक इसका अध्ययन करने के बाद यह सिफ़ारिस किया, कि जब तकगरीबी रहेगी , तब तक बाल-मजदूरी रहेगी। सिर्फ़ कानून बन जाने से यह नहीं रूकेगा ; क्योंकि बाल-श्रमिक के मूल में उनकी दरिद्रता है। अपनी दरिद्रता के कारण ,माँ-बाप ,अपने बच्चों को कुछ पैसों के खातिर बाल-मजदूर बनने के लिए मजबूर रहते हैं।निर्धनता बाल-श्रमिक को सबसे अधिक बढ़ावा देती है ।
कुछ कारण परम्परागत भी हैं; जैसे मोची, बढ़ई, कुम्हार , अधिकतर ये लोग ,अपनेबच्चों को पाँच-सात साल के होते ही , अपने धंधे में लगा देते हैं। पढ़ाई-लिखाई कीओर स्वयं अनभिग्य रहने के कारण,ध्यान

नहीं दे पाते। यूँ कहिये, ये लोग स्वभाव सेही श्रमजीवी होते है। इसलिए पढ़ाई-लिखाई की बात सोचते नहीं। लेकिन समय के साथइनमें भी परिवर्तन आ रहे हैं। ये लोग भी धीरे-धीरे ही सही शिक्षा को अपनाने लगेहैं ; लेकिन इतना से नहीं होगा। हमारे समाज को भी आगे आना होगा, नहीं तो बच्चों काबचपन इसी तरह चिमनी के धूएँ और भट्ठी में जल-जलकर खतम हो जायगा ; जिसे इतिहास कभीमाफ़ नहीं करेगा।

1.10शब्दाबली

1. संचार- चलना
2. वेश्यावृत्ति- देह व्यापार
3. अत्यधिक- बहुत ज्यादा
4. रोजगारोन्मूखी- रोजगार से सम्बन्धित

1.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जनसंचार
2. शारीरिक
3. तीन
4. नि:शुल्क और अनिवार्य

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रिपोर्ट: एएफपी/ ईशा भाटिया
2. संपादन: आभा एम
3. सेन्सस ऑफ इंडिया, 1991, वार्षिक रिपोर्ट 1995-96, श्रम मंत्रालय, भारत सरकार
4. रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, 1981,सेंसस
5. समाज कल्याण/मई 1999
6. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया
7. एएफपी/ ईशा भाटिया
8. ***DW.COM***

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. बाल-मजदूरी रोकने के लिए आप क्या कर सकते हैं?
2. भारत में बाल मजदूरी का मुद्दा कितना महत्वपूर्ण है ?
3. भारत में अनुमानत: कितने बाल मजदूर हैं ?
4. बाल मजदूरी पहलू की उपेक्षा क्यों हुई है ?
5. जीवन-यापन हेतु गरीब परिवार के बच्चों का काम पर जाने में गलत क्या है ?
6. बाल मजदूरी और औपचारिक स्कूली शिक्षा के बीच क्या संबंध है ?
7. सभी बच्चे का स्कूल जाना क्यों नहीं संभव है ?

इकाई 2 -किशोरावस्था के निर्माण एवं अनुभव पर नगरीकरण एवं आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव ; लिंग, वर्ग एवं गरीबी के सन्दर्भ में बच्चों के वास्तविक जीवन के निरूपण में मीडिया की भूमिका

Impact of Urbanization and economic change on 'growing-up'; representations of gender, class and poverty in media to be brought to the classroom through printed materials and various electronic media.

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 नगरीकरण की अवधारणा
2.4 आर्थिक परिवर्तन का संप्रत्यय
2.5 किशोरावस्था के निर्माण एवं अनुभव पर नगरीकरण एवं आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव
2.6 मीडिया का अर्थ एवं प्रकार
2.7 मीडिया की भूमिका
2.8 लिंग, वर्ग एवं गरीबी आदि के सन्दर्भ में मीडिया की भूमिका
2.9 सारांश
2.10 शब्दावली
2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अब तक आप यह जान चुके हैं किशोरावस्था बाल्यावस्था एवं वयस्कावस्था के मध्य की अवस्था होती है। 10 वर्ष की आयु से 19 वर्ष की आयु तक में किशोर में तीव्र शारीरिक मानसिक एवं भावनात्मक परिवर्तनों होतें हैं। कुछ विद्वान इस अवधि को 13 वर्ष से 18 वर्ष तक मानतें हैं। लेकिन किशोरावस्था को किसी निश्चित सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। वस्तुतः किशोरावस्था यौवनावास्था से परिपक्वता तक वृद्धि एवं विकास का काल है। विश्व स्वस्थ संगठन के अनुसार किशोरावस्था गौण यौन लक्षणों के प्रकट होने से लेकर यौन एवं प्रजनन परिपक्वता की ओर अग्रसर होने का समय है जबकि व्यक्ति मानसिक रूप से प्रौढ़ता की ओर अग्रसर होता है। वह सामाजिक और आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक आत्मनिर्भर हो जाता है जिससे उसकी अलग पहचान बन जाती है। हमारे देश में प्रत्येक पांचवा व्यक्ति एक किशोर हुआ करता है और प्रत्येक तीसरा व्यक्ति एक युवा है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 236.5 मिलियन किशोर हैं जो कि यहाँ की कुल आवादी का 19.6 प्रतिशत है। आज का युग ज्ञान और विज्ञान का युग है। इस बदलते हुए परिदृश्य में हमारे गाँव शहरों में तब्दील होते जा रहे हैं। प्रस्तुत पाठ में हम यह जानेंगे कि नगरीकरण और आर्थिक परिवर्तनों ने किशोरावस्था के निर्माण और अनुभव की किस प्रकार से प्रभावित किया है।मीडिया हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चूका है। तीव्र गति से होने वाले वैज्ञानिक परिवर्तनों ने मीडिया में मानो जैसे पंख लगा दिए हों। प्रस्तुत पाठ में लिंग, वर्ग और गरीबी आदि के निरूपण में मीडिया को भूमिका को भी हम पढेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. नगरीकरण की अवधारणा को बता सकेंगे।
2. आर्थिक परिवर्तन की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. किशोरों पर शहरीकरण के प्रभाव को की चर्चा कर सकेंगे।
4. किशोरों पर आर्थिक परिवर्तनों से पड़ने वाले प्रभावों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
5. मीडिया के अर्थ एवं प्रकार को बता सकेंगे।
6. लिंग, वर्ग एवं गरीबी आदि के सन्दर्भ में मीडिया की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 नगरीकरण की अवधारणा

नगरीकरण की प्रक्रिया उतनी ही पुरानी है जितनी की मानव सभ्यता का इतिहास पुराना है। प्राचीन सभ्यताओं के अध्ययन से यह पता चलता है कि नगरों का अस्तित्व संभवतः मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही रहा है क्योंकि विश्व की सभी प्राचीन नदी घाटी सभ्यताएं मूल रूप से नगरीय सभ्यताएँ थी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि जिस रूप में आज हम नगरों एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को देखते हैं उसकी प्रकृति

आधुनिक है। आधुनिक भारत में नगरीकरण की गति में तीव्रता तब आई जब ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से भारत आई। अंग्रजों ने आने व्यापारिक केन्द्रों के रूप में बंदरगाहों को चुना और उन्हीं बंदह्गाहों को शहरों के रूप में विकसित किया। सूरत, मुंबई, कलकत्ता, गोवा आदि इन नगरों के उदहारण है। आजादी प्राप्त होने के बाद हमारे देश में उद्योग धंधों के क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ। परिणामतः नगरों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी। 2001 से 2011 तक की अवधि में नगरों की संख्या 1827 से 7935 बढ़कर हो गयी।यह तथ्य इंगित करने योग्य है कि हमारे देश में छोटे शहरों की तुलना में बड़े शहरों की संख्या में ज्यादा वृद्धि हुई है। वर्ष 1901 में एक लाख की जनसँख्या वाले शहरों की संख्या 24 थी जो 2001 में बढ़कर 393 हो गयी। 2011 की जनसंख्या के अनुसार 377 मिलियन लोग नगरों / शहरों में निवास करतें हैं जो कि देश की कुल जनसँख्या का 31.2 प्रतिशत है। नगरीकरण के स्तर 2001 में 27.82 % थी जो कि 2011 में बढ़ कर 31.14 % हो गयी। भारत में सर्वाधिक शहरी जनसँख्या वाले राज्यों में पहले स्थान पर महाराष्ट्र एवं दूसरे स्थान पर उत्तर प्रदेश है।

नगर/शहर शब्द अंग्रेजी के शब्द सिटी (CITY) का हिंदी रूपांतरण है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द सिविटाज (CIVITAZ) से हुई है। इसका अर्थ नागरिकता से लगाया जाता है जो कि नगर शब्द से ही उद्धृत है। सामान्य बोलचाल की भाषा में नगरीकरण का अर्थ लोगों का ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में जाकर रहने से लगाया जाता है। नगरीकरण को अनेक विद्द्वानों द्वारा निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है।

लुई वर्थ – गांवों के शहरों में बदलने की प्रक्रिया नगरीकरण कहलाती है।

गोल्ड और क्लब – शहरी जीवन संबंधी व्यवहार का ग्रामीण समुदाय पर प्रसार हो जाने का नाम नगरीकरण है।

संयुक्त राष्ट्र संघ –ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का नगरों में जाकर रहना और कम करना नगरीकरण है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो है कि नगरीकरण में लोगों का ग्रामीण क्षेत्र से नगरों की ओर स्थानान्तरण होता है। यह न केवल व्यापक प्रक्रिया है बल्कि जटिल प्रक्रिया भी है। नगरीकरण की निम्नांकित विशेषताएं है

i. रोजगार के अवसरों में वृद्धि
ii. यातायात एवं संचार के साधनों की सुलभता
iii. प्रवजन में वृद्धि
iv. श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण
v. रहन सहन के स्तर में वृद्धि
vi. व्यापार का विस्तार एवं वृहद स्तर पर उत्पादन
vii. वर्ग संघर्ष
viii. सांस्कृतिक अवरोध का कम होना

अभ्यास प्रश्न

1. गांवों के नगरों में बदलने की प्रक्रिया__________कहलाती है।
2. नगर (CITY) की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द ___________ से हुई है।
3. 2011 की जनसंख्या के अनुसार__________ लोग नगरों / शहरों में निवास करतें हैं।
4. भारत में सर्वाधिक शहरी जनसंख्या वाला राज्य __________ है।

2.4 आर्थिक परिवर्तनका संप्रत्यय

1991 से हमारे देश की अर्थव्यवस्था में निर्णायक परिवर्तन हुए। लाईसेंस राज को खत्म करके LPG (LIBRALISATION , PRIVATISATION & GLOBALISATION) का नया दौर शुरू किया गया।हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर इन तीनों नीतियों का व्यापक असर पड़ा है। एक ओर जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए द्वार खुल गए हैं तो दूसरी ओर हमारी आवश्यक्ताओं में भी वृद्धि होती गयी है। जहाँ एक समय मोबाइल सिर्फ धनाढ्य लोगों के पॉकेट की शोभा बढ़ता था, आज यह घर –घर पहुँच गया है। आर्थिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य अर्थव्यवस्था में उन अमूल परिवर्तनों से है जो जन सामान्य के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होतें हैं। आर्थिक परिवर्तन के मार्ग में अनेक बढ़ाएं है :विशाल जनसँख्या, अशिक्षा, अकुशल श्रम, सामाजिक रूढ़ियाँ, जातिवाद आदि। समाजशास्त्री ए आर देशाई का यह विचार है कि पुरानी संस्थाओं के साथ-साथ संकुचित मानसिकता कई प्रकार से आर्थिक परिवर्तन को बाधित करती है। बिना आर्थिक परिवर्तन के सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना महज एक कल्पना है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक परिवर्तन एक दूसरे के पूरक हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में आर्थिक परिवर्तन के लिए पञ्च वर्षीय योजनायें लागू की गयीं। पञ्च वर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन के फलस्वरूप लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ ।

2.5 किशोरावस्था के निर्माण एवं अनुभव पर नगरीकारण एवं आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव

नगरीकरण को दो अर्थों में समझा जा सकता है।प्रथम - ग्रामीण जनसँख्या का नगरों में जाकर बसना और दूसरा नगरों का अधिक से अधिक उन्नत होना। नगरीकरण का दूरगामी प्रभाव समाज के हर वर्ग पर पड़ा है जिसमें किशोर अछूते नहीं है। नगरीकरण एवं आर्थिक परिवर्तन के प्रभावों की चर्चा निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत की जा सकती है

सकारात्मक प्रभाव

- नगरीकरण के कारण किशोरों को उनके व्यक्तित्व विकास के अनेकानेक अवसर प्राप्त हुए हैं। खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, कोचिंग क्लास आदि के माध्यम से उनको अपनी प्रतिभाओं को निखारने का मंच मिलता है।
- नगरों के विस्तार के फलस्वरूप शिक्षा के केंद्र – विद्यालय / कॉलेज भी आधुनिक हो गए है। अतः किशोरों को स्मार्ट क्लास, कंप्यूटर , इन्टरनेट आदि के प्रयोग से वंचित नहीं है। ज्ञान अर्जन का माध्यम केवल ब्लैक बोर्ड एवं किताबें नहीं रह गयीं है।
- नगरीकरण की वजह से लोगों के बीच भौतिक दूरियां कम होतीं जा रही है। सूचनाओं का प्रसार एक स्थान से दूसरी स्थान तक बड़ी तेजी से होता जा रहा है। यही वजह है कि किशोर अपने चारों ओर होने वाले घटनाओं के बारे में द्रुत गति से जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।
- किशोरों के जीवन में मीडिया भी अहम् भूमिका निभाने लगा है। सेक्स से सम्बंधित किसी भी जानकारी के लिए उन्हें परिवार के किसी सदस्य या मित्रों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। अख़बार, पत्र- पत्रिकाएं, होर्डिंग्स, पम्प्लेट्स आदि के जरिये भी सेक्स से सम्बंधित विषयों पर उन्हें जानकारी मिल जाती है।
- नगरी जीवन में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का भी विकास हुआ है। उन्नत किस्म के दवाओं एवं इंजेक्शन आदि के प्रयोग से किशोरियां गर्भ धारण आदि की समस्या से बच जाती हैं।
- नगरीकरण एवं आर्थिक परिवर्तनों के प्रभाव में किशोर अपने व्यवसाय के प्रति ज्यादा सजग होतें जा रहें है।ज्यादा से ज्यादा किशोर अपने घरों या कस्बों से निकल कर उच्च शिक्षा को प्राप्त करने में लगें है। वे वैवाहिक बंधनों में नहीं बंधना चाहतें है। अतः उन्हें बिना किसी हस्तक्षेप के जीवन जीने का मौका अधिक से अधिक मिलता है।
- आजकल के किशोर जल्दी ही परिपक्व होने लगें हैं। उनके यह समझ आने लगा है कि सिर्फ किताबी ज्ञान से पेट नहीं भरा जा सकता है। औपचारिक शिक्षा के दौरान ही किसी न किसी कौशल जैसे – फोटोग्राफी, पेंटिंग, संगीत, डांस, कुकिंग आदि को सीख लेने में वे देरी नहीं करतें हैं।
- नगरों में किशोर आपस में अनेक माध्यमों से जुड़े रहतें हैं। साथियों के दल से संपर्क होने के कारण प्रतिओगिता परीक्षाओं के लिए तैयारी करने के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध हो जातें हैं।

नकारात्मक प्रभाव

- नगरीकरण के अंतर्गत ग्रामीण जनता का रोजगार की खोज में शहरों की ओर आना होता है। गरीब परिवारों के बच्चे भीकम उम्र में हीमजदूरी करना शुरू कर देतें हैं।परिणामतःबाल श्रम की समस्याबढ़ी है।

- नगरों में लोगों को आवासीय सुविधाएं मुहैया कराने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर ऊँची-ऊँची इमारतें और भवन बनाये जा रहें हैं। इससे बच्चों के खेलने के लिए पार्क या मैदान ख़त्म होतें जा रहें हैं। किशोरों की खेल की दुनिया सिर्फ विडियो गेम्स तक ही सिमट कर रह गयी है। शारीरिक गतिविधियों के कम होने से किशोरों का स्वस्थ भी प्रभावित होता है। कम उम्र में ही वे मोटापा के शिकार होतें जातें है जो आगे चल कर बहुत सारी बिमारियों की वजह बन जाता है।
- नगरीकरण के प्रमुख कारणों में बड़े पैमाने और कल कारखानों की स्थापना भी है। कल कारखानों ने प्रदूषण की समस्या को जन्म दिया है।प्रदूषण की वजह से किशोरों को साँस सम्बन्धी कई बीमारियाँ भी होने लगीं हैं।
- नगरों में लोगों की जीवन शैली बहुत जटिल होती जा रही है। निरंतर बढती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रत्येक माता पिता कोई न कोई व्यवसाय / रोजगार में लगे रहते हैं। ऐसे में वे आपने बच्चों को घर पर समय नहीं दे पातें हैं। इसका बुरा परिणाम यह देखने को मिलता है कि किशोर अनेक बुरी आदतों जैसे शराब पीना, जुआ खेलना, सट्टे बाजी करना, अपहरण, लूटपाट आदि के कुचक्र में फंस जातें है।
- आजकल किशोरों में इन्टरनेट पर वर्चुअल फ्रेंड्स बनाने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। ऐसे में ऐसे में माता पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों से उनकी दूरियां बढती जा रहीं हैं। जिन दोस्तों को उन्होंने कभी देखा और परखा नहीं हो उनपर वो अँधा विश्वास करने लागतें हैं।इसके अनेक घातक परिणाम भी हुए हैं। फेसबुक , ट्विटर , व्हाट्स उप जैसे सामाजिक मीडिया पर दोस्ती करके किशोरियों में घर से भाग कर शादी करने की घ्नाएं सामने आतीं रहीं हैं।
- नगरीकरण ने उपभोक्तावाद एवं बाजारवाद को जन्म दिया है।बाजार में डिजाइनर कपड़े. महँगी घड़ियाँ, मोबाईल, जूते, पर्स, आदि की भरमार है। इन आकर्षक वस्तुओं को देखकर किशोर उनको प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठतें हैं। पैसे के अभाव में इन्हें खरीदने के लिए वे चोरी, ठगी, पॉकेट मारी आदि धंधों में भी निर्लिप्त हो जातें हैं।

अभ्यास प्रश्न

5. भारत में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का दौर 1991 से शुरू हुआ। (सत्य /असत्य)
6. किशोरों के जीवन में परिवार की भूमिका बढती जा रही है। (सत्य /असत्य)
7. फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्स उप जैसे सामाजिक मीडिया का प्रयोग करके किशोर वर्चुअल फ्रेंड्स बनाने लगें हैं। (सत्य /असत्य)
8. नगरों में लोगों की जीवन शैली सरल है। (सत्य /असत्य)

2.6 मीडिया के अर्थ एवं प्रकार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और भौतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी उसकी अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकताएं भी हैं। आपने साथियों से संपर्क करना और आपने मन की बात उन तक पहुँचाना भी उसकी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में शामिल है। इसीलिए वह किसी न किसी संचार का सहारा लेता है। सरल शब्दों में हम यह कह सकतें हैं कि किसी सूचना, विचार या मनोभाव को दूसरों तक पहुँचाना ही जन संचार है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ पढ़े – लिखे एवं सुसंस्कृत जन समुदाय ने समय की मांग को ध्यान में रखते हुए अपना सन्देश दूसरों तक पहुँचाने के लिए अनेक माध्यमों का विकास कर लिया है जिसे अंग्रेजी में मीडिया कहतें हैं। मशहूर जनसंचार शास्त्री मार्शल मेकलुहान ने कहा है "माध्यम ही सन्देश है। " उनके इस कथन से माध्यम की सार्थकता का अंदाजा लगाया जा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में सम्पूर्ण विश्व एक ग्लोबल विलेज बन गया है। सम्पूर्ण विश्व को एक गाँव बनाने में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि यह लोक तंत्र का चौथा स्तम्भ नही कहा जाता है।

प्राचीन काल में भारत में जब लिखने-पढ़ने और मुद्रण के साधन विकसित नहीं हुए थे तब जनसंचार का सबसे बड़ा माध्यम गुरु अथवा पूर्वज के मुख से बात सुनकर उस सन्देश को अगली पीढ़ी तक पहुँचाना होता था। कालान्तर में लेखन का प्रचलन होने पर भोज पत्रों पर लिखकर सन्देश पहुंचाये जाते थे। यह प्रथा हमारे देश में बड़ी कारगर सिद्ध हुई। इसी की बदौलत वेद-पुराण आदि हम तक पहुँच सके हैं। बाद में गुप्त काल में शिलालेखों आदि की सहायता से कुछ ऐसी धार्मिक और राजनैतिक सूचनाएं भी धातुओं और पत्थरों पर उकेरी जाती थीं। जहाँ इन सभी प्रयासों से इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी मानवीय ज्ञान की श्रीवृद्धि हुई , वहां ये सभी माध्यम तत्कालीन जनसंचार की शैलियों के परिचायक भी बनें हैं।

जनसंचार के माध्यमों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है –

i. **प्रिंट मीडिया**-इसके अंतर्गत मुख्यतः समाचार पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं आदि को शामिल किया गया है। ऐसा कहा जाता है कि 1640 ई चीन से प्रकाशित होने वाला पेंकिंग गजट संसार का पहला समाचार पत्र था। 1845 ई में प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार से दुनिया में समाचार पत्रों की बाढ़ सी आ गयी। भारत में मुद्रण का प्रचलन 6 सितम्बर 1556 को ईसाई धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से किया गया और धार्मिक साहित्य छपवाने के लिए गोवा में एक प्रेस खोला गया। जो भी कुछ मुद्रित हो जाता है उसे सावधानी से पढ़ा जाता है और कई बार पढ़ा जाता है। इसका दिमाग पर स्थाई प्रभाव पड़ता है और यही कारण है कि मैक्लुहान नें इसे गरम माध्यम कहा है। भारत में मीडिया की शुरुआत तब हुई जब 1780 में जेम्स ऑगस्टस नें बंगाल गज़ट नमक पहला समाचार पत्र निकला। भारत में समाचार पत्र पढने वालों की संख्या 2002 में 150 मिलियन थी जो कि 2014 में 264 मिलियन बढकर हो गयी।

ii. **इलेक्ट्रॉनिक मीडिया-** इसके अंतर्गत टेलिविजन, रेडिओ, फैक्स, सी – डी ROM, DVD आदि आतें हैं। श्रव्य एवं दृश्य विधा के माध्यम से तुरंत सूचना देने वाला माध्यम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया है। दूसरे शब्दों में इलेक्ट्रॉनिक साधनों के माध्यम से जो संचार होता है उसे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया कहतें हैं। भारत में रेडियो की शुरुआत 1923 में हुई। रेडियो धवनी तरंगों का माध्यम है। इसे दृश्य रहित, नेत्र रहित माध्यम भी कहतें हैं। भारत जैसे विशाल देश में रेडियो का बहुत महत्व है क्योंकि इस समय यही एक मात्र साधन है जो भारत की अधिकतम जनसँख्या तक पहुँचता है। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार भारत की 95 प्रतिशत आबादी रेडियो प्रसारण के अंतर्गत आ चुकी है। रेडियो के विभिन्न रूपों में सामुदायिक रेडियो भी है जिसका कार्य लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, रोजगार आदि लोकतान्त्रिक मुद्दों के सम्बन्ध में जागृत करना है। वर्तमान में भारत में विभिन्न क्षेत्रों में 150 सामुदायिक स्टेशन है।

जहाँ तक टेलिविजन का प्रश्न है यह जनसंचार का बहुत प्रभावशाली एवं युवा माध्यम है। इसमें ध्वनि के साथ साथ चित्रों को भी प्रस्तुत किया जाता है और इसका जनता पर सीधा असर पड़ता है। यह एक दृश्य माध्यम है और इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती है। भारत में सबसे पहले दिल्ली में 1959 में टेलिविजन कार्यक्रम शुरू किये गए। टेलिविजन की सेवाएँ 1972 में अमृतसर एवं मुंबई तक बढ़ाई गयी। 1975 तक भारत के केवल सात शहरों में ही टेलीविजन की सेवा शुरू हो पाई थी।भारत में कलर टीवी और राष्ट्रीय प्रसारण की शुरुआत 1982 में हुई। 1992 में भारत में की टेलिविजन दुनिया में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए जब होन्गकोंग की एक कम्पनी नें स्टार टेलिविजन (STAR TELIVISION) की शुरुआत की। इसके प्रमुख चैनल STAR PLUS, PRIME SPORTS, V- CHANNEL आदि हैं जो कि चौबीसों घंटे अपने कार्यंकर्मों का प्रसारण करतें हैं।आज SETELLITE TV CHANNEL सभी प्रकार के दर्शकों की जरूरतों को पूरा करतें हैं।

मीडिया का एक अन्य प्रकार फिल्म भी है। फिल्म श्रव्य – दृश्य माध्यम होतीं हैं। इसमें संचार की प्रक्रिया तात्कालिक होती है। यह एक विश्वसनीय और व्यापक माध्यम है। भारत मरीं फिल्म उद्योग इस समय उन्नत अवस्था में है। संसार में सबसे अधिक फ़िल्में इसी देश में बनती हैं। यहाँ हर साल 700 फीचर फ़िल्में और 1100 लघु फ़िल्में बनतीं हैं। भारत में फिल्मों का आगमन सर्वप्रथम 7 जुलाई 1886 को हुआ जब ल्युमियन ब्रदर्स ने मुंबई में 6 लघु फिल्मों के प्रदर्शन का आयोजन किया। कोकोनट फेयर नामक लघु फिल्में 1897 में भारत में फिल्मायीं गयी। दादा साहेब फाल्के और हीरालाल सेन लघु फिल्में बनाने वाले प्रथम भारतीय थे। पुन्दालिक भारत में बनने वाली प्रथम कथा फिल्म थी। इसके बाद दादा साहेब फाल्के नें राजा हरिश्चंद्र नामक पहली फीचर फिल्म का निर्माण किया जो कि 1913 में प्रदर्शित हुई। दादा साहेब फाल्के भारतीय फिल्मों के पितामह कहे जातें हैं। उन्होंने फिल्म विद्या का सूक्ष्मता और गहराई से अध्ययन किया और पुराने हिन्दू आख्यानों को फिल्माने का नया सिलसिला शुरू किया। लेकिन पौराणिक गाथाओं से हटकर सामाजिक विषयों पर भी फिल्में बननी इसी युग में

शुरू हो गयी थीं। 1925 में धीरेन गांगुली ने इंग्लैंड रिटर्न्स नामक पहली सामाजिक फिल्म बनायीं। मदन थिएटर की सावित्री और हिमांशु राय की लाइट ऑफ़ एशिया – इस दौर की दो और महान फिल्में थीं जिन्हें अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। 1931 में भारतीय फिल्म उद्द्योग में एक युगांतकारी घटना घटी जब मूक फिल्मों का दौर ख़त्म हुआ और फिल्म माध्यम को वाणी मिली। आलम आरा प्रथम ध्वनि फिल्म थी। इस दौर की ज्यादातर फ़िल्में सामाजिक बुराईयों और महिला उत्पीडन जैसे विषयों पर आधारित थीं। इस सम्बन्ध में बाम्बे टाकिज, न्यू थिएटर, प्रभात आदि फिल्म घरानों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। 1948 में फ़िल्मी संसार में एक और युगांतकारी घटना घटी। दक्षिण भारत के एस० एस ०वासन नें चंद्रलेखा फिल्म बनायीं जिसमें आलिशान सेटों और एक भव्य ढोलक दृश्य का आयोजन किया गया और यहाँ से ही बॉक्स ऑफिस फार्मूला फिल्मों के निर्माण की शुरुआत हुई। कालांतर में बड़े बजट और एक से अधिक सितारों वाली अन्य फ़िल्में बनने लगीं जो प्रक्रिया अभी भी जारी है।

iii. **न्यू मीडिया -**न्यू मीडिया' संचार का वह संवादात्मक (Interactive) स्वरूप है जिसमें इंटरनेट का उपयोग करते हुए हम पॉडकास्ट, आरएस एस फीड, सोशल नेटवर्क (फेसबुक, माई स्पेस, ट्वीट्र), ब्लाग्स, विक्किस, टैक्सट मैसेजिंग इत्यादि का उपयोग करते हुए पारस्परिक संवाद स्थापित करतेहैं। यह संवाद माध्यम बहु-संचार संवाद का रूप धारण कर लेता है जिसमेंपाठक/दर्शक/श्रोता तुरंत अपनी टिप्पणी न केवल लेखक/प्रकाशक से साझा कर सकतेहैं, बल्कि अन्य लोग भी प्रकाशित/प्रसारित/संचारित विषय-वस्तु पर अपनीटिप्पणी दे सकते हैं। यह टिप्पणियां एक से अधिक भी हो सकती है अर्थात बहुधासशक्त टिप्पणियां परिचर्चा में परिवर्तित हो जाती हैं। उदाहरणत: आप फेसबुकको ही लें - यदि आप कोई संदेश प्रकाशित करते हैं और बहुत से लोग आपकीविषय-वस्तु पर टिप्पणी देते हैं तो कई बार पाठक-वर्ग परस्पर परिचर्चा आरम्भकर देते हैं और लेखक एक से अधिक टिप्पणियों का उत्तर देता है। न्यू मीडिया वास्तव में परम्परागत मीडिया का संशोधित रूप है जिसमें तकनीकी क्रांतिकारी परिवर्तन व इसका नया रूप सम्मलित है।

भारत मे इंटरनेट यूजर्स की संख्या में तेजी से इजाफा हुआ है। यहां 121 मिलियन लोगों तक इंटरनेट की पहुंच हो चुकी है, जो कि कुल जनसंख्या का करीब 10 फीसदी है। दुनिया के सभी इंटरनेट यूजर्स देश में भारत का हिस्सा 3 फीसदीहै। यूज के मामले में भारत में इंटरनेट का यूज सबसे ज्यादा पोर्न फिल्मेंदेखने के लिए किया जाता है। साथ ही इंटरनेट का यूज व्यक्तिगत जरूरतों जैसेबैंकिंग, ट्रेन इंफॉर्मेशन-रिजर्वेशन और अन्य सेवाओं के लिए भी होताहै।

न्यू मीडिया की निम्नांकित विशेषताएँ होतीं है -

- **Integrated (एकीकृत)**: न्यू मीडिया की पहली विशेषता Integrated है, क्योंकि इंटरनेट आधारित होने के कारण सभी संचार माध्यम (प्रिण्ट माध्यम-समाचार पत्र, पत्रिका व पुस्तक, इलेक्ट्रानिक माध्यम- रेडियो, टेपरिकॉर्डर वटेलीविजन तथा अन्य माध्यम- टेलीफोन, मोबाइल,

फैक्स, पेजर, टेलीप्रिन्टर वटेलीग्राफ इत्यादि) आपस में एकीकृत हो गये हैं। उदाहरण- कम्प्यूटर, एण्ड्रायड व स्मार्ट फोन आदि, जिनका मल्टी-उपयोग हो रहा है।

- **Digital (डिजिटल)** : यहन्यू मीडिया की दूसरी विशेषता है। इससे उपभोक्ताओं को गुणवत्तायुक्त संगीतसुनने, मनपसंद टैक्स्ट तलाश करने तथा उसे संशोधित कराने की सहुलियत मिलनेलगी है। शाब्दिक दृष्टि से Digital शब्द का निर्माण अंग्रेजी भाषा के Digit (अंक)से हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि न्यू मीडिया की सम्पूर्ण सामग्रीडिजिट में होती है। उदाहरण- इंटरनेट रेडियो बजाने सुई घुमाकर स्टेशन सर्चकरने की जरूरत नहीं पड़ती है, बल्कि निर्धारित डिजिट वाले स्टेशन कोड लिखकरसर्च करते ही प्रसारित कार्यक्रम सुनाई देने लगता है।
- **Interactive (सहभागी):** न्यू मीडिया की तीसरी प्रमुख विशेषता Interactive है। Interactive से तात्पर्य द्वि-चरणीय संचार प्रक्रिया से है। न्यू मीडिया पर प्रसारित सामग्री टैक्स्ट आधारित हो या ऑडिया-वीडिया के रूप में। सभी के अंदर अपने पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों को तत्काल अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सहभागी बनने की सुविधा होती है। उदाहरण- फेसबुक, ब्लॉग, वेब पोर्टल्स इत्यादि, जो अपने उपभोक्ताओं को फीडबैक व्यक्त करने की सुविधा देते हैं।
- **Hyper textual (हाइपरटैक्टुअल)**: यह न्यू मीडिया की प्रमुख विशेषता है। **Hyper textual** कीसुविधा केवल न्यू मीडिया पर ही उपलब्ध होती है, जिसकें अंतर्गत छोटे सेसंकेत के अंदर बड़ी से बड़ी जानकारी छुपी होती है। उदाहरण- वेब पोर्टल्र्स केटैक्स्ट होता है कि- भारतीय संविधान के लेखक डा. भीमराव अम्बेदकर है।इसमें भारतीय संविधान और डा. भीमराव अम्बेदकर दोनों **Hyper textual** हो सकतेहैं, जिन्हें क्लिक करते ही क्रमशः भारतीय संविधान और डॉ. भीमराव अम्बेदकरसे जुड़ी सम्पूर्ण जानकारी स्क्रिन पर प्रदर्शित होने लगती है।
- **Virtual (वर्जुअल):** न्यू मीडिया की पांचवी विशेषता Virtual है, क्योंकि इसके माध्यम से किसी भी सूचना, जानकारी या संदेश को ऐसेसम्प्रेषित किया जाता है, जो वर्जअल होता है किन्तु पाठक, श्रोता व दर्शकको वास्तविक जानकारी देता है। उदाहरण- ट्रेन दुर्घटना या प्लेन क्रैश होनेकी जानकारी को एनिमेशन के साथ सम्प्रेषित किया जाता है, जिसमें दुर्घटनास्थल की वास्तविक फोटोग्राफ या विजुअल नहीं होते हैं, बल्कि कॉल्पनिकफोटोग्राफ व विजुअल की सहायता से जानकारी देने का प्रयास किया जाता है।
- **Network (नेटवर्क)** : न्यू मीडिया की छठी विशेषता नेटवर्क का है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति वविभिन्न संगठनों के सदस्य आपस में जुड़े होते हैं तथा सभी के मित्रता, आर्थिक लेनदेन, समान विचारधारा, समान अभिरूचि इत्यादि का सम्बन्ध होता है।न्यू मीडिया के नेटवर्क से जुड़े लोग एक-दूसरे के साथ जानकारी, अनुभव, विचारइत्यादि न केवल साझा करते हैं, बल्कि पक्ष व विपक्ष में विचार-विमर्श भीकरते हैं। यह सुविधा न्यू मीडिया के अतिरिक्त किसी अन्य माध्यम पर उपलब्धनहीं है। यदि उपलब्ध भी है तो उसमें काफी समय लगता है तथा काफी खर्चीला है।

- **Simulated (सीमुलेटेड):**यह न्यू मीडिया की सातवीं प्रमुख विशेषता है, जिसके अंतर्गत उपभोक्ताओं कोअपनी कल्पना को आकार देने तथा दूसरों से साझा करने की सुविधा मिलती है।

अभ्यास प्रश्न

9. मैक्लुहान नें ______________को गरम माध्यम कहा है।
10. भारत में छपने वाला सबसे पहला समाचार पत्र_____________था।
11. _____________को दृश्य रहित, नेत्र रहित माध्यम भी कहतें हैं।
12. भारत में सबसे पहले _____________में टेलिविजन कार्यक्रम शुरू किये गए।
13. दादा साहेब फाल्के भारतीय फिल्मों के___________कहे जातें हैं।
14. भारत में स्टार टेलिविजन (STAR TELIVISION) की शुरुआत______________में हुई।
15. न्यू मीडिया' संचार का वह संवादात्मक (Interactive) स्वरूप है जिसमें_______का उपयोगहोता है।
16. दुनिया के सभी इंटरनेट यूजर्स देश में भारत का हिस्सा______________फीसदीहै।
17. भारत की प्रथम ध्वनि फिल्म ______________ थी।

2.7 मीडिया की भूमिका

मीडिया की भूमिकाअलग – अलगसन्दर्भों में अलग – अलग है। एक व्यावसायिक समाज में उसकी भूमिका लाभ को बढ़ने में है, विकासशील समाज में विकास की गति त्वरित करेने में, एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में समाज के पुनर्निर्माण और बुर्जुआ मूल्य को ध्वस्त करने में है। मीडिया के तीनो प्रकारों की भूमिका का वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है:

- सूचना: ये मीडिया घटनाओं, समाज की परिस्थितियों और सरकार की नीतियों व योजनाओं की सूचना सभी को देतें हैं। सत्ता के जनता से संबंधों की खबर देतें हैं।आविष्कारों और प्रगति का व्योरा भी देतें हैं।
- अंतर्संबंधों की व्याख्या: ये मीडिया घटनाओं के अर्थों का मूल्याङ्कन करतें हैं। सामान्य परिस्थितियां बनाने में व्यवस्था का सहयोग करतें हैं। समाजीकरण में योगदान देतें हैं। सही मुद्दों के लिए जनसाधारण की राय पैदा करतें हैं।
- निरंतरता: ये संस्कृति और उपसंस्कृतियों की व्याख्या कर उन्हें नवसांस्कृतिक विकास से जोड़कर एक निरंतरता की स्थिति को पैदा करतें हैं। ये अनेकता में एकता के तत्वों की खोज करतें हैं या उन्हें पैदा करतें हैं।
- मनोरंजन: ये मीडिया जनसाधारण के लिए मनोरंजन वैविध्य और रोचक कार्यक्रम बनाते हैं। ये सामाजिक तनावों को कम करने में आपना योगदान देतें हैं।

- गतिशीलता एवं विकास: ये राजनीतिक, प्रगति, आर्थिक विकास. युद्ध और धर्म में भी उच्चतर गतिशील एवं विकसित मूल्यों की स्थापना के लिए अभियान चलातें हैं।

2.8 लिंग, वर्ग एवं गरीबी आदि के सन्दर्भ में मीडिया की भूमिका

हमारेजीवन में मीडिया ने मजबूत पकड़ बना लिया है। इसे लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ मन जाता है। सूचना तकनीकी के इस युग में हर छोटी सी घटना का मीडिया कवरेज आसान हो गया है। व्यवसायीकरण के इस दौर में मीडिया द्वारा खबरों को बेचने के आरोप उस पर लगते रहें है। मुद्दों को भटकाने का आरोप मीडिया पर लगता रहा है। अतः लिंग, वर्ग एवंगरीबी आदि के सन्दर्भ में मीडिया की भूमिका की समीक्षा आवश्यक है।प्रायः मीडिया द्वारा महिलाओं को तीन प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। पहला - दैनिक समाचार पत्रों में महिला जगत और उसके आन्दोलनों की खबरों का कवरेज , दूसरा- मनोरंजक एवं सामान्य कार्यक्रमों में महिलाओं की भागेदारी, तीसरा – विज्ञापनों में महिलाओं की प्रस्तुति। हाल के वर्षों में मीडिया ने बलात्कार की घटनाओं (जिसमें निर्भय कांड प्रमुख है) के खिलाफ जनमानस की आवाज को बुलंद किया है। इतना ही नहीं मुस्लिम समाज में तीन तालक की प्रथा पर प्रहार करते हुए महिलाओं को एक जुट होकर लड़ने का आह्वान करता रहा है। कन्या भ्रूण हत्या को भी सामने लाने में मीडिया ने अहम भूमिका निभायी है और परदे के पीछे सच को उजागर किया, तब जाकर भ्रूण हत्या को अपराध की श्रेणी में रखा जाने लगा है और इसके सम्बन्ध में सख्त कानून भी बनाये गए हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में महिला साक्षरता दर 65 प्रतिशत हो गयी है , यह भी मीडिया कवरेज का ही प्रतिफल है। जहाँ तक मनोरंजक कार्यक्रमों में महिलाओं को प्रस्तुत करने का प्रश्न है, उसका चित्र सही उभर कर नहीं आता है। प्राइवेट टी.वी. चैनलों द्वारा अनेक धारावाहिक शुरू किये गयें हैं जिनमें महिलाओं की छवि को धूमिल किया है। महिलाओं की पहनावा एवं श्रृंगार को अश्लील रूप में प्रस्तुत किया जाता है। हद तो तब हो जाती है जब महिलाओं के शरीर का विज्ञापन उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री बढ़ने के लिए किया जाता है। निश्चय ही विज्ञापन दाताओं की यह वृति दूषित , अश्लील और सामाजिक मूल्यों को गन्दा करनेवाली है।

मीडिया विभिन्न वर्गों से मुद्दों को भी आवाज देता आया है। उत्तर प्रदेश में कैराना से हिन्दुओं का पलायन हो या मध्य प्रदेश बस्ती के आदिवासियों पर अत्त्याचार – ये सभी मुद्दे मीडिया द्वारा प्रमुखता से दिखाए गए हैं। जनजातीय क्षेत्र भी मीडिया की पहुँच से अछूते नहीं हैं। जनजातियों पर बने अनेक वृत्त चित्र राज्य सभा

टी0 वी0 पर प्रसारित किये जातें हैं। जनजातीय क्षेत्रों में मीडिया कवरेज के उपरांत ही वहां शिक्षा के हालत सुधरें है। प्राथमिक शिक्षा के साथ – साथ जनजातीय विश्वविद्यालय भी खुले और उच्च शिक्षा से इन क्षेत्रों को जोड़ा जा सका है। लिंग के सन्दर्भ में मीडिया ने सावधानी और विवेकपूर्ण ढंग से कवरेज की है। ट्रांस –जेंडर को अब समाज में नयी पहचान मिली है। जी टी.वी. पर दिखाया जाने वाला

धारावाहिक "शक्ति – अस्तित्व के अहसास" किन्नरों को समाज में स्वीकृति दिलाने से सम्बंधित है। बच्चों की समस्याओं को भी मीडिया ने अपने कार्यक्रमों में जगह दी है। अभिनेता आमिर खान द्वारा निर्देशित धरावाहिक सत्यमेव जयते ने बच्चों की समस्याओं को नया मंच दिया और सरकार और जनता दोनों तो सोचमे को मजबूर किया। फिल्म जगत का योगदान अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। तारे जमीं पर, पा, ब्लैक . काबिल आदि फिल्मों में निःशक्त लोगों की समस्याओं को संजीदगी से पेश किया गया है। गरीबी उन्मूलन और गरीबों की समस्याओं को मुखरित करने में मीडिया के योगदान को भूलाया नहीं जा सकता है। स्लम बस्तियों में स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, रोजगार, राशन कार्ड का बनन, सस्ते अनाज का वितरण – इन सभी में जो विसंगतियां हैं उसे मीडिया द्वारा समय समय पर दिखाया जाता रहा है। रसोई गैस के सम्बन्ध में उज्जवला योजना, बैंकिंग के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री जन-धन योजना - ये सभी मीडिया द्वारा घर घर तक पहुंचाए गए हैं। बाल श्रम और बंधुआ मजदूरी के खिलाफ मीडिया ने जब कमर कस ली तो व्यापक पैमाने पर बदलाव नजर आया और कोर्ट ने भी आदेश जरी करके कहा है कि वर्ष से कम उम्र के बच्चों से मजदूरी कराना अपराध की श्रेणी में रखा जायेगा।

2.9 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप सभी यह जान चूके होंगे कि किशोरावस्था क्या है , नगरीकरण और आर्थिक परिवर्तन की कौन – कौन सी विशेषताएँ है और किशोरावस्था के निर्माण पर उनका क्या प्रभाव पड़ा है। आप यह भी जान सकें हैं कि मीडिया समाज का आईना है और लिंग, वर्ग और गरीबी आदि के निरूपण के सन्दर्भ में मीडिया की भूमिका दिन प्रतिदिन बढती जा रही है।

2.10 शब्दावली

1. **किशोरावस्था** -बचपन के बाद और व्यस्क होने के पूर्व की अवस्था
2. **नगरीकरण** -नगरों का भौतिक विस्तार यथा जनसँख्या, क्षेत्रफल, आवास आदि में वृद्धि।
3. **आर्थिक परिवर्तन** -जनसाधरण की क्रय क्षमता, जीवन स्तर एवं सुख – सुविधाओं में वृद्धि।
4. **मीडिया** - संचार व्यवस्था में माध्यम।
5. **न्यू मीडिया** - न्यू मीडिया' संचार का वह संवादात्मक (Interactive) स्वरूप है जिसमें इंटरनेट का उपयोग होता है

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नगरीकरण
2. CIVITAZ

3. 31.2 प्रतिशत
4. महाराष्ट्र
5. सत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. असत्य
9. प्रिंट मीडिया
10. बंगाल गजट
11. रेडिओ
12. 1959
13. पितामह
14. 1991
15. इन्टरनेट
16. तीन
17. आलम आरा

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, एस० पी० (2003). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहबाद , शारदा प्रकाशन।
2. सिंह, जे० पी० (2013). अवधारणाएं एवं सिद्धांत, नयी दिल्ली, पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
3. राव एम एस ए (1974). अर्बन सोशियोलॉजी इन इंडिया , ओरिएंट लॉन्गमैन।
4. सोवनी एन०वी० (2016). अर्बनाइजेशन एंड अर्बन इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगन एशिया पब्लिशिंग हाउस।
5. विद्या भूषण एवं सचदेवा (2013). ऐन इंट्रोडक्शन टू सोशियोलॉजी, इलाहाबाद, किताब महल।
6. सिंह, अमिता (2015). लिंग एवं समाज, नई दिल्ली, विवेक प्रकाशन, ।
7. अरोड़ा, हरीश (2007). जन संचार, नई दिल्ली, युवा साहित्य चेतना मंडल।

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. नगरीकरण एवं आर्थिक परिवर्तन से आपका क्या आशय है? किशोरों पर नगरीकरण और आर्थिक परिवर्तन के प्रभाव की चर्चा करें।

2. मीडिया से आप क्या समझतें हैं ? मीडिया के प्रकारों की चर्चा करें।
3. मीडिया की भूमिका का उल्लेख करें।
4. लिंग, वर्ग और गरीबी के निरूपण में मीडिया कहाँ तक सफल रहा है ? उचित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करें।

इकाई3 -बच्चे एवं किशोर-किशोरियों की जीवन वास्तविकताएँ: समग्र विश्लेषण

A Comprehensive Critique of the Children's and Adolescents lived realities

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विभिन्न परिस्थितियों में बचपन और किशोरावस्था
  3.3.1 बच्चों का बचपन और किशोरावस्था: विभिन्न परिस्थितियों के उदाहरण
3.4 बच्चों एवं किशोर-किशोरियों के संदर्भ में उनके अभिभावकों एवं शिक्षकों की धारणाएं
3.5 कक्षायी विमर्श में बच्चों एवं किशोर-किशोरियों के जीवन वास्तविकताओं को शामिल करना
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ सूची एवं उपयोगी पठन सामग्रियां
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अक्सर हम अपने मन में बचपन की एक आदर्श कल्पना करते हैं। परन्तु, विचार करें तो पाएंगे कि हर बच्चे का न तो बचपन एक जैसा होता है और ना ही किशोरावस्था। चाहे, हमारा खुद का बचपन हो या अपने परिवार के भाई-बहनों का बचपन, आस-पड़ोस के बच्चों का बचपन या फिर दूर-दराज़ के गांव-शहर में रहनेवाले बच्चों का बचपन, सब के बचपन के अनुभव समान नहीं हैं। उसी तरह, सब के लिए किशोरावस्था का संदर्भ भी अलग-अलग होता है। हम पाते हैं कि एक ही घर में एक लड़के और लड़की से उसके माता-पिता का बर्ताव बहुत भिन्न प्रकार से होता है, जिसका उनके व्यक्तित्व विकास पर गहरा असर पड़ता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि हर बच्चे के बचपन और किशोरावस्था की जीवन वास्तविकताएं

विशिष्ट होती हैं। एक शिक्षक या शिक्षिका के लिए इसे समझना बहुत जरूरी है ताकि वह अपने स्कूल के बच्चों की जीवन परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील हो सके। साथ ही, कई बच्चे या किशोर-किशोरियां ऐसे भी हैं जो अपनी परिस्थितियों के कारण कभी भी स्कूल नहीं आ पाते। हम अपने आस-पास वैसे बच्चों को भी देखते हैं, लेकिन शायद ही उनकी जीवन वास्तविकताओं के बारे में संवेदित होते हैं।

इस इकाई में विभिन्न प्रसंगों-उदाहरणों के माध्यम से बचपन और किशोरावस्था में बच्चों की जीवन परिस्थितियों के बारे में विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है। साथ ही, बचपन या किशोरावस्था को लेकर सामाजिक धारणाओं की चर्चा की जा रही है क्योंकि बच्चों के बचपन या किशोरावस्था को आकार देने में उन धारणाओं की विशेष भूमिका होती है। हर अभिभावक, माता-पिता या यहां तक कि स्कूल या शिक्षणगण भी कई तरह की सामाजिक रूढ़िगत धारणाओं पर विश्वास करके बच्चों के बचपन या किशोरावस्था को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं। बच्चों का बचपन कैसा हो या किशोरावस्था में उन्हें कैसा बर्ताव करना चाहिए, यह हर समाज के नैतिक विमर्श का केन्द्र रहता है। अतः इन बिन्दुओं पर शिक्षकों की एक साफ समझ होनी चाहिए और उन्हें सही तरीके से बचपन और किशोरावस्था के मुद्दों को अपनी कक्षाओं में भी लाना चाहिए। इस इकाई के माध्यम से वैसी समझ बनाने का एक प्रयास किया गया है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. बता सकेंगे कि बच्चों के बचपन की जीवन परिस्थितियों में किस प्रकार का अंतर है।
2. समझ सकेंगे कि किसी सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में बच्चों के बचपन की क्या चुनौतियां हैं।
3. बता सकेंगे कि किशोर-किशोरियों के जीवन स्थिति का उनके विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है।
4. समझ सकेंगे कि माता-पिता या शिक्षकों को बच्चों के बचपन या किशोरावस्था के बारे में किस-किस प्रकार की धारणाएं होती हैं और क्यों?
5. समझ सकेंगे कि बच्चों के बचपन एवं किशोरावस्था की जीवन परिस्थितियों को कक्षायी विमर्श में किस तरह शामिल किया जाए।

3.3 विभिन्न परिस्थितियों में बचपन और किशोरावस्था

आर्दश तौर पर हम मानते हैं कि बचपन ऐसी अवस्था होती है जिसमें मनुष्य सभी प्रकार की चिंताओं से स्वतंत्र होता है। यह अवस्था उत्साह, उमंग व सुनहरे सपनों से भरी होती है। परन्तु बहुत सारे बच्चों के लिए ऐसा ‘आदर्श‘ बचपन एक स्वप्न जैसा ही होता है क्योंकि उनकी जीवन परिस्थितयां बहुत ही विषम एवं विकट होती हैं। ‘विषम या विकट‘ परिस्थितियों का अर्थ केवल आर्थिक गरीबी नहीं है बल्कि घरेलु हिंसा, मानसिक तनाव, पारिवारिक अपेक्षा जैसे कारण भी उनके बचपन एवं किशोरावस्था को गहराई से

प्रभावित करते हैं। इसलिए केवल आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी बच्चे के बचपन या किशोरावस्था के बारे में निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए। यह अवश्य है कि सामाजिक-सांस्कृतिक के साथ-साथ बच्चों के जीवन पर उनके आर्थिक संदर्भका गहरा असर जरूर पड़ता है। नीचे दी गई सारणी में बच्चों के बचपन ओर किशोरावस्था के कुछ उदाहरणात्मक परिस्थितियों को दर्शाया गया है। आप इस सारणी में अपने अनुभव से और भी परिस्थितियों को जोड़ सकते हैं।

बचपन एवं किशोरावस्था से सम्बंधित जीवन परिस्थितियों के उदाहरण	
1	एकल परिवार में बचपन एवं किशोरावस्था
2	संयुक्त परिवार में बचपन एवं किशोरावस्था
3	परिवारिक कलह में बचपन एवं किशोरावस्था
4	गरीब परिवार में बचपन
5	सुविधाओं से सम्पन्न परिस्थितियों में बचपन एवं किशोरावस्था
6	रूढ़ीगत मान्यताओं से ग्रस्त परिवार में बचपन
7	आधुनिक खयालोंवाले परिवार में बचपन
8	बालमज़दुरी में फंसा बचपन एवं किशोरावस्था
9	ग्रामीण परिदृश्य में बचपन की परिस्थितियां
10	शहरी संदर्भ में बचपन
11	अकेले बच्चे का बचपन
12	अपने भाई-बहनों के साथ बचपन
13	फुटपाथ पर जीवन व्यतीत करनेवाले बच्चों का बचपन
14	अच्छे विद्यालयों में पढ़नेवाले बच्चों का बचपन
15	लड़कियों का बचपन एवं किशोरावस्था
16	लड़कों का बचपन एवं किशोरावस्था
17	अशांत क्षेत्रों में रहनेवाले बच्चों का बचपन एवं किशोरावस्था
18	तकनीकी एवं मीडिया उपकरणों के अति प्रभाव में बच्चों का बचपन एवं किशोरावस्था
19	बदलते सामाजिक मूल्यों के प्रभाव में बच्चों का बचपन एवं किशोरावस्था
20	धार्मिक-सांस्कृतिक माहौल में बचपन

बचपन का अनुभव कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि बच्चा लड़का या लड़की है, किस धर्म का है, किस जाति व समुदाय का है, परिवार की आर्थिक स्थिति कैसी है, परिवार में सदस्य कितने हैं आदि। इन सब के कारण भी बच्चे के बचपन के संदर्भों में विविधता दिखाई देती है। आप अपने स्थानीय परिवेश में निवासरत विभिन्न समुदायों की जानकारी प्राप्त करें और उसके आधार पर उपरोक्त सारणी को समृद्ध करें।

भारत में विश्व के सर्वाधिक बाल मजदूर हैं। लाखों बच्चे अत्यन्त जोखिम भरे उद्योगों में लगे हुए हैं, जैसे- आतिशबाजी, दियासिलाई उद्योग, गलीचे बुनना, शीशा उद्योग, चूड़ी उद्योग, बीड़ी उद्योग, कोयला और पत्थर की खानों में काम करना, बागानों में काम करना आदि। हम सभी भी कहीं न कहीं बच्चों को चाय की दुकानों पर काम करते, होटलों पर बरतन मांजते, स्कूटर साईकिल रिपेयर की दुकानों पर काम करते या बूट पालिश करते, कचरा बिनते अथवा बैलून बेचते देखते हैं। कौन बच्चा चाहेगा कि सुबह जल्दी उठकर लोगों की झूठन साफ़ करे या ठंड में ठंडे पानी से कप-प्लेट्स और बर्तन साफ़ करे या फिर कांच, बारूद, जूट में हाथ डालकर दिन भर पिसता रहे? हमने बस अड्डों और रेलवे स्टेशनों, देश के महानगरों के रेलवे स्टेशन पर भी ऐसे दृश्य देखे हैं जहाँ बाल मजदूर काम करते या भीख माँगते दिखायी पड़ते हैं। हमारे देश के लाखों बच्चों के बचपन एवं किशोरावस्था की ये वास्तविक परिस्थितियां हैं। पर क्या हम उनके प्रति संवेदनशील हो पाते हैं?

कई बच्चों के ना तो मा-बाप होते हैं और ना ही कोई घर-परिवार। ऐसे बच्चों को अपना बचपन कई बार अनेक विकट परिस्थितियों से होकर अस्वास्थ्यकर स्थितियों में अपर्याप्त भोजन, कुपोषण के शिकार, फटेहाल अपना जीवन यापन करना पड़ता है। पिछड़े पहाड़ी गांवों या शहर की गरीब बस्तियों के बच्चों की स्थिति भी लगभग इसी तरह की देखी जा सकती है। उसी तरह, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार अधिकांशतः सड़क किनारे कच्चा घर बनाकर रहते हैं। इनके बच्चे भी अपना बचपन फुटपाथ पर ही बिताते हैं। ऐसे बच्चे कई बार बुरी आदतों का शिकार हो जाते हैं और उनसे भीख मंगवाने, चोरी करने जैसे कार्य भी करवाए जाते हैं। परन्तु, विकट परिस्थितियों के बावजुद, कई बच्चे समाज में अपनी पहचान बनाने में सफल भी होते हैं। अतः यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि विपरित परिस्थितियों में रह रहे बच्चों की सोंच में केवल कुण्ठा या नकारात्मकता ही होगी। आगे के खण्ड में हम ऐसे कुछ परिस्थितियों के उदाहरणों का अध्ययन करेंगे जो बचपन एवं किशोरावस्था की चुनौतियों तथा विविधताओं को समझने में मदद करेंगी।

क्रियाकलाप

स्थानीय परिवेश में स्थित विभिन्न समुदायों की सूची बनाइए। किसी एक समुदाय के बच्चे के बचपन का अध्ययन उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक स्थिति के आधार पर करें तथा प्राप्त निष्कर्ष से उनके बचपन को स्वस्थ एवं सुरूचिपूर्ण बनाने के लिए सुझाव दें।

3.3.1 बच्चों का बचपन और किशोरावस्था: विभिन्न परिस्थितियों के उदाहरण

इस खण्ड में बच्चों की जीवन परिस्थितियों के कुछ काल्पनिक एवं साहित्यिक उदाहरणों को प्रस्तुत किया गया है, जिनमें बच्चों की वास्तविक चुनौतियों एवं अनुभवों की छवि मिलती है। इस तरह के कई उदाहरण आप स्वयं भी बना सकते हैं तथा बाल साहित्यों से भी ले सकते हैं। यहां मुख्य तौर पर वैसे उदाहरणों को लिया गया है, जिसमें बच्चों के सम्मुख विपरीत परिस्थितियां हैं। बच्चों के बचपन एवं किशोरावस्था के संदर्भ में सुखद परिस्थितियों के उदाहरण आप स्वयं से बनाएं एवं उनपर विचार करें। आइए निम्नलिखित परिस्थितयों का अध्ययन करें।

परिस्थिति -1

देहरादून के एक साधारण सी बस्ती में सरीता अपने परिवार के साथ रहती है। वह ग्यारह साल की है। सरीता की माँ कपड़ों की सिलाई करती है, पिता ठेले पर फल बेंचते हैं। सरीता का एक छोटा भाई भी है जो तीन साल का है। मां-बाप के काम पर जाने के कारण सरीता को ही अपने भाई का खयाल रखना होता है। सरीता को पढ़ना अच्छा लगता है इसलिए वह स्कूल जाने का मौका नहीं छोड़ती, लेकिन ऐसा कम ही हो पाता है क्योंकि उसे घर का बहुत सारा काम करना होता है और साथ में भाई को भी सम्भालना पड़ता है। सरीता बड़ी होकर नर्स बनना चाहती है जिससे वह अपनी बस्ती के बीमार लोगों की देखभाल कर सकें।

बस्ती से सटे हुए एक निम्न मध्यमवर्गीय कॉलोनी में राजेश रहता हैं। वह दस साल का है। उसके माता-पिता उसको खुब पढ़ाना चाहते हैं। लेकिन उसका मन पढ़ने में नहीं लगता है। वह हमेशा दूसरे बच्चों से झगड़ता रहता है। इस कारण, राजेश के पिता उसे हमेशा डांटते रहते हैं। राजेश को स्कूल में भी डांट पड़ती है क्योंकि वह होमवर्क करके नहीं जाता है। सारी सुविधाओं के होने के बावजुद पढ़ाई में वह अपनी कक्षा के सारे बच्चों से पीछे है। इसके कारण, बाकि बच्चे उसका मजाक उड़ाते हैं। पढ़ाई को लेकर उसके ऊपर माता-पिता का जो दबाव है, उसके कारण वह अब झूठ भी बोलने लगा है।

उपरोक्त प्रसंग के माध्यम से आप सरीता और राजेश, दोनों की परिस्थितियों से अवगत हुए। जहां सरीता अपने घरेलु कामकाज एवं जिम्मेवारियों के कारण स्कूल नहीं आ पाती वहीं राजेश के लिए स्कूल बहुत रोचक स्थान नहीं है। दोनों के बचपन की अपनी-अपनी चुनौतियां हैं।

विचार करें

- क्या बहुत सारी जिम्मेवारियों के बोझ के कारण सरीता बचपन में ही व्यस्क हो गयी है?
- बचपन एक केवल शारीरिक अवस्था से सम्बंधित है या इसके मानसिक अवस्था भी शामिल है। कैसे?
- राजेश की परिस्थिति सरीता से बहुत अच्छी है, फिर भी वह कई तरह के दबाव में जी रहा है? इसका उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ सकता है?

- उपरोक्त उदाहरण में देखते हैं कि एक तरफ सरीता के लिए स्कूल सबसे प्रिय स्थल है वहीं राजेश के लिए यह उबाने वाला जगह है? ऐसा क्यों है?
- आप अपने आस-पास से सरीता या राजेश जैसे किसी एक बच्चे का चयन कर उसकी दिचचर्या का विश्लेषण करें।

परिस्थिति -2

कमल साल भर पहले स्कूल में पढ़ने आया था लेकिन अब पढ़ने नहीं आता। पता लगाया तो पाया कि उसके माता-पिता नहीं हैं और वह अपने चाचा के यहां रहता है। उसके चाचा का कहना है कि पढ़लिखकर क्या मिलेगा, चाय की दुकान पर कार्य करेगा तो पैसे मिलेंगे। अपने चाचा के बात को कमल नहीं टाल सकता क्योंकि माता-पिता की मृत्यु के बाद उसके चाचा ने ही उसको सहारा दिया। कमल को इस उम्र में काम करना अच्छा नहीं लगता है, उसे तो अन्य बच्चों की तरह खेलना-कूदना और स्कल जाना पसन्द है। लेकिन अपनी परिस्थितियों के कारण उसे चाचा का कहा मानकर दुकान पर काम करना होता है। इस कारण, कमल पांचवी कक्षा के आगे नहीं पढ़ पाया। चाय की दुकान ठीक स्कूल के बगल में ही है। कमल हर दिन स्कूल जाता है लेकिन पढ़ने नहीं बल्कि स्कूल के शिक्षकों एवं स्टाफ को चाय पिलाने। उसी स्कूल में कमल के चाचा के दोनों बच्चे पढ़ते हैं जो उसे चाय लेकर स्कूल आते रोज देखते हैं और यह नहीं समझ पाते कि उनकी तरह कमल स्कूल क्यों नहीं आ सकता।

विचार करें:

- कमल की वैसी जीवन परिस्थिति क्यों है? इसका कमल के आगे के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा।
- क्या बच्चे अपनी जीवन परिस्थितियों को बदलने में सक्षम नहीं होते? क्यों या क्यों नहीं?
- यदि कमल आपके स्कूल का विद्यार्थी होता तो आप क्या करते?

हम सभी जानते हैं कि बच्चे बड़ों से ज्यादा संवेदनशील होते हैं, ये भेदभाव से परे सभी के प्रति स्नेह रखते हैं, जैसाकि उपरोक्त कहानी में दिखता है। ऐसा ही विश्वास व स्नेह बच्चे अपने बड़ों से चाहते हैं। परन्तु, बच्चों के पढ़ने व खेलने की आयु में उन्हें विपरीत परिस्थितियों में बचपन गुजारने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। इस तरह हम बच्चों का विश्वास खोने लगते हैं और बच्चे विपरीत परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए गलत दिशा में प्रस्थान कर जाते हैं। ये बच्चे सामान्यतः हिंसा में लिप्त हो जाते हैं और उनमें नशे की आदत पड़ जाती है, बाल प्रताड़ना से उनमें घृणा, भय, उग्रता उत्पन्न हो जाती है। कामकाजी बच्चों में नशे की आदत अक्सर देखने को मिलती है। वे यह नहीं जानते कि नशे की चीजों के सेवन करने से शरीर को कितना नुकसान होता है? उनकी शारीरिक क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है। उन्हें कौन-कौनसी बीमारियां हो सकती हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में जीवन यापन कर रहे कई बच्चे बहुत ही प्रतिभाशाली भी होते हैं जो अपनी परिस्थितियों को बदलने के लिए निरन्तर प्रयासरत होते हैं।

हमारे समाज में ऐसे कई उदाहरण है, जिसमें ऐसी ही परिस्थितियों से निकलकर आए बच्चों और किशोर-किशोरियों ने समाज के सम्मुख प्रेरणादायी उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कमल की कहानी से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि आर्थिक पृष्ठभूमि में भी बच्चों की जीवन वास्तविकताओं को समझने की नितांत आवश्यकता है विशेषकर गांव के वंचित वर्गों के बच्चों के संदर्भ में। बच्चों के जीवन में गरीबी ने बचपन के अर्थ को कई प्रकार से प्रभावित किया है। विभिन्न समाजों ने बचपन को अलग-अलग समयों में कुछ विशेषताओं के रूप में गढ़ा है- जैसे, साहसी, नटखट, चालाक, स्फूर्तिवान इत्यादि। परन्तु आप एक कुपोषित और बीमार बच्चे में मुश्किल से हीं उन विशेषताओं को देख पाएंगे। ऐसी परिस्थिति के बच्चों का बचपन भूख, बीमारी और कुपोषण द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। आज के समय में एक और परिस्थिति ने गाँव के बच्चों को अलग तरह से भी प्रभावित किया है। बच्चों और पिता के संबंधों में निष्क्रियता आयी है जो उनके पारिवारिक जीवन पर प्रभाव डाल रही है। कामकाज के कारण, अक्सर पिता या माता-पिता दोनों ही अपने बच्चों को उतना समय नहीं दे पाते जितने की जरूरत बच्चों को होती है। ऐसी परिस्थिति का गहरा असर बच्चों मनोभाव पर पड़ता है।

परिस्थिति -3

किसना गांव का एक किसान था। सीधा-सादा और मेहनती किसान। दिनभर खेत पर लगा रहता। खूब काम करता। मेहनत करता। गाँव में उसका मान था। लोग उसे बहुत मानते थे। बड़ी साख थी उसकी।

किसना की एक बेटी थी- लाली। लाली बहुत समझदार थी। हमेशा खुश रहती। लाली के तीन छोटे भाई भी थे। उनसे बहुत प्यार था उसे। भाई भी उसे बहुत चाहते थे। भाई-बहन में बड़ा मेल था। किसना यह देख बहुत खुश था। लेकिन उसके मन में एक टीस थी। यह टीस उसे बहुत सालती थी। वह बेचैन हो उठता था। घर का सारा बोझ लाली पर जो पड़ गया था।

कल की सी बात है। देखते-देखते पांच बरस गुजर गए। लाली की माँ का जापा बिगड़ गया था। वह चल बसी थी। किसना के सामने अंधेरा छा गया था। उसका सब कुछ लुट गया था। घर उजड़ गया था। कहीं का नहीं रहा वो। छोटे-छोटे चार टाबर। टाबरों को देख उसका मन भर आता था। कई दिनों तक सुध-बुध खोये रहा था। लेकिन टाबरों का खयाल तो करना ही था।

लाली यह सब चुपचाप देखती रहती। खोई रहती। भाइयों को अपने से चिपकाये रखती। बापू की हालत देख उसका मन भर आता। चुपके-चपुके कभी रो लेती। कई दिनों तक चूल्हा नहीं जला। पास पड़ौस से कब तक काम चलता।

लाली ने अपने को संभाला। घर को संभाला। काम में जुट गयी। घर में मन लगने लगा। कुछ मन का बोझ भी हलका हुआ। छोटी- सी लाली बड़ी हो गई थी। लगा बचपन तो कभी था ही नहीं।

(स्रोत: ऐसे हुई सयानी लाली, लेखक- दिनेश पुरोहित, नवसाक्षर साहित्यमाला, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली)

विचार करें

- उपरोक्त कहानी में लाली की जो परिस्थिति है, उसका उसके बचपन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?
- क्या आपने अपने आस-पास के परिवेश में लाली के बचपन जैसी परिस्थितियों को देखा है। उन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर एक कहानी अपने शब्दों में वर्णित कीजिए।

उपरोक्त कहानी के आधार पर हम गांव में रहनेवाले उन बच्चियों के जीवन परिस्थितियों का चित्रण कर सकते हैं जो कई परिस्थितियों के कारण स्वाभाविक उम्र से पहले ही सयानी हो जाती हैं। अपने बचपन से सीधे वयस्क अवस्था में पहुंचजानेवाली इन लड़कियों के जीवन में सही मायने में किशोरावस्था कभी आता ही नहीं है।

आर्थिक या परिस्थितिजन्य चुनौतियों के साथ-साथ, किसी बच्चे का लड़का या लड़की होना भी, उसकी जीवन परिस्थितियों को निर्धारित करता है। समाज में हम अक्सर पाते हैं कि लड़के और लड़कियों के मध्य विभेद करने की सामाजिक प्रक्रिया जन्म के साथ हीं प्रारंभ हो जाता है। इसका प्रभाव हर किशोर-किशोरी के जीवन पर पड़ता है चाहे वे किसी भी वर्ग या समुदाय से आते हों। आइए इस संदर्भ में निम्नलिखित परिस्थिति का अध्ययन करें।

परिस्थिति-4

आनन्दी का जन्म हल्द्वानी के एक समृद्ध परिवार में हुआ था। आनन्दी के स्कूल में एन.सी.सी. का प्रशिक्षण दिया जाता था, जिससे प्रेरित होकर उसे सेना में अधिकारी बनने का मन था। इसलिए, अपने स्कूल में आनन्दी एन.सी.सी. लेना चाहती थी। इस बारे में उसने अपनी माँ से बात की। लेकिन, माँ ने उसको एन.सी.सी. लेने की स्वीकृति नहीं दी। माँ का यह तर्क था कि यह लड़कियों का वास्तविक काम नहीं है इसलिए यदि आनन्दी एन.सी.सी. में बहुत अधिक शारीरिक श्रम करेगी तो उसकी तबियत बिगड़ जाएगी। माँ ने आनन्दी को लड़के और लड़की के बीच के फर्क को कई उदाहरणों से समझाया। अंततः आनन्दी को माँ की बात माननी पड़ी और उसे भी यह लगने लगा कि एन.सी.सी. लेना उसके लिए ठीक नहीं है। वहीं, आनन्दी के भाई ने बिना किसी से पूछे ही स्कूल में एन.सी.सी प्रशिक्षण में नाम लिखवा लिया। इसपर घरवालों को कोई आपत्ति नहीं हुई।

विचार करें

- आनन्दी की माँ का जो तर्क है, उसके पीछे का मूल कारण क्या हो सकता है?
- क्या किसी बच्चे का लड़की या लड़का होना उसकी जीवन परिस्थितियों को गहराई से प्रभावित करता है? कुछ उदाहरण प्रस्तुत करें।
- सामाजिक धारणाओं का बच्चों के बचपन और किशोरावस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है, उपरोक्त कहानी के आधार पर विश्लेषित करें।

उपरोक्त कहानी में आनन्दी की परिस्थिति को देखकर यह भ्रामग समझ बन सकती है कि लड़को के उपर सामाजिक दबाव कम होता है। वास्तव में ऐसा नहीं है। लड़कों पर भी कई तरह के सामाजिक दबाव होते हैं। फर्क यह है कि उनकी प्रकृति लड़कियों पर पड़नेवाले समाजिक दबाव से भिन्न है। प्रायः यह माना जाता है कि लड़के बड़े होकर कमाने जायेंगे जिससे परिवार को आर्थिक संबल मिल सके, इसलिए लड़को को ऐसे कामों के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिससे वे मजबूत और बुद्धिमान बन सकें। यही नहीं परिवार यह भी तय करता है कि लड़कियों को कौन से कौशल सिखने की जरुरत है जिसे वे घरेलू कार्यों के लिए उपयोगी हो सके। सिलाई, बुनाई, खाना पकाना, गीत संगीत जैसे विषय महिलाओं के लिए आवश्यक माने जाते हैं। परिवार हमेशा इस बात की अपेक्षा करता है कि लड़कियां लड़कों की तरह व्यवहार करने के बजाए लड़कियों के लिए निर्धारित मानकों के अनुरूप हीं कार्य करें, जिससे समाज में उस परिवार की मान प्रतिष्ठा बनी रहे। बच्चों के लिए इन परिस्थितियों से पलायन बहुत मुश्किल ही हो पाता है और वे स्वयं को इन परिस्थितियों में समायोजित करनेवाला व्यवहार सीख लेते हैं। यद्यपि वर्तमान सन्दर्भ में परिवर्तन दिखते है फिर भी अभी भी परिवार में बच्चे एवं बच्चियों के बढ़ने और विकसने की व्यवस्था में फर्क दिखता है। जरुरी नहीं की यह फर्क हर परिवार के लिए एक जैसा हो। परिवार की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, भोगौलिक, धार्मिक और भाषाई परिप्रेक्ष्य भी इस बात को निश्चित करता है कि परिवार में बच्चों और किशोर-किशोरियों के साथ कैसा व्यवहार करना है।

हमारे बच्चे अक्सर कई तरह के बाल प्रताड़ता से गुज़रते हैं। यह शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक होती है। छोटा बच्चा जिसे पूरी समझ नहीं है उसे डांटना एक मानसिक प्रताड़ना है। गलती हो जाने पर चपत लगा देना, या स्कूल में उठक-बैठक लगाना, कक्षा के बाहर खड़ा कर देना, स्केल से मारना आदि एक शारीरिक प्रताड़ना है। बच्चों की, कक्षा में सबके सामने हंसी उड़ाना, नम्बर कम आने पर उसे अपशब्द कहने की परिस्थिति में बच्चा या तो रोने लगता है या गर्दन झुकाकर एकदम चुप हो जाता है। इन सभी बातों से बच्चों की भावनाओं को ठेस पहुंचती है। जिससे वह अपने साथियों व अन्य शिक्षकों के सामने आने से कतराता है। उसे लगता है कि वे सब उसे पुनः प्रताड़ित करेंगे। इसीतरह, प्रतियोगी परीक्षाओं के दौर ने बच्चों पर एक बड़ा दबाल डाल रखा है, जिसके कारण कई सारे बच्चों के जीवन से उमंग गायब हो जाता है। सामाजिक अपेक्षाओं से दबे बच्चे जब उन्हें पाने में असफल होते हैं तो समाज का सामना न कर पाने के डर से वे गलत कदम भी उठा लेते हैं। समुदाय में बच्चे के ऊपर कई सवालों के दबाव होते हैं।

'बड़े होकर क्या बनोगे' ऐसे प्रश्न घर पर आनेवाले अतिथियों द्वारा बार बार पूछे जाते हैं या फिर कहीं न कही परिवार ही कई माध्यमों से यह घोषणा करने लगता है कि उसके बच्चे आगे क्या बनेंगे। इस प्रकार वयस्क बनने की तैयारी का आगाज़ हो जाता है और वयस्क बनने से बहुत पहले ही बच्चे अपने बचपन से कट जाते हैं।

बच्चा का लालन-पालन परिवार में होता है जहां उसे माता-पिता का लाड़-दुलार व संस्कार उसके व्यक्तित्व के विकास मे सहायक होते हैं। बच्चा अपने परिवार में रहकर परिवार के सभी सदस्यों से

प्रतिदिन कुछ ना कुछ सीखकर आत्मसात करता रहता है। लेकिन कभी-कभी ऐसी परिस्थिति भी बन जाती है जहाँ परिवार के सदस्य एक दूसरे से मन से दूरी बना लेते हैं एक दूसरे की भावनाओं का आदर नहीं करते हैं। अक्सर सदस्यों के मध्य टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसका सीधा प्रभाव बाल मन पर पड़ता है। वह अन्तर्मुखी चुप -चुप रहने लगता है और अपनी प्रतिभा का पूर्ण प्रदर्शन नहीं कर पाता है। माता-पिता का अलगाव बच्चा मे असुरक्षा की भावना उत्पन्न कर देता है।

पढ़ाई-लिखाई से लेकर भोजन करने तथा कपड़ा पहनने तक में बच्चे कई प्रकार के दबावों व प्रतिबंधों को झेलते हैं। चाहे ये दबाव स्कूल के हों या परिवार के, इससे बच्चों के जीवन में ऐसे अवसर लगातार कम होते जा रहे हैं, जब वे आजादी से अपनी पसंद का काम कर सकें। साथ ही, स्कूल की पुस्तकें भी बच्चों पर मानसिक बोझ डालती हैं। कुल मिलाकर यदि देखा जाए तो बच्चों से वे सारे पल छिन लिये जाते हैं जब वे स्वयं को बच्चा समझ सकें। इसके कारण, वे अपने आपको एकाकी, हीन भावना से ग्रस्त, उग्र, अन्तर्मुखी अथवा बहिर्मुखी, संवेदनहीन, कुसमायोजित, समझने लगते हैं। शिक्षक होने के नाते हमारी भूमिका अहम हो जाती है क्योंकि यदि परिवार, बच्चे की पहली पाठशाला है तो स्कूल उसका दूसरा महत्वपूर्ण चरण है जहां उसके भविष्य की नींव डाली जाती है। अपने आस-पास के परिवेश में, स्थानीय परिवेश, समुदाय, समाज में रहने वाले बच्चों को जानें, उनकी आदतें व्यवहार व अन्य बातों का अध्ययन करें जिससे स्कूल में एक अच्छा वातावरण- बन सके तथा बच्चे द्वारा अनूभूत विपरीत परिस्थिति से उबरने में मदद कर सकें।

''जब मैं बच्चा था तो छोटी-छोटी चीज़ों से अपने खिलौने बनाने और अपनी कल्पना में नए-नए खेल ईजाद करने की मुझे पूरी आज़ादी थी। मेरी खुशी में मेरे साथियों का पूरा हिस्सा होता था; बल्कि मेरे खेलों का पूरा मज़ा उनके साथ खेलने पर निर्भर करता था। एक दिन हमारे बचपन के इस स्वर्ग में वयस्कों की बाज़ार-प्रधान दुनिया से एक प्रलोभन ने प्रवेश किया। एक अंग्रेज़ दुकान से खरीदा गया खिलौना हमारे एक साथी को दिया गया; वह कमाल का खिलौना था - बड़ा और मानो सजीव। हमारे साथी को उस खिलौने पर घमंड हो गया और अब उसका ध्यान हमारे खेलों में इतना नहीं लगता था; वह उस कीमती चीज़ को बहुत ध्यान से हमारी पहुँच से दूर रखता था, अपनी इस खास वस्तु पर इठलाता हुआ। वह अपने अन्य साथियों से खुद को श्रेष्ठ समझता था क्योंकि उनके खिलौने सस्ते थे। मैं निश्चित तौर पर कह सकता हूँ कि अगर वह इतिहास की आधुनिक भाषा का प्रयोग कर सकता तो वह यही कहता कि वह उस हास्यास्पद रूप से श्रेष्ठ खिलौने का स्वामी होने की हद तक हमसे अधिक सभ्य था।

अपनी उत्तेजना में वह एक चीज़ भूल गया - वह तथ्य जो उस वक्त उसे बहुत मामूली लगा था - कि इस प्रलोभन में एक ऐसी चीज़ खो गई जो उसके खिलौने से कहीं श्रेष्ठ थी, एक श्रेष्ठ और पूर्ण बच्चा। उस खिलौने से महज उसका धन व्यक्त होता था, बच्चे की रचनात्मक ऊर्जा नहीं, न ही उसके खेल में बच्चे का आनंद था और न ही उसके खेल की दुनिया में साथियों को खुला निमंत्रण।''

-रवीन्द्रनाथ टैगोर के निबंध 'सभ्यता और प्रगति' से

पिछले तीन-चार दशकों में मीडिया, मनोरंजन साधनों व प्रसार माध्यमों में व्यापक विकास हुआ है। इस विकास ने बच्चों की जीवन परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन किये हैं जैसे- टी.वी., फिल्में, गाने, आदि हमारे समाज में मनोरंजन के सबसे लोकप्रिय और प्रभावशाली माध्यम बन गये हैं। इंटरनेट के प्रसार तथा बच्चों पर इसके प्रभावों से भी आप कुछ हद तक परिचित होंगे। इन साधनों ने समाज में स्वयं की इतनी मजबूत पैठ बना ली है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो इनके बिना बच्चों का बचपन सुविधाओं से वंचित हो जायेगा। बच्चों को सभी आधुनिक उपकरणों को उपलब्ध कराना अब समाज और परिवार की अनिवार्यता बनती जा रही है। बाजारीकरण के माध्यम से इसे काफी बढ़ावा भी दिया जा रहा है। यह एक तरह से बचपन को बचपन से दूर करने जैसा ही है क्योंकि बचपन का नियंत्रण बच्चे और परिवार की जगह पर कोई अन्य बाहरी संस्था के द्वारा किया जाने लगा है। यहां तक कि बच्चों के खिलौनों पर भी बाजार का कब्जा हो गया है। बच्चे बालसुलभ खेलों को छोड़कर तकनीकी केन्द्रित खेल-खिलौनों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। इस परिस्थिति का उनके सामाजिक-सांस्कृतिक विकास पर गहरा असर पड़ रहा है।

हम यह भी देख सकते हैं कि जहां एक ओर, अभिजात्य वर्गो में बच्चों के लालन-पालन एवं सुरक्षा की अलग अवधारणा है, वहीं सुविधा विहीन परिवारों में बच्चों के लालन-पालन भिन्न प्रकार से होते है। उदाहरण के तौर पर- वैश्वीकरण के इस दौर मे बच्चों के पालन-पोषण के लिए क्रेच का सहारा लिया जा रहा है क्योंकि माता-पिता दोनों बाहर काम करते हैं। अन्य विकल्प के तौर पर, मां-बा पके स्थान पर बड़े भाई या बहन अपने छोटे भाई या बहन की देख-रेख में होते है। गांवों में तो, कभी-कभी माता-पिता बच्चों को अपने साथ खेतों पर ले जाते हैं। धीरे-धीरे उन्हें अपने साथ काम पर भी ले जाना शुरू कर देते हैं। इस माहौल में बच्चे समर्पण के भाव एवं जातीय व्यवहार सीखते हैं एवं सामाजिक अर्न्तसंबंधों की भी समझ विकसित करते हैं। इन सब के माध्यम से बच्चे के समाजीकरण के प्रक्रिया में विभिन्न घटकों का समावेश होता रहता है। इसके साथ ही, ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में भी बच्चों के लालन-पालन का तरीका अलग होता है जिसका प्रभाव बच्चों के व्यवहारों से परिलक्षित होता है। शहरी और ग्रामीण बच्चों के प्रति समाज में रूढ़ीवादी विचारधाराएं भी होती हैं। जैसे शहरी बच्चों को स्मार्ट, बुद्धिमान, आदि संज्ञाएं दी जाती हैं, वहीं गांव के बच्चों को दब्बु या कमजोर मानने की आम धारणा है। ऐसी धारणाओं के पीछे असामनता, वंचना और वर्गीय वर्चस्व को स्थापित करनेवाली सामाजिक धारणाएं हैं, जो अपना पहला हमला समाज के बच्चों तथा उनके बचपन पर करती हैं।

बच्चों के जीवन में विपरित परिस्थितियों के साथ-साथ बहुत सारी सकारात्मकता भी नज़र आती है। यह उनके अन्दर की सकारात्मक ऊर्जा ही है जिसके कारण वे तमाम कठिनाइयों को पार कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। इसका, उत्तराखण्ड में रूद्रपुर के एक सामान्य परिवार से आनेवाले मनोज एक प्रेरणादायी उदाहरण हैं जिन्होंने 2016 में बीजिंग में आयोजित एशियन पैरा बैडमिंटन चैंपियनशिप के एस.एल.सी. (पैरों से समस्याग्रस्त) श्रेणी सिंगल्स में स्वर्ण पदल जीतकर देश और राज्य का नाम रौशन किया। अपने जुनून के आगे मनोज ने अपनी जीवन परिस्थितियों को आड़े नहीं आने दिया।

इसी तरह, समाज में बच्चों के बचपन एवं किशोरावस्था को लेकर बहुत सारे सकारात्मक पहल भी दिखते हैं। बाल अधिकार, शिक्षा का अधिकार, बालश्रम उन्मूलन जैसे कई पहल हैं जो बच्चों के बचपन को बचाने तथा उनके स्वाभाविक विकास के संवर्धन में भूमिका निभा रहे हैं। विद्यालयों को भी बच्चों के लिए एक आनन्ददायी स्थान बनाने पर जोर है तथा हर बच्चे के आकलन मूल्यांकन को उसकी क्षमताओं के आधार पर करने का प्रयास भी शुरू हुआ है। इन सब के कारण बच्चों के लिए सकारात्मक परिस्थितियों का निर्माण हो रहा है।

समाज के हाशिए में रहने वाले वर्गों से आए बच्चों के बारे मे बनी हुई रूढ़िबद्ध धारणाओं की निरंतरता गंभीर चिंता का विषय है। इन समूहों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति भी शामिल है, जिन्हें पहले कभी स्कूल व साक्षरता तक पहुँच नहीं मिली। कुछ विद्यार्थियों को 'ऐतिहासिक' रूप से अशिक्षणीय, कम शिक्षा योग्य, सीखने में मंद, और यहाँ तक कि पढ़ाई से भयभीत लोगों के रूप में भी देखा गया है। इसी तरह लड़कियों को लेकर भी यह धारणा रही है कि खेलने में, गणित या विज्ञान में उनकी रुचि नहीं होती। शारीरिक असमर्थता वाले बच्चों के लिए अलग प्रकार की रूढ़िगत धारणाएँ हैं, जिनसे यह विचार प्रोत्साहित होता है कि उन्हें अन्य बच्चों के साथ नहीं पढ़ाया जा सकता। यह समझ इस विचार से निकलती है कि हीनता एवं असमानता लिंग, जाति, शारीरिक व मानसिक असमर्थताओं में ही निहित है। सफलता की कुछ कहानियाँ तो हैं लेकिन अधिकतर संख्या उन लोगों की है जो असफल हो जाते हैं और अधूरेपन के इस बोध को आत्मसात कर लेते हैं। संविधान के समानता के मूल्य को हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम अपने शिक्षकों को तैयार करें कि वे सभी बच्चों से समानता का व्यवहार करें। हमें अपने शिक्षकों को प्रशिक्षित करना होगा कि वे बच्चों में सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विविधता की समझ को विकसित करें जो खुद उनके साथ स्कूल तक आती है।

हमारे अनेक स्कूलों में पहली पीढ़ी के विद्यार्थियों की बड़ी संख्या है। शिक्षा व्यवस्था का पुनराभिमुखीकरण होना चाहिए, जब बच्चे का घर उसकी औपचारिक शिक्षा को सहारा देने की स्थिति में न हो। उदाहरण के लिए, पहली पीढ़ी के विद्यार्थी, लेखन व पठन को विकसित करने, पढ़ने में अभिरुचि बनाने, भाषा से परिचय प्राप्त करने व स्कूल की संस्कृति से परिचित होने के लिए पूर्णतः स्कूल पर निर्भर होंगे। यह निर्भरता तब और बढ़ जाती है जब मातृभाषा स्कूल में प्रयुक्त भाषा से अलग हो। ऐसी स्थितियों में 'होम-वर्क' लगभग नहीं होना चाहिए। बहुत-से ऐसे बच्चे घर की परिस्थिति के कारण काफ़ी असुरक्षित होते हैं जिससे हो सकता है कि वे समय पर न आएँ, अनियमित रूप से आएँ, कक्षा में अधिक ध्यान न दे पाएँ। ऐसे बच्चों को इन विवषताओं से मुक्त करने के लिए अंतःवर्गीय सहायता जुटाना और ऐसी पाठ्यचर्या बनाना आवश्यक है जो इन परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील हो। **-राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, पृष्ठ 27**

क्रियाकलाप

अपने आस पास के बच्चों के दैनिक जीवन का अवलोकन करें तथा निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें:-

- क्या उन सभी बच्चों का दैनिक जीवन एक जैसा है या एक दूसरे से भिन्न है। इसके पीछे के कारणों का विश्लेषण करें।
- ये बच्चों अपना कितना समय किस कार्य में देते हैं, इसका भी अध्ययन करें और इसका उनके व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसका विश्लृषण करें।
- अपने अवलोकन के आधार पर इसपर विचार करें कि एक ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चे और शहरी पृष्ठभूमि के बच्चे के बचपन में क्या मूलभूत अंतर हो सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. बच्चों की जीवन परिस्थितियों के कुछ उदाहरण बताएं?
2. क्या लड़का और लड़की के जीवन वास्तविकताओं में अंतर होता है? क्यों?

3.4 बचों एवं किशोर-किशोरियों के बारे में उनके अभिभावकों एवं शिक्षकों की धारणाएं

बच्चों एवं किशोर-किशोरियों के विषय में अभिभावकों एवं शिक्षकों का अपनी कुछ खास दृष्टिकोण होता है। उदाहरण के तौर पर, हम अक्सर अभिभावकों को अपने बच्चों की तुलना किसी अन्य बच्चे से करते हुए पाते हैं। उसी तरह, सामाजिक स्थिति के कारण, बच्चों से सम्बंधित कई प्रकार की वाजिब चिंताएं भी अभिभावकों के मन में होती हैं। इसके कारण, कई अभिभावक अपने बच्चों पर कड़ा नियंत्रण भी रखते हैं, जिसका परिणाम हमेशा सकारात्मक नहीं निकलता। कड़े नियंत्रण के कारण बच्चे अपने अभिभावकों से दूरी बनाने लगते हैं जिसके कारण अभिभावकों को यह स्वाभाविक तौर पर पता नहीं चल पाता कि उनके बच्चों की क्या अपेक्षाएं हैं। यदि अभिभावक का दृष्टिकोण ठीक नहीं हो तो अपने परिवार में दो-चार बच्चों के बीच ही असमंजन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। विद्यालय में एक शिक्षक या शिक्षिका के लिए अपनी कक्षा के सभी बच्चों को समझ पाना और कठिन हो जाता है। अक्सर यह देखा जाता है कि बिना गहन विश्लेषण किए हुए ही बहुत सारे शिक्षक या शिक्षिकाएं अपनी कक्षा के कई सारे बच्चों के बारे में नकारात्मक घारणा बना लेते हैं। इसकारण, उन बच्चों पर शिक्षकों बहुत ध्यान नहीं रहता और वे उनके जीवन में सकारात्मक हस्तक्षेप नहीं कर पाते हैं।

कई बार अभिभावक और शिक्षक, दोनों की धारणाएं एक दूसरे से मिलती है तो कई बार नहीं। इसका उदाहरण, विद्यालयों में अभिभावक बैठक के दौरान देखा जा सकता है। ऐसा इसलिए भी होता है क्योंकि

अभिभावक और शिक्षक अलग-अलग दृष्टिकोणों को सही मानकर अपना तर्क दे रहे होते हैं। बच्चों के विकास में अभिभावकों एवं शिक्षकों की ये धारणाएं बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। आपने ऐसे उदाहरण देखे होंगे जहां किसी साधारण बच्चे को लगातार प्रोत्साहन देने से उसकी पढ़ाई में अच्छा सुधार हो जाता है वहीं किसी अच्छे विद्यार्थी के प्रति नकारात्मक बर्ताव करने से उसकी उपलब्धि में गिरावट आने लगती है। इसलिए यह जरूरी है कि अभिभावकों एवं शिक्षकों की धारणाओं को समझा जाए। आगे दी गई सारणी में बच्चों एवं किशोर-किशोरियों के बारे में अभिभावकों या माता-पिता के कुछ सामान्य धारणाओं के उदाहरण दिए जा रहे हैं। आप अपने आस पास के कुछ अभिभावकों से बातचीत करके इस सारणी में अन्य प्रासंगिक धारणाओं को भी जोड़ते जाएं।

बच्चों के प्रति अभिभावक/माता-पिता की कुछ सामान्य धारणाओं के उदाहरण	
1	बच्चों को हमेशा समझाते रहना चाहिए नहीं तो वे गलत दिशा में चले जाएंगे।
2	बच्चे नादान होते हैं और उनको किसी भी प्रकार की समझ नहीं होती है।
3	बच्चे खेल और घूमने में बहुत समय नष्ट करते हैं।
4	बच्चों को यदि नहीं डांटेंगे तो वे नहीं समझेंगे।
5	बच्चों से दोस्ताना व्यवहार रखना चाहिए।
6	बच्चों से दूरी बनाकर एवं सख्ती से पेश आना चाहिए।
7	
8	
9	

इसी तरह, शिक्षकों में भी बच्चों के प्रति कई धारणाएं होती हैं, आगे की सारणी में कुछ धारणाओं को दर्शाया गया है। आपकी धारणाएं इन धारणाओं से कहां मेल खाती हैं, इसका विश्लेषण करें।

बच्चों के प्रति शिक्षकों की कुछ सामान्य धारणाओं के उदाहरण	
1	कक्षा में कुछ बच्चे हीं तेज हो सकते हैं।
2	कक्षा के अधिकतर बच्चे औसत होते हैं।
3	बच्चों को डराकर सिखाया जाता है।
4	कई बच्चे अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण पढ़ने में तेज नहीं हो सकते।
5	बच्चों के साथ समय बिताया जाए तो वे अपने आप सीखने लगते हैं।

6	बच्चों को यदि उचित प्रोत्साहन दिया जाए तो वे बहुत आगे निकल सकते हैं।
7	बच्चों पर उनके माता-पिता ध्यान नहीं देते, इसके कारण वे बिगड़ जाते हैं।
8	जो बच्चे पढ़ाई नहीं करते वे होशियार नहीं होते हैं।
9	
10	

उपरोक्त सारणी में लिखित धारणाओं के आलोक में शिक्षाविद् गिजुभाई के पुस्तक 'माता-पिता के प्रश्न' से कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा है। इनका अध्ययन कर माता-पिता और शिक्षक की बच्चों के प्रति धारणा का विश्लेषण करें।

अभिभावक प्रश्नः मेरा एक पुत्र पढ़ने में बिल्कुल ठोठ है। मास्टर लगा रखा है, फिर भी उसकी बौद्धिक-शक्ति बहुत कमजोर है। शरीर इकहरा है, पर मजबूत है। खेलकूद का बहुत शौकीन है और होशियार है। मोहल्ले के लड़कों का अगुआ है। इसी तरह से पढ़ने में भी वह आगे रहे, इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए?

उत्तर: मास्टर लगाने से दिमाग की ताकत कमजोर होती है, अतः मास्टर नहीं रखना चाहिए। बालक के खेलकूद के शौक को आगे अधिक विकसित होने दो। अगुवाई करने के जोश को पढ़ाई की वजह से कमजोर न पड़ने दो। गली में जो क्रिया-शक्ति तथा साहस-शक्ति विकसित होती है वह पुस्तकें पढ़ने से नहीं बढ़ती। पुस्तकें पढ़ने से जो प्रेरणा हम बालक में जगाना चाहते हैं, वह पहले से ही उसमें है। उसे विकसित करने में ही बालक का और आपका भला है। पढ़ाई याने लिखना, पढ़ना और हिसाब करना। इन्हें तो व्यक्ति जब चाहे तभी सीख सकता है। परंतु जिस वय में बालक स्वतः साहस, हिम्मत, चपलता, समय की पाबंदी आदि गुण आत्मसात करना चाहता है, उस वय में अगर हम उसके लिए बाधक बन जाते हैं तो वह हमेशा-हमेशा के लिए अपंग बन जाता है और बड़ा होने पर चाहे वह कितना ही शिक्षित हो जाए, क्रियाहीन तथा शक्तिहीन ही रह जाता है। ज्यादा पढ़े-लिखे कुछ काम नहीं कर सकते। साहस के हर काम में वे पीछे रहते हैं और इसका कारण है-बचपन में माता-पिता ने या शिक्षक ने उनमें वह शक्ति विकसित नहीं की थी।

बच्चों के प्रति शिक्षकों के मन में केवल नकारात्मक धारणाएं ही नहीं होते बल्कि कई शिक्षकों की धारणाओं से बच्चों के बारे में बहुत ही गहन समझ झलकती है। इनके दृष्टिकोण में बच्चों की जो परिस्थितियां हैं, उनका उनके सफल या असफल होने में बड़ी भूमिका होती है। इसलिए, किसी बच्चे को मूर्ख या असफल घोषित करना एक सतही और संकुचित धारणा है। जॉन होल्ट ने इस संदर्भ में अपनी

पुस्तक 'बच्चे असफल कैसे होते हैं' में कई बिन्दुओं को उठाया है जिसके कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा है।

अगर हम ''स्कूली शिक्षा का स्तर'' कुछ ऊपर उठा दें, जैसा कि कई शिक्षाविद् करना चाहते हैं, तो हमें तत्काल अप्रकट रूप से फेल होने वाले बच्चों की सही संख्या का पता लग सकता है।

यह असफलता बच्चों में क्यों आती है?

इसलिए, क्योंकि वे डरते हैं, ऊबते हैं और भ्रमित रहते हैं। उनके मन में सबसे बड़ा भय होता है अपने आस-पास के वयस्कों को निराश और नाराज करने का। इन वयस्कों की असीम आशाएँ और अपेक्षाएँ बच्चों के सिर पर बादलों की तरह गहराती रहती हैं।

बच्चे ऊबते इसलिए हैं, क्योंकि जो कुछ उन्हें स्कूलों में करने को दिया या कहा जाता है, वह सबका सब बेहद निरर्थक और नीरस होता है। बच्चों से रखी जाने वाली अपेक्षाएँ नितान्त सीमित होती हैं, जबकि बच्चों की मेधा, उनकी प्रतिभा और उनके गुण असीम होते हैं।

बच्चे भ्रमित इसलिए होते हैं क्योंकि उनके सिर पर अर्थहीन शब्दों का प्रपात संवेग झरता रहता है। ये शब्द बराबर उस सबका खंडन करते हैं जो बच्चे को पहले बताया गया था और तो और बच्चे जो कुछ स्वयं अपने अनुभव से जानते हैं उससे भी इस शब्द प्रपात का कोई सम्बंध नहीं होता। यथार्थ की जो अनगढ़-सी छवि बच्चों के मन में होती है, उससे पूरी तरह कटा हुआ होता है। और यह व्यापक असफलता क्यों होती है? हमारी कक्षाओं में आखिर होता क्या है? ये असफल होने वाले बच्चे अपनी कक्षाओं में भला करते क्या हैं? क्या सोचते हैं वे? अपने सामर्थ्य का उपयोग वे क्यों नहीं करते?

वर्षों से मैं शिक्षकों और छात्र -शिक्षकों से यह अनुनय करता रहा हूँ कि वे भी अपने काम के प्रति यह दृष्टिकोण अपनाएँ। पर ऐसा कहते ही वे पलटकर मुझसे यह जानना चाहते हैं, ''स्कूलों में होने वाली हरेक भूल के लिए आप हमें दोषी क्यों ठहराते हैं? आप हमें इस कदर अपराध बोध से क्यों दबा देना चाहते हैं?'' पर ऐसा तो मैंने कभी कहा ही नहीं। मैंने तो कभी स्वयं तक को दोषी नहीं ठहराया न ही इस बात के लिए स्वयं को अपराधी माना कि मेरे छात्र वह सब नहीं सीख सके जो मैं उन्हें सिखाता-पढ़ाता रहा, न इस बात के लिए कि मैं वह नहीं कर पा रहा था जिसका संकल्प मैंने अपना काम प्रारम्भ करने के पहले किया जरूर था, पर जिसे कर पाने की राह मुझे सूझी नहीं। पर इतना जरूर था कि अपनी असफलता के लिए मैं स्वयं को दोषी नहीं, तो जिम्मेवार अवश्य मानता था।

आजकल हर जगह ही हमारे स्कूलों के स्तर को ऊँचा उठाने की चर्चा है। यह चर्चा भी सुनाई पड़ती है कि बच्चों को अगली कक्षा में उत्तीर्ण करने से पहले हम यह ''सुनिश्चित कर लें कि जो कुछ उन्हें जानना चाहिए उसे बच्चों ने जान भी लिया है या नहीं''। पर इन सुझावों को अपनाने पर उनका व्यावहारिक रूप क्या होगा? हम केवल उस छल-कपट को बढ़ावा देंगे जिसकी चर्चा मैं पुस्तक में कर चुका हूँ। इम्तिहानों के पहले हम बच्चों को बार-बार सब कुछ दोहराने पर बाध्य करेंगे, जिससे बाहरी तौर पर यह लगने लगे

कि वे वह सब भी जानते हैं जो असल में वे जानते ही नहीं। साथ ही इन नियमों को समान रूप से लागू भी नहीं किया जाएगा।

विचार करें
स्कूलों में दाखिल बच्चों में से 40 प्रतिशत स्कूली शिक्षा पूरी नहीं कर पाता तथा अप्रकट रूप से फेल होने वाले बच्चों की संख्या हमारे अनुमान से भी अधिक है - इस कथन का तापर्त्य अपने शब्दों में बताएं। यह स्थिति आपने भी अनुभव की होगी? आपकी दृष्टि में इसके क्या कारण हो सकते हैं।

उपरोक्त गद्यांश में जॉन होल्ट ने बच्चों की ऐसी जीवन परिस्थितियों को उजागर किया है जिससे स्वयं बच्चे भी अनभिज्ञ रहते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि विद्यालय और शिक्षक द्वारा जो भी किया जाता है उसमें उनका कोई दोष नहीं है। इसलिए अपनी सारी असफलताओं का जिम्मा वे अपने पर डाल लेते हैं। जबकि गहराई से देखें तो बच्चों को असफल बनाने की ऐसी परिस्थितियों के निर्माण हर कोई शामिल होता है। कोई शिक्षक शायद ही यह धारणा रखता या रखती हो कि बच्चों की असफलता में उसकी बहुत बड़ी भूमिका है। अभिभावक भी बहुत हद तक बच्चों की असफलता को उन्हीं पर थोप देते हैं और यह समझने की तरफ बढ़ते ही नहीं कि उस असफलता के असल सुत्रधार कौन हैं। यदि अभिभावक और शिक्षकगण बच्चों की जीवन परिस्थितियों के प्रति संवेदित हो जाएं तो कोई बच्चा असफल नहीं होगा।

विचार करें
क्या आपके साथ भी कक्षा में कभी ऐसा हुआ है जब आपके द्वारा बच्चों को सिखाने के प्रयास का परिणाम वह नहीं निकला जैसा कि आपने सोचा था। क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ?
इन कारणों को अपने शब्दों में लिखें।

अभ्यास प्रश्न

3. बच्चों के संदर्भ में अभिभावक/माता-पिता के कम से कम दो धारणाएं बताएं?
4. बच्चों के बारे में शिक्षक की कुछ सकारात्मक धारणाएं बताएं?
5. क्या बच्चों के बारे में अभिभावक और शिक्षकों की एक जैसी धारणाएं हैं?

3.5 कक्षायी विमर्श में बच्चों एवं किशोर-किशोरियों के जीवन वास्तविकताओं को शामिल करना

अब तक इस इकाई में बच्चों के बचपन एवं किशोरावस्था से सम्बंधित जिन जीवन परिस्थितियों की चर्चा हम करते आ रहे हैं, उनमें यदि सकारात्मक बदलाव लाना है तो स्वयं बच्चों को इस बारे में सजग बनाना

होगा। यह तभी सम्भव है जब उन जीवन परिस्थितियों की सहज चर्चा उन बच्चों साथ ही कक्षा में हो सके। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के पांच मार्गदर्शक सिद्धांतों में से सबसे पहला मार्गदर्शक सिद्धांत यह है कि 'ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना'। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि कक्षायी ज्ञान से बच्चों के जीवन परिस्थितियों को जोड़ना पाठ्यचर्या का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। अतः शिक्षकों को चाहिए कि वे अपनी कक्षाओं में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करें जिससे बच्चे अपनी जीवन वास्तविकताओं को खुलकर साझा कर सके और चर्चा के माध्यम से उनपर सही समझ बना सकें।

अब प्रश्न उठता है कि कक्षायी विमर्श में क्या ऐसी परिस्थितियों को बनाने की सम्भावना है? बिल्कुल है और इसके लिए शिक्षक के पास कई तरीके एवं शिक्षण विधियां भी हैं। उनमें से कुछ की चर्चा आगे की जा रही है। लेकिन उन तरीकों का इस्तेमाल कोई शिक्षक तभी कर सकेगा वह अपनी कक्षा के हर बच्चे के जीवन अनुभवों की विविधता में विश्वास करता हो।

सबसे महत्वपूर्ण सामग्री है हमारे स्कूलों में चलनेवाली पाठ्यपुस्तकें। इनका विश्लेषण करें तो आप पाएंगे कि विभिन्न विषयों के अध्यायों में कहानियों, कविताओं, सवालों, उद्धरणों, चित्रों आदि के माध्यम से बच्चों के बचपन या किशोरावस्था से सम्बंधित कई बातों को लाया गया है। अब शिक्षक की कोशिश यह होनी चाहिए कि उन प्रसंगों को शुष्क तरीके से केवल पाठ के तौर पर ना पढ़ाकर उन्हें इस प्रकार से पढ़ाए जिससे बच्चे अपने जीवन परिस्थितियों को भी उन अध्यायों से जोड़कर देख पाएं।

बच्चों के साथ यदि पाठ्पुस्तकों से हटकर बातचीत की जाए, उनकी दिनचर्या, पसंद-नापसंद, चुनौतियों आदि के बारे में जाना-समझा जाए तो निश्चित तौर पर वे अपनी परिस्थितियों के विषय में बहुत कुछ बताएंगे। बच्चों के साथ शिक्षक का संवाद करना बहुत जरूरी है जो अक्सर कक्षाओं में नहीं हो पाता है। शिक्षक प्रश्न पुछने और बच्चे जवाब देनेवाले बनकर रह जाते हैं। इस स्थिति से यदि कोई शिक्षक अपनी कक्षा को बाहर निकाल पाता है और बच्चों को बातचीत का लोकतांत्रिक अवसर देता है तो कक्षा का माहौल बच्चों के जीवन से बहुत करीब हो जाएगा।

कई बार बच्चे अपनी जीवन वास्तविकताओं को कहने से कतराते हैं क्योंकि उन्हें साझा करने से कक्षा में उनका उपहास हो सकता है। अतः शिक्षकों को कई ऐसे तरीकों का इस्तेमाल करना चाहिए जिससे बच्चे अपनी बात को बिना पहचान बताए भी कह सकें।

शिक्षक बच्चों के सम्मुख कई उदाहरण देकर उनकी प्रतिक्रिया ले सकते हैं या बच्चों से ही कुछ उदाहरणों को लिखवाकर उन्हें पूरी कक्षा के साथ साझा कर सकते हैं। वे बच्चों को ऐसे परियोजना कार्य दे सकते हैं जिससे बच्चे अपनी जीवन परिस्थितियों से आंकड़ों को प्रस्तुत कर सकें।

शिक्षक स्वयं भी अपने विद्यालय में आनेवाले बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं का व्यवस्थित अध्ययन कर सकते हैं तथा उसके आधार पर वे अपनी शिक्षण युक्तियों में बदलाव करके बच्चों की जीवन परिस्थितियों से उदाहरणों को प्रस्तुत कर किसी अवधारणा को बेहतर तरीके से समझा सकते हैं।

कई सारे बालफिल्मों में भी बच्चों एवं किशोर-किशोरियों की जीवन वास्तविकताओं को अच्छी तरह दिखाया गया है। शिक्षकगण उन फिल्मों को अपने विद्यार्थियों को दिखाकर उनपर चर्चा कर सकते हैं। नाटक मंचन, कहानी प्रतियोगिता, कविता लेखन, पेन्टिंग गतिविधियों के माध्यम से भी ऐसे अवसर बनाए जा सकते हैं जिससे बच्चे अपने अनुभवों को अपनी पसन्द के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकें।

इसतरह निम्नलिखित माध्यमों से कक्षायी विमर्श में बच्चों की जीवन वास्तविकताओं को शामिल किया जा सकता है:

- पाठ्यपुस्तकों में दिए गए प्रसंगों के माध्यम से
- नवाचारी शिक्षण विधियों को अपनाकर
- कक्षा में लोकतांत्रिक माहौल बनाकर
- उपयोगी बालफिल्मों के माध्यम से
- बच्चों के जीवन से सम्बंधित परियोजना कार्यों के माध्यम से
- बच्चों के जीवन से सम्बंधित मुद्दों पर नाटक मंचन के द्वारा
- बच्चों की रचनात्मक गुणों को प्रोत्साहित करके

अभ्यास प्रश्न

6. क्या बच्चों की जीवन वास्तविकताओं को कक्षायी संवाद में लाना संभव है?
7. कक्षा में बच्चों के अनुभवों को लाने कुछ तरीकें बताएं?

3.6 सारांश

इस इकाई के माध्यम से हमने समझा कि हर बच्चे का न तो बचपन एक जैसा होता है और ना ही किशोरावस्था। तमाम सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षिक परिस्थितियों का बच्चों के जीवन अनुभवों पर गहरा असर पड़ता है। बचपन का अनुभव इस बात पर निर्भर करता है कि बच्चा लड़का या लड़की है, किस धर्म का है, किस जाति व समुदाय का है, परिवार की आर्थिक स्थिति कैसी है, परिवार में सदस्य कितने हैं आदि। इस कारण बच्चों के बचपन के संदर्भों में विविधता दिखाई देती है। साथ ही, हमने यह भी जाना कि बालश्रम, गरीबी, हिंसा, फुटपाथ आदि विपरित परिस्थितियों में रह रहे बच्चों की सोंच में केवल कुण्ठा या नकारात्मकता नहीं होती बल्कि वे अपनी परिस्थितियों को बदलने की आकांक्षा रखते हैं। बच्चों के जीवन में विपरित परिस्थितियों के साथ-साथ बहुत सारी सकारात्मकता भी नज़र आती है। बच्चों के संदर्भ में भूख, बीमारी और कुपोषण जैसी विकराल परिस्थितियां भी हैं। इसका उनके शारीरिक विकास पर तो गहरा असर पड़ता ही है, साथ ही मानसिक तौर पर भी वे पूर्णविकसित नहीं हो पाते। हमने

यह भी जाना कि बच्चों एवं किशोर-किशोरियों के विषय में अभिभावकों एवं शिक्षकों का अपना कुछ खास दृष्टिकोण होता है। बच्चों के जीवन वास्तविकताओं को गढ़ने में इन दृष्टिकोणों की प्रभावी भूमिका होती है। इसलिए यह जरूरी है कि अभिभावक या शिक्षक बच्चों के जीवन परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील रहे। विशेष रूप से यदि शिक्षक की बात करें तो उसे विभिन्न तरीकों से अपनी कक्षा में बच्चों को यह अवसर देना चाहिए कि वे अपनी जीवन वास्तविकताओं से उदाहरणों को साझा कर सके। इससे कक्षायी प्रक्रिया बहुत ही सुगम और समृद्ध हो जाएगी।

3.7 शब्दावली

1. जपा - तबीयत, स्वास्थ्य
2. टाबर - बच्चे
3. ठोठ -जिस स्थिति में है उससे हिलने-डुलनेवाला नहीं

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर: बालश्रम, गरीबी, ग्रामीण, शहरी, एकल परिवार, संयुक्त परिवार।
2. उत्तर: हां, सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं एवं धारणाओं के कारण।
3. उत्तर: बच्चे अपने जीवन के प्रति गम्भीर नहीं होते, बच्चों को हमेशा नियंत्रण में रखना चाहिए।
4. उत्तर: बच्चे असफल नहीं होते बल्कि उनको शिक्षा देनेवाला तंत्र असफल होता है। हर बच्चे में पास सीखने-समझने की भरपूर क्षमता होती है, इसलिए बच्चों को कोटियों में नहीं बांटना चाहिए।
5. उत्तर: कई धारणाएं मिलती हैं परन्तु सभी नहीं।
6. उत्तर: बिल्कुल सम्भव है, यदि शिक्षक प्रयास करे और बच्चों को अवसर दे।
7. उत्तर: पाठ्यपुस्तकों के उपयुक्त अध्यायों से जोडकर, बच्चों को खुद से उदाहरण बनाने को कहकर, बच्चों को उनके पसन्द के मुद्दों पर बातचीत करके, बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का शिक्षक द्वारा अध्ययन करके।

3.9 संदर्भ सूची एवं उपयोगी पठन सामग्रियां

1. एरीज, फिलिप (1962). सेंचुरीज ऑफ चाइल्डहुड़. न्यूर्याक, विंटेज बुक्स पब्लिकेशन।
2. एन.सी.ई.आर.टी. (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005. नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी.।
3. बधेका, गिजुभाई (2011). माता-पिता के प्रश्न. नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट।

4. बधेका, गिजुभाई (2011). दिवास्वप्न, अठारहवीं आवृत्ति. नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट।
5. बर्क, लारा, ई. (2006). चाइल्ड़ डेवलपमेंट, नई दिल्ली, प्रिंटीस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड़।
6. कुमार, कृष्ण. बचपन की अवधारणा और बाल साहित्य, शैक्षणिक संदर्भ अंक-24(मूल अंक 81)
7. हॉल्ट, जॉन (2002). बच्चे असफल कैसे होते हैं, चतुर्थ हिन्दी संस्करण. भोपाल, एकलव्य प्रकाशन।
8. हॉल्ट, जॉन (2005). बचपन से पलायन, हिन्दी संस्करण. भोपाल, एकलव्य प्रकाशन।
9. रंगनाथन, नमिता (2000). द प्राइमरी स्कूल चाइल्ड, नई दिल्ली, ओरिएन्ट लोगमान लिमि0।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बच्चों के जीवन वास्तविकताओं को गढ़ने में उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ की क्या भूमिका होती हैं? सोदारहण स्पष्ट करें।
2. आर्थिक परिस्थितियों का बच्चों के जीवन अनुभवों पर क्या प्रभाव पड़ता है, कुछ उदारहण प्रस्तुत करते हुए विश्लेषण करें।
3. क्या विद्यालयों में बच्चों को अपनी जीवन वास्तविकताओं को साझा करने का हमेशा उपयुक्त माहौल मिल पाता है? क्यों या क्यों नहीं? इसकी विवेचना करें।
4. अभिभावकों की धारणाओं का स्रोत क्या है? कुछ धारणाओं को लेते हुए यह चर्चा करें कि अभिभावकों के मन में वैसी धारणाएं क्यों बनती हैं?
5. 'बच्चों में असफलता भय, ऊबने ओर भ्रमित होने से आती है' इस कथन का सोदाहरण विश्लेषण करें।
6. एक संवेदनशील शिक्षक या शिक्षिका में बच्चों के प्रति किस प्रकार की धारणाएं होंगी, समझाएं। सभी शिक्षकों में बच्चों के प्रति समान संवेदनशीलता क्यों नहीं मिलती है? अपने अनुभवों के आधार पर समझाएं
7. बच्चों के संदर्भ में गिजुभाई तथा जॉन हॉल्ट के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण कीजि